तृतीयः परिच्छेदः

(यमकालङ्कारविवेचनम्)

अव्यपेतव्यपेतात्मा व्यावृत्ति[१]र्वर्णसंहतेः ।
यमकं तच्च पादानामादिमध्यान्तगोचरम् ।।१।।

अन्वय— अव्यपेतव्यपेतात्मा वर्णसंहतेः व्यावृत्तिः यमकम्, तत् च पादानाम् आदिमध्यान्तगोचरम् ।

शब्दार्थ— अव्यपेतव्यपेतात्मा = व्यवधान से रहित (अव्यपेत) (अथवा) व्यवधान से युक्त (व्यपेत) स्वरूप (आत्मा) है जिसका ऐसा, व्यवधान से रहित अथवा व्यवधान से युक्त स्वरूप वाला । वर्णसंहतेः = वर्णसमूह की । आवृत्तिः = पुनरावृत्ति । यमकं = यमक (कहलाता है) । तत् च = और वह (यमक) । पादानां = पादों के । आदिमध्यान्तगोचरं = आदि, मध्य अथवा अन्त में दृष्टिगोचर (होता है) ।

अनुवाद— व्यवधान से रहित अथवा व्यवधान से युक्त वर्णसमूह की आवृत्ति यमक (कहलाता है) और वह यमक पादों के आदि, मध्य अथवा अन्त में दृष्टिगोचर (होता है) ।

संस्कृतव्याख्या— द्वितीये परिच्छेदे अर्थालङ्कारान्निरूप्यात्र तृतीये परिच्छेदेऽस्मिन् शब्दालङ्कारान् विवेचयन् प्रथमं यमकालङ्कारं निरूपयत्यत्र– **अव्यपेतेति** । **अव्यपेतव्यपेतात्मा** अव्यपेतः अन्येन वर्णेन अव्यवहितः व्यवधानरहितः **व्यपेतः** वर्णान्तरेण व्यवहितः च आत्मा स्वरूपः यस्याः तादृशी **वर्णसंहतेः** स्वरव्यञ्जनसमूहस्य **व्यावृत्तिः** पुनरावृत्तिः पुनर्पुनरुच्चारणं **यमकं** तन्नामालङ्कारः उच्यते । एवं पूर्वोच्चारितवर्णसमूहस्य क्वचिदव्यावधानेन क्वचिच्च व्यवधानेन पुनरावृत्तिः यगकमलङ्कारः इति भावः । **तत् च** यमकं **पादानां** श्लोकस्य चरणानाम् **आदिमध्यान्तगोचरं** क्वचिद् आदौ क्वचिद् मध्ये क्वचिच्च अन्ते दृश्यमानं भवति ।

विशेष—

(१) अर्थालङ्कारकृत चमत्कार को प्रधान मान करके द्वितीय परिच्छेद में अर्थालङ्कारों का निरूपण करके तृतीय परिच्छेद में शब्दालङ्कारों का निरूपण किया जा रहा है ।

---

१. या वृतिर् ।

(२) वर्णसमूह का कहीं अन्यवर्णों के व्यवधान से रहित तथा कहीं व्यवधान होने पर भी पुनरावृत्ति होना यमक अलङ्कार कहलाता है।

(३) पुनरावृत्ति के व्यवधानरहित तथा व्यवधानयुक्त होने के आधार यमक मुख्यतः दो प्रकार का होता है- (क) अव्यपेतयमक और (ख) व्यपेतयमक। जिस यमक में वर्णों के व्यवधान से रहित वर्णसमूह की पुनरावृत्ति होती है वह अव्येतयमक कहलाता है तथा जिसमें अन्य वर्णों के व्यवधान-सहित पुनरावृत्ति होती है, वह व्यपेतयमक कहलाता है।

(४) यमक शब्द यम (जुड़वा) से स्वार्थ अर्थ में क प्रत्यय लगकर निष्पन्न होता है। इस प्रकार वर्ण की आवृत्ति से लेकर शब्द और वाक्य की आवृत्ति यमक के रूप में अभिप्रेत है। दण्डी ने वर्ण की आवृत्ति होने पर अनुप्रास और वर्णसमुदाय की आवृत्ति होने पर यमक माना है।

(५) अव्यपेत और व्यपेत- ये दोनों प्रकार के यमक कहीं पादों के आदि में, कहीं पादों के मध्य में और कहीं पादों के अन्त में विद्यमान होते हैं। इस प्रकार इनके पुनः तीन तीन भेद हो जाते है तथा इनकी संख्या छः हो जाती है।

(यमकस्य पुनर्विभाजनम्)

एकद्वित्रिचतुष्पादयमकानां विकल्पनाः ।
आदिमध्यान्तमध्यान्तमध्याद्याद्यन्तसर्वतः ।।२।।

अन्वय— एकद्वित्रिचतुष्पादयमकानाम् आदिमध्यान्तमध्यान्तमध्याद्याद्यन्तसर्वतः विकल्पनाः (भवन्ति)।

शब्दार्थ— एकद्वित्रिचतुष्पादयमकानाम् = एकपादगत, द्विपादगत, त्रिपादगत और चतुष्पादगत यमकों के। आदिमध्यान्तमध्यान्तमध्याद्याद्यन्तसर्वतः = आदि, मध्य, अन्त, मध्य-अन्त, मध्य-आदि, आदि-अन्त और सर्व (आदि-मध्य अन्त) (इस प्रकार सात प्रभेदों) से। विकल्पनाः = विविध विकल्प (भेद) (होते हैं)।

अनुवाद— एकपादगत, द्विपादगत, त्रिपादगत और चतुष्पादगत यमकों के आदि, मध्य, अन्त, मध्य-अन्त, मध्य-आदि, आदि-अन्त और सर्व (आदि-मध्य-अन्त)- (इस प्रकार के सात प्रभेदों) से विविध विकल्प (भेद) होते हैं।

संस्कृतव्याख्या— पदादिमध्यान्तानां यमकानां पुनर्विभाजनं निर्दिशत्यत्र— **एक-द्वीति**। **एकद्वित्रिचतुष्पादयमकान्** एकपादयमकस्य द्विपादयमकस्य त्रिपादयमकस्य चतुष्पादयमकस्य च **आदिमध्यान्तमध्यान्तमध्याद्याद्यन्तसर्वतः** आदियमकं, मध्ययकम् अन्तयमकं मध्यान्तयमकं मध्यादियमकम् आद्यन्तयमकं सर्वयमकं इत्येवं प्रकारेण

विकल्पनाः विविधाः भेदाः भवन्ति। यथा हि प्रथमपादे, द्वितीयपादे, तृतीयपादे चतुर्थपादे इत्येवमेवपादयमकस्य चत्वारो भेदाः सन्ति। प्रथमद्वितीययोः प्रथम तृतीययोः प्रथमचतुर्थयोः, द्वितीयतृतीययोः द्वितीयचतुर्थयोः तृतीयचतुर्थयोः चेति द्विपादयमकस्य षड्भेदाः, प्रथमद्वितीयतृतीयेषु प्रथमद्वितीयचतुर्थेषु, प्रथमतृतीयचतुर्थेषु, द्वितीयतृतीय-चतुर्थेषु इति त्रिपादयमकस्य चत्वारः भेदाः। चतुष्पादयमकस्यैकमेव भेदः। एवं यमकस्य पञ्चदशावान्तरभेदाः विद्यन्ते। प्रत्येकस्य पञ्चदशावान्तरभेदस्य आदियमकं मध्ययमकम् अन्तयमकं मध्यान्तयमकं मध्यादियमकम् आद्यन्तयमकम् सर्वयमकं आदिमध्यान्तयमकं वा इति सप्तधा भेदाः भवन्ति। पुनस्तेषां अव्यपेत व्यपेतयोभेदेन द्विविधत्वं जायते। एवं यमकभेदानां बहूनि संख्यकानि भवन्ति।

विशेष—

(१) यमक के बहुत से भेद हो जाते हैं। एकपादयमक के प्रथमपादगत, द्वितीयपादगत, तृतीयपादगत और चतुर्थपादगत– इस प्रकार चार भेद हो जाते हैं। द्विपादयमक के प्रथमद्वितीयपादगत, प्रथमतृतीयपादगत, प्रथमचतुर्थपादगत, द्वितीयतृतीयपाद-गत, द्वितीयचतुर्थपादगत और तृतीयचतुर्थपादगत– इस प्रकार छः प्रभेद होते हैं। त्रिपादयमक के प्रथमद्वितीयतृतीयपादगत, प्रथमद्वितीयचतुर्थपादगत, प्रथम-तृतीयचतुर्थपादगत और द्वितीयतृतीयचतुर्थपादगत– इस प्रकार चार भेद होते है। चतुष्पादयमक केवल एक ही प्रकार का होता है। इस प्रकार पादयमक के कुल पन्द्रह भेद होते हैं।

(२) उपर्युक्त यमक के पन्द्रह भेदों का पुनर्विभाजन होता है। उनमें से आदियमक, मध्ययमक, अन्तयमक, मध्यान्तयमक, मध्यादियमक, आद्यन्तयमक और सर्वयमक (आदिमध्यान्तयमक)– भेद से प्रत्येक भेद के पुनः सात-साथ भेद हो जाते हैं। इस प्रकार यमकों की संख्या एक सौ पाँच हो जाती है।

(३) इन एक सौ पाँच यमकों को अव्यपेत, व्यपेत और व्यपेताव्यपेत यमक इन तीन भेदों के आधार पर पुनः बाँटने पर यमकों की कुल संख्या तीन सौ पन्द्रह हो जाती है। इस प्रकार यमक के अनेक प्रकार हो जाते हैं।

अत्यन्तबहवस्तेषां भेदाः सम्भेदयोनयः।
सुकरा दुष्कराश्चैव दर्श्यन्ते[१] तत्र[२] केचन ।।३।।

(१) दृश्यन्ते, वर्ण्यन्ते।
(२) तेऽत्र, तेऽनु।

अन्वय— तेषां अत्यन्तबहवः भेदाः सम्भेदयोनयः सुकराः दुष्कराः च। तत्र केचन दर्श्यन्ते।

शब्दार्थ— तेषां = (यमक के) उन (भेदों में। अत्यन्तबहवः = अत्यधिक। भेदाः = भेद। सम्भेदयोनयः = परस्पर मिश्रण से उत्पन्न हुए (बने हुए) हैं। सुकराः = सुकर, सरलतापूर्वक रचित होने वाले। दुष्कराः च = और दुष्कर; कठिनायी से रचित होने वाले। तत्र = उनमें से। केचन = कुछ (यमक के भेद)। दशर्यन्ते = निरूपित किये जा रहे हैं।

अनुवाद— (यमक के) उन (भेदों) में अत्यधिक भेद परस्पर मिश्रण से उत्पन्न हुए हैं। (उनमें कुछ) सुकर (सरलतापूर्वक रचित होने वाले) और (कुछ) दुष्कर (कठिनायी से रचित होने वाले) हैं। उन (भेदों) में कुछ (यमक के भेद यहाँ) निरूपित किये जा रहें है।

संस्कृतव्याख्या— यमकप्रभेदानां बाहुल्यं निर्दिश्य काश्चिदुदाहरयितुमुपक्रमति। **तेषां** यमकस्य भेदानां **अत्यन्तबहवः** अत्यधिकाः **भेदाः** विकल्पाः **सम्भेदयोनयः** परस्परभेदानां मिश्रणेन जायमानाः सन्ति। तेषु केचन **सुकराः** सुसाध्याः केचन च **दुष्कराः** दुःसाध्या विद्यन्ते। **तत्र** तेषु यमकभेदेषु **केचन** भेदाः **दर्श्यन्ते** अत्र उदाहरणैः निर्दिश्यन्ते।

विशेष—

(१) यमक के प्रभेदों की संख्या अत्यधिक है, उन सभी का विवेचन यहाँ सम्भव नहीं है। उनमें से कुछ भेद सुसाध्य और कुछ दुःसाध्य हैं। उन्हीं में से कुछ भेदों को यहाँ सोदाहरण निर्दिष्ट किया जाता है।

(प्रथमपादगताव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

मानेन मानेन सखि प्रयणो भूत[1] प्रिये जने ।
खण्डिता कण्ठमाश्लिष्य तमेव कुरु सत्रपम् ।।४।।

अन्वय— सखि प्रिये जने अनेन मानेन प्रणयः मा भूत्। खण्डिता कण्ठम् अश्लिष्य तम् एव सत्रपं कुरु।

शब्दार्थ—सखि = हे सखि। प्रिये जने = प्रियजन के प्रति, प्रियतम के प्रति। अनेन = इस प्रकार के, ऐसे। मानेन = मान के साथ, प्रणय-कोप के साथ। प्रणयः = प्रणय, प्रेम। मा भूत = नहीं करना चाहिए, मत करो। खण्डिता = उपेक्षित होकर। **कण्ठम्** = गले में। आश्लिष्य = लिपटकर, आलिङ्गन करके। तम् एव = उसको ही। सत्रपं = लज्जित। कुरु = कर दो।

अनुवाद— हे सखि, (तुमको अपने) प्रियतम के प्रति इस प्रकार मान (प्रणय-कोप) के साथ प्रेम नहीं करना चाहिए। उपेक्षित होकर भी (अन्य नायिका के साथ सुरत करके अपराध करने वाले उस प्रियतम के) गले में लिपट कर उसको ही लज्जित कर दो।

संस्कृतव्याख्या— प्रथमपादगतम् अव्यपेतमादियमकं निदर्शयत्यत्र- **माऽनेनेति**। **सखि** हे वयस्ये, **प्रिये जने** स्वप्रियतमे प्रति **अनेन** ईदृशेन **मानेन** प्रणयकोपेन **प्रणयः** प्रेमपरिचयः **माभूत्** न कर्त्तव्यः, प्रियतमं प्रति त्वया मानः न कर्त्तव्यः इत्यर्थः। **खण्डिता** अन्यया नायिकया सङ्गमनाद् अपराधयुतेन प्रियतमेन उपेक्षितापि तस्य **कण्ठम् आश्लिष्य** आलिङ्ग्य कृतापराधं **तम्** प्रियतमं **सत्रपं** लज्जितं **कुरु**। मानिनीं खण्डितां नायिकां प्रति तस्याः प्रियसख्याः कथनमिदम्। अत्र प्रथमे पादे आदौ माऽनेन इत्यस्य वर्णसमूहस्य अव्यवहितेनावृत्या प्रथमपादगताद्यव्यवहितरूपं अव्यपेतयमकं विद्यते।

विशेष—

(१) प्रस्तुत पद्य में प्रथम पाद के आदि में विद्यमान अव्यपेत एकपाद यमक का उदाहरण दिया गया है। प्रथम पाद के आदि में अन्य वर्णसमूह के व्यवधान से रहित मानेन इस वर्ण-समुदाय की आवृत्ति हुई है। प्रथम 'मानेन' पद मान प्रातिपदिक का तृतीया एक वचन का रूप है और दूसरा 'मानेन' मा तथा अनेन इन दो पदों की दीर्घसन्धि के परिणामस्वरूप निष्पन्न वर्णसमुदाय है। दण्डी के अनुसार यमक में वर्णसमुदाय अपेक्षित है- अर्थविचार नहीं। इस प्रकार यहाँ मानेन पद की आवृति श्लोक के प्रथम चरण के आदि में अव्यवहित रूप से होने के कारण प्रथमपादगताव्यपेतादियमक है।

(२) किसी अन्य स्त्री के प्रति आसक्त नायक की प्रतीक्षा करती हुई नायिका खण्डिता कहलाती है। जैसा कि नाट्यशास्त्र में कहा गया है—

> व्यासङ्गादुचिते यस्या वासके नागतः प्रियः।
> तदागमनादार्त्ता तु खण्डिकेत्यभिधीयते ॥
>
> (ना० शा० २२.२०९)

(३) यदि खण्डिता नायिका नायक के प्रति मान करती है तो नायक के निर्लज्ज होने की आशङ्का बनी रहती है। सखि के खण्डिता नायिका को गृहागत नायक के प्रति मान न करके अलिङ्गन द्वारा नायक को लज्जित करने का परामर्श देती है जिससे लज्जा का अनुभव करके वह भविष्य में ऐसा अपराध न करें।

(द्वितीयपादगताव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

मेघा नादेन हंसानां मदनो मदनोदिना ।
नुन्नमानं मनः स्त्रीणां सह रत्या विगाहते ।।५।।

अन्वय— मदनः हंसानां मदनोदिना मेघनादेन स्त्रीणां नुन्नमानं मनः रत्या सह विगाहते ।

शब्दार्थ— मदनः = कामदेव । हंसानां = हंसों के । मदनोदिना = मद को दूर करने वाले । मेघनादेन = मेघ के गर्जन द्वारा । स्त्रीणां = स्त्रियों के । नुन्नमानं = मान-रहित, प्रणंयकोपरहित । मनः = मन को, चित्त को । रत्या सह = रति के साथ अनुरागभाव से । विगाहते = आन्दोलित कर रहा है ।

अनुवाद— कामदेव हंसों के मद को दूर करने वाले मेघगर्जन द्वारा स्त्रियों के प्रणयकोप-रहित चित्त को रति (नामक पत्नी) के साथ (अथवा अनुराग भाव से) आन्दोलित कर रहा है ।

संस्कृतव्याख्या— द्वितीयपादगतम् अव्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **मेघनादेनेति** । **मदनः** कामदेवः **हंसानां** पक्षिविशेषाणां **मदनोदिना** मदापहारिणा मदमपनयता वा **मेघनादेन** मेघध्वनिना **स्त्रीणां** युवतीनां **नुन्नमानम्** अपगतप्रणयकोपं **मनः** चित्तं **रत्या सह** रतिनाम्ना स्वपत्न्या सह अनुरागभावेन वा **विगाहते** आन्दोलयति। वर्षाकाले मेघगर्जनं श्रुत्वा मानिनीयुवतीनां प्रणयकोपमपक्षीयते येन तादृशं तासां मनः मानरहितं भवति । अत्र द्वितीये पादे आदौ अव्यवहितस्य मदनो इत्यस्य वर्णसमूहस्य पुनरावृतिः विद्यते अत एव द्वितीयपादगतम् अव्यपेतम् आदियमकमस्ति ।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में पद्य के द्वितीय चरण के आदि में 'मदनो' इस वर्णसमुदाय की व्यवधान-रहित पुनरावृत्ति हुई है अतः यहाँ द्वितीयपादगताव्यपेत आदियमक है।

(२) इस पद्य में विप्रलम्भ अवस्था में मानवती कामिनियों के मन में उद्दीप्क मेघगर्जन को सुनकर प्रियतमों के प्रति रति के उद्दीपिति होने का वर्णन किया गया है।

(३) 'मन' और 'रति' शब्द में श्लेष भी है । मन शब्द चित्त और मानसरोवर हंसों की क्रीडास्थली तथा रति शब्द अनुरागभाव और रति नामक कामदेव की पत्नी के अर्थ में प्रयुक्त है ।

(तृतीयपादगताव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

राजन्वत्यः प्रजा जाता भवन्तं प्राप्य सत्पतिम्[१] ।
चतुरं चतुरम्भोधिरशनोर्वीकरग्रहे[२] ।।६।।

अन्वय— चतुरम्भोधिरशनोर्वीकरग्रहे चतुरं भवन्तं सत्पतिं प्राप्य प्रजाः राजन्वतः जाताः ।

शब्दार्थ— चतुरम्भोधिरशनोर्वीकरग्रहे = चारों समुद्रों रूपी मेखला वाली पृथ्वी के पाणिग्रहण (अथवा कर के ग्रहण) में। चतुरं = निपुण। भवन्तं = आपको। सत्पतिं = श्रेष्ठपति (अथवा श्रेष्ठ राजा) को। प्राप्य = प्राप्त करके। प्रजाः = प्रजाएँ। राजन्वतः = अच्छे राजा से युक्त। जाताः = हो गयीं हैं।

अनुवाद— (हे राजन्), चारों समुद्रों रूपी मेखला वाली पृथ्वी के करग्रहण (पणिग्रहण अथवा राजा द्वारा गृहीत कर के विषय में) चतुर आप (जैसे) श्रेष्ठपति (अथवा श्रेष्ठ राजा) को प्राप्त करके प्रजाएँ अच्छे राजा वाली (अच्छे राजा से युक्त) हो गयी हैं।

संस्कृतव्याख्या— तृतीयपादगतम् अव्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **राजन्वत्य इति**। **चतुरम्भोधिरशनोर्वीकरग्रहे** चतुरम्भोधिरशनायाः चतुःसमुद्रमेखलायाः उर्व्याः पृथिव्याः **करग्रहे** पाणिग्रहे चतुरम्भोधिराजगृहीतकररूपधनग्रहणे वा **चतुरं** कुशलं **भवन्तं** राजानं **सत्पतिं** श्रेष्ठं राजानं **प्राप्य** लब्ध्वा **प्रजाः** प्रकृतिजनाः **राजन्वतः** सुराजयुक्ताः जाताः । अत्र तृतीये पादे आदौ अव्यवहिस्य चतुरमिति वर्णसमुदायस्य पुनरावृत्तिः विद्यते अत एवात्र तृतीयपादगम् अव्यपेतम् आदियमकम् अस्ति ।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में तृतीय पाद के आदि में 'चतुरम्' इस वर्णसमुदाय की अव्यवहित पुनरावृत्ति हुई है अतः यहाँ तृतीयपादगत अव्यपेत आदियमक है।

(चतुर्थपादगताव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

अरण्यं कैश्चिदाक्रान्तमन्यैः सद्म दिवौकसाम् ।
पदातिरथनागाश्वरहितैरहितैस्तव ।।७।।

अन्वय— तव पदातिरथनागाश्वरहितैः कैश्चित् अहितैः अरण्यम् (आक्रान्तम्) अन्यैः दिवौकसां सद्म आक्रान्तम् ।

(१) सम्प्रति, साम्प्रतम् ।

(२) -रसनोर्वी, -परिग्रहे ।

शब्दार्थ— तव = तुम्हारे। पदातिरथनागाश्वरहितैः = पैदल, रथ, हाथी तथा घोड़ों से रहित। कैश्चित् = कुछ। अहितैः = शत्रुओं द्वारा। अरण्यं = जङ्गल। अन्यैः = अन्य (शत्रुओं) द्वारा। दिवौकसां = देवताओं का। सद्म = घर। आक्रान्तम् = आश्रय बनाया गया।

अन्वय— (हे राजन्), तुम्हारे पैदल, रथ, हाथी तथा घोड़ों से रहित शत्रुओं द्वारा (भागकर) जङ्गल और अन्य (शत्रुओं) द्वारा (मरकर) देवताओं का घर (अर्थात् स्वर्गलोक) आश्रय बनाया गया।

संस्कृतव्याख्या—चतुर्थपादगतम् अव्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **अरण्य-मिति**। **पदातिरथनागाश्वरहितैः** पदातयः पदचारिसैनिकाः रथाः स्यन्दनाः नागाः हस्तिनः अश्वाः तुरगाः च तैः विहीनैः चतुरङ्गसेनारहितैः **कैश्चित्** कतिपयैः युद्धात् पलायमानैः **अहितैः** शत्रुभिः **अरण्यं** जङ्गलम् **अन्यैः** अपरैः अवशिष्टैः शत्रुभिः मरणान्तरं **दिवौकसां सद्म** देवानां गृहं स्वर्गलोकम् **आक्रान्तं** निवासाय आश्रयं कृतम्। केचित् तव शत्रवः रणादपक्रान्ताः सन्तः वने आश्रितवन्तः अपरे च मृताः जाताः अत एव स्वर्गलोके आश्रितवन्तः इति भावः। अत्र चतुर्थे पादे आदौ 'रहितै' इति वर्णसमूहस्य अव्यवहिता पुनरावृत्तिः विद्यते अत एव चतुर्थपादगतम् अव्यपेतम् आदियमकं वर्तते।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में राजा के युद्धकौशल की अतिशयता का वर्णन हुआ है। यहां चतुर्थ पाद के आदि में 'रहितै' इस वर्णसमूह की व्यहित आवृति हुई है अतः चतुर्थपादगत अव्यपेत आदियमक है।

(प्रथमद्वितीयपादगताव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

मधुरं मधुरम्भोजवदने वद नेत्रयोः।
विभ्रमं भ्रमरभ्रान्त्या विडम्बयति किं नु ते[१] ॥८॥

अन्वय— अम्भोजवदने, वद, किं नु मधुः भ्रमरभ्रान्त्या ते नेत्रयोः मधुरं विभ्रमं विडम्बयति।

शब्दार्थ— अम्भोजवदने = हे कमलरूपी मुख वाली। वद = बतलाओ। किं नु = निश्चित रूप से क्या। मधुः = वसन्त। भ्रमरभ्रान्त्या = भ्रमरों की भ्रान्ति से। भ्रमरों के भ्रमण से। ते = तुम्हारी। नेत्रयोः = दोनों आँखों की। मुधरं = मधुर।

(१) कित्र ते, किंन्विदम्।

विभ्रमं = विभ्रम (चञ्चलता) का। विडम्बयति = विडम्बना कर रहा है, उपहास कर रहा है, अनुकरण कर रहा है।

अनुवाद— हे कमलरूपी मुख वाली (प्रियतमे), तुम बतलाओ कि क्या (यह) वसन्त भ्रमरों के भ्रमण से तुम्हारी दोनों आखों की मधुर चञ्चलता का अनुकरण कर रहा है (अर्थात् उसकी समानता को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है)।

संस्कृतव्याख्या— द्विपादयुक्तं प्रथमद्वितीयपादगतम् अव्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **मधुरमिति**। **अम्भोजवदने** हे कमलरूपमुखसम्पन्ने प्रियतमे **वद** त्वमेव कथय **किं नु** इति वितर्के अयं **मधुः** वसन्तः **भ्रमरभ्रान्त्या** भ्रमराणां मधुकराणां भ्रान्त्या भ्रमणद्वारा **ते** प्रियतमायाः **नेत्रयोः** चक्षुषोः **विभ्रमं** चाञ्चल्यं **विडम्बयति** उपहसति अनुकरोति वा। वसन्तः भ्रमरभ्रमणद्वारा तव नेत्रचाञ्चल्यस्य सादृश्यं प्राप्तुं प्रयतते इति भावः। नायिकां प्रति नायकस्य चाटुकारितेयम्। पद्यस्य पादद्वयोः प्रथमपादे आदौ मधुरमित्यस्य वर्णसमूहस्य द्वितीये पादे च आदौ वदने इत्यस्य वर्णसमूहस्य अव्यवहितेन पुनरावर्तनादत्र पादद्वयगतं प्रथमद्वितीयपदगतमव्यपेतम् आदियमकं विद्यते।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में पद्य के दो चरणों में से प्रथम चरण के आदि में 'मधुरं' इस वर्णसमुदाय की तथा द्वितीय चरण के आदि में 'वदने' इस वर्णसमुदाय की अव्यवहित पुनरावृत्ति हुई है, अतः यहाँ द्विपादयमक के अन्तर्गत प्रथमद्वितीयपादगत अव्यपेत आदियमक है।

(२) कमल पर मुख के आरोप से कथन में चमत्कारिता आ गयी है। कमल पर भ्रमर मँडरा रहे हैं तो मुख पर चञ्चल आँखें भ्रमणशील हैं।

(प्रथमतृतीयपादगताव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

वारणो वारणोद्दामो हयो वा स्मर दुर्धरः।
न यतो नयतोऽन्तं[१] नस्तदहो विक्रमस्तव ।।९।।

अन्वय— स्मर, यतः रणोद्दामः वारणः दुर्धरः हयः वा न, तत् नः अन्तं नयतः अहः तव विक्रमः।

शब्दार्थ— स्मर = हे कामदेव! यतः = जिससे। रणोद्दामः = युद्धोन्मद। वारणः = हाथी। दुर्धरः = दुर्धर्ष, कठिनायी से नियन्त्रित किये जाने वाला। हयः वा = अथवा घोड़ा। न = नहीं हैं। तत् = तो भी। नः = हम लोगों को। अन्तं =

(१) -ऽस्तं।

विनाश की ओर, मृत्यु की ओर। नयतः = ले जाते हुए । ते = तुम्हारा। अहः = आश्चर्यजनक। विक्रमः = पराक्रम (ही है)।

अनुवाद— हे कामदेव ! (तुम्हारे पास) युद्धोन्मद हाथी अथवा घोड़े नहीं हैं तो भी हम लोगों को विनाश की ओर ले जाने वाला तुम्हारा आश्चर्यजन पराक्रम ही है।

संस्कृतव्याख्या— द्विपादगतयमकस्य प्रथमतृतीयपादगतमव्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **वारण इति**। स्तर = हे कामदेव, **यतः** यस्मात् कारणात् **रणोद्दामः** रणे युद्धे उद्दामः दुर्निर्वार्यः **वारणः** हस्तीः **दुर्धरः** दुर्निग्रहः च **हयः** अश्वः **वा न** विद्यते **तत्** तथापि **नः** अस्माकम् **अन्तं** विनाशं **नयतः** प्रापयतः **ते** तव कामस्य विक्रमः पराक्रमः **अहो** आश्चर्यास्पदमस्ति। सैन्यं विनापि भवता अस्माकं सदृशाः जनाः नाशं प्रापिता इत्याश्चर्यजनकमिति भावः। अत्र प्रथमपादे आदौ 'वारणो' इति वर्णसमूहस्य तृतीयपादे आदौ च 'न यतो' इति वर्णसमूहस्य अव्यवहितेन आवृत्तिः अत एव प्रथम-तृतीयपादगतं अव्यपेतम् आदियमकं विद्यते।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण के प्रथम चरण के आदि में 'वारणों' वर्णसमूह की तथा तृतीय चरण के आदि में 'न यतो' इस वर्णसमूह की अव्यवहित आवृत्ति हुई है अत एव प्रथमतृतीयचरणगत अव्यपेत आदियमक है।

(प्रथमचतुर्थपादगताव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

राजितैराजितैक्ष्ण्येन जीयते त्वादृशैर्नृपैः ।
नीयते च पुनस्तृप्तिं वसुधा वसुधारया ।।१०।।

अन्वय— आजितैक्ष्ण्येन राजितैः त्वादृशैः नृपैः वसुधा जीयते पुनः च वसुधारया तृप्तिं नीयते।

शब्दार्थ— आजितैक्ष्ण्येन = युद्ध (आजि) की भीषणता (प्रचण्डता, तीक्ष्णता) से। राजितैः = सुशोभित। त्वादृशैः = आपके समान। नृपैः = राजाओं द्वारा। वसुधा = पृथिवी। जीयते = जीती जाती है। पुनः च = और फिर। वसुधारया = धनसम्पत्ति की वर्षा के द्वारा। तृप्तिं = तृप्ति को। नीयते = प्राप्त करती है।

अनुवाद— (हे राजन्) युद्ध की भीषणता से शोभायमान आपके समान राजाओं द्वारा (यह) पृथ्वी जीती जाती है और फिर धनसम्पत्ति की वर्षा के द्वारा तृप्ति को प्राप्त करती है (तृप्त की जाती है)।

संस्कृतव्याख्या— द्विपादयमकस्य प्रथमचतुर्थपादगतम् अव्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **रजितै इति**। हे राजन्, **आजितैक्ष्णेन** आजेः युद्धस्य तैक्ष्ण्येन भीषणतया

त्वादृशैः भवत्सदृशैः **नृपैः** राज्ञा **वसुधा** एषा पृथ्वी **जीयते** स्वाधीनाक्रियते **पुनः च** ततः च **वसुधारया** वसूनां धनसम्पत्तीनां धारया धारावृष्ट्या धनप्रदानेनेति भावः सा पृथ्वी **तृप्तिं नीयते** सन्तृप्तं क्रियते । अत्र पद्यस्य प्रथमपादे आदौ 'राजितै' इत्यस्य वर्णसमूहस्य चतुर्थपादे चादौ वसुधा इत्यस्य वर्णसमूहस्य अव्यवहितेन आवृत्तिः विद्यते अत एव द्विपादयमके प्रथमचतुर्थपादगतम् अव्यपेतं आदियमकमस्ति ।

विशेष—

(१) इस पद्य के प्रथम चरण के आदि में 'राजितै' इस वर्णसमूह की तथा चतुर्थ चरण के आदि में 'वसुधा' इस वर्णसमूह की अव्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ प्रथमचतुर्थपादगत अव्यपेत आदियमक है ।

(द्वितीयतृतीयपादगताव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

करोति सहकारस्य कलिकोत्कलिकोत्तरम् ।

मन्मनो मन्मनोप्येष[1] मत्तकोकिलनिस्वनः ।।११।।

अन्वय— सहकारस्य कलिका मन्मनः मत्तकोकिलनिस्वनः अपि मन्मनः उत्कलितोत्तरं करोति ।

शब्दार्थ— सहकारस्य = आम्र की । कलिका = कली, अविकसित मञ्जरी । मन्मनः = काम को उद्दीप्त करने वाली अथवा अव्यक्त मधुर । मत्तकोकिलनिस्वनः = मतवाली कोयलों की कूजन । अपि = भी । मन्मनः = मेरे मन को । उत्कलिकोत्तरं = उत्कण्ठा से परिपूर्ण । करोति = कर रही है ।

अनुवाद— आम्र की कली (अविकसित मञ्जरी) तथा कामदेव को उद्दीप्त करने वाली (अथवा अव्यक्त मधुर) मतवाली कोयलों की कूजन मेरे मन को उत्कण्ठा से परिपूर्ण कर रही है ।

संस्कृतव्याख्या— द्विपादयमकस्य द्वितीयतृतीयपादगतम् अव्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **करोतीति** । **सहकारस्य** आम्रस्य **कलिका** अविकसितमञ्जरी **मन्मनः** कामोद्दीपकम् अव्यक्तमधुरं वा **मत्तकोकिलनिस्वनः** समदकोकिलकूजनं **अपि** च **मन्मनः** मम मानसम् **उत्कलितोत्तरं** उत्कण्ठितं **करोति** सम्पादयति । अत्र द्विपादगतयमकस्य द्वितीये पादे आदौ कलिकोत् इत्यस्य वर्णसमूहस्य तृतीये पादे चादौ 'मन्मनो' इत्यस्य वर्णसमूहस्य अव्यवहितेन आवृतिः वर्तते अत एव द्विपादगतस्य द्वितीयतृतीयपादगतम् अव्यपेतम् आदियमकं विद्यते ।

---

(१) ह्येष ।

विशेष—

(१) इस पद्य में द्वितीयपाद के आदि में 'कलिकोत्' इस वर्णसमूह की तथा तृतीय पाद के आदि में 'मन्मनो' इस वर्णसमूह की अव्यवहित आवृत्ति हुई है अत एव यहाँ द्वितीयतृतीयपादगत अव्यपेत आदियमक है।

(द्वितीयचतुर्थपादगताव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

कथं त्वदुपालम्भाशाविहताविह तादृशी।

अवस्था नालमारोढुमङ्गनामङ्गनाशिनी ।।१२।।

अन्वय— इह त्वदुपालम्भाशाविहतौ तादृशी अङ्गनाशिनी अवस्था अङ्गनाम् आरोढुं कथं न अलम्।

शब्दार्थ— इह = यहाँ। त्वदुपालम्भाशाविहतौ = तुम्हारे मिलन की आशा के नष्ट (समाप्त) हो जाने पर। तादृशी = वैसी, उस प्रकार की (वर्णनातीत)। अङ्गनाशिनी = अङ्गों का नाश करने वाली। अवस्था = अवस्था, दशा। अङ्गनां = स्त्रीं को। आरोढुं = आक्रान्त करने के लिए, प्रभावित करने के लिए। कथं = कैसे। न अलम् = समर्थ नहीं होगी।

अनुवाद— तुम्हारे मिलन की आशा के समाप्त हो जाने पर वैसी (वर्णनातीत) अङ्गों को नष्ट करने वाली (मरण की) अवस्था (उस) स्त्री को आक्रान्त (प्रभावित) करने के लिए कैसे समर्थ नहीं होगी (अर्थात् अवश्य प्रभाविक करेगी)।

संस्कृतव्याख्या— द्विपादयमकस्य द्वितीयचतुर्थपादगतम् अव्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **कथमिति**। **इह** अत्र **त्वदुपालम्भाशाविहतौ** तव नायकस्य उपालम्भस्य मिलनस्य **आशायाः** प्रत्याशायाः विहतौ विघाते जाते **तादृशी** वर्णनातिक्रान्ता प्रवृद्धा वा **अङ्गनाशिनी** शरीरावयवविनाशकर्त्री मृत्युरूपा **अवस्था** दशा **अङ्गनां** नायिकाम् **आरोढुम्** अतिक्रान्तुं **कथं न अलं** समर्था जाता, अवश्यमेव समर्था इत्यर्थः। सा नायिका तव विरहे मरणोन्मुखी विद्यते इति नायकं प्रति नायिकादूत्याः कथनमस्ति। अत्र द्विपादयमकस्य द्वितीये पादे 'विहता' इति वर्णसमुदायस्य चतुर्थे पादे आदौ च 'मङ्गना' इत्यस्य वर्णसमुदायस्य अव्यवहिता आवृत्तिः अत एव द्वितीयचतुर्थपादगतम् अव्यपेतम् आदियमकं विद्यते।

विशेष—

(१) इस उदाहरण में पद्य के द्वितीय चरण के आदि में 'विहता' इस वर्णसमुदाय की तथा चतुर्थ चरण के आदि में 'मङ्गना' इस वर्णसमुदाय की अव्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ द्वितीयचतुर्थपादगत अव्यवहित आदियमक है।

(२) काम की दश दशाएँ बतलायी गयीं हैं। अङ्गों का विनाश अर्थात् मृत्यु अन्तिम दशा है। साहित्यदर्पण के अनुसार अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, सम्प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मृत्ति- ये काम की दश दशाएँ हैं—

अभिलाषश्चिन्तास्मृतिगुणकथनोद्वेगसम्प्रलापाश्च ।
उन्मादो व्याधिर्जडता मृत्तिरिति दशात्र कामदशाः ॥

(साहित्यदर्पण ३.१९०)

(तृतीयचतुर्थपादगताव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

निगृह्य नेत्रे कर्षन्ति बालपल्लवशोभिना ।
तरुणा तरणान् कृष्टानलिनो नलिनोन्मुखाः ।।१३।।

अन्वय— नलिनोन्मुखाः अलिनः बालपल्लवशोभिना तरुणा कृष्टान् तरुणान् नेत्रे निगृह्य कर्षन्ति ।

शब्दार्थ— नलिनोन्मुखाः = कमलों की ओर अभिमुख (होकर मडराते हुए)। अलिनः = भौंरे । बालपल्लवशोभिना = नूतन कोपलों से शोभायमान । तरुणा = वृक्ष (की सुन्दरता) के द्वारा । कृष्टान् = आकृष्ट (आकर्षित) हुए । तरुणान् = युवकों की । नेत्रे = आँखों को । निगृह्य = पकड़ कर, बलपूर्वक । कर्षन्ति = खींच लेते हैं, आकर्षित कर लेते हैं ।

अनुवाद— कमलों की ओर अभिमुख (होकर मडराते हुए) भौंरे नूतन कोपलों से शोभायमान वृक्ष (की सुन्दरता) के द्वारा युवकों की आखों को पकड़ कर (बलपूर्वक) आकर्षित कर लेते हैं (खींच लेते हैं)।

संस्कृतव्याख्या— द्विपादयमकस्य तृतीयचतुर्थपादगतम् अव्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **निगृह्येति**। **नलिनोमुखाः** कमलाभिमुखाः कमलमधुपायनायोत्सुकाः इत्यर्थः **अलिनः** भ्रमराः **बालपल्लवशोभिना** बालपल्लवैः नूतनकिसलयैः शोभिना अलङ्कृतेन **तरुणा** वृक्षेण **कृष्टान्** आकृष्टमाणान् **तरुणान्** युवकान् **नेत्रे** लोचने **निगृह्य** स्ववशीकृत्य इव **कर्षन्ति** स्वसौन्दर्यदशनार्थं स्वभिमुखीकुर्वन्ति। नवकिसलयशोभायमानं वृक्षं दृश्यमानानां युवकानां मनः अतिशयेनाकर्षयन्तीति भावः। अत्र द्विपादयमकस्य तृतीये पादे आदौ तरुणा इत्यस्य वर्णसमूहस्य चतुर्थे पादे **आदौ** नलिनो इति वर्णसमूहस्य अव्यवहिता आवृत्तिः विद्यते अत एव इत्यस्य द्विपादगतं तृतीयचतुर्थपादगतम् अव्यपेतम् आदियमकं विद्यते ।

विशेष—

(१) इस उदाहरण पद्य के तृतीय पाद के आदि में 'तरुणा' और चतुर्थपाद के आदि

में 'नलिनो' इस वर्णसमुदाय की अव्यवहित आवृत्ति हुई है। अतः यहाँ द्विपादगत वाला तृतीय चतुर्थपदगत अव्यपेत आदियमक है।

(प्रथमद्वितीयतृतीयपादगताव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

विशदा विशदामत्तसारसे सारसे जले ।
कुरुते कुरुते नेयं हंसी मामन्तकामिषम् ।।१४।।

अन्वय— विशदामत्तसारसे सारसे जले विशदा इयं हंसी कुरुतेन माम् अन्तकामिषं कुरुते ।

शब्दार्थ— विशदामत्तसारसे = जिसमें मतवाले (आमत्त) सारस प्रवेश कर रहे हैं (खेल रहे हैं) ऐसे । सारसे = सरोवर के । जले = जल में । विशदा = शुभ्रवर्ण वाली, सफेद । इयं = यह । हंसी = हंसवधू । कुरुतेन = (मेरे लिए) कष्टकारी (उद्विग्न करने वाली) कूजन से । माम् = मुझको । अन्तकामिषं = यमराज (अन्तक) का ग्रास (भोंज्यपदार्थ, आमिष) । कुरुते = कर रही है, बना रही है ।

अनुवाद— जिसमें मतवाले सारस प्रवेश कर रहें हैं (खेल रहे हैं) ऐसे सरोवर के जल में (क्रीडा करती हुई) यह शुभ्रवर्ण वाली हंसी (मेरे लिए) कष्टकारी (उद्विग्न करने वाली) कूजन से मुझको यमराज का ग्रास बना रही है ।

संस्कृतव्याख्या— त्रिपादगतस्य प्रथमद्वितीयतृतीयपादगतम् अव्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **विशदेति** । **विशदामत्तसारसे** विशन्तः प्रविशन्तः क्रीडमानाः वा आमत्ताः मदयुक्ताः सारसाः जलपक्षिविशेषाः यस्मिन् तादृशे **सारसे** सरोवरे जले **विशदा** कीडन्ती **इयम्** एषा पुरोदृश्यमाना **हंसी** हंसवधूः **कुरुतेन** मधुरेणापि विरहिजनोद्वेगकरत्वाद् कष्टकरेण कूजनेन **मां** विरहिणं **अन्तकामिषं** अन्तकस्य यमराजस्य आमिषं भोजनं ग्रासं वा **कुरुते** विधत्ते; मां कामपीडितं कर्त्तुं तत्परः इति भावः । अत्र प्रथमे पादे आदौ 'विशदा' इत्यस्य द्वितीये पादे आदौ 'सारसे' इत्यस्य तृतीयेपादे 'कुरुते' इत्यस्य वर्णसमूहस्य अव्यवहितावृत्तिः अत एव प्रथमद्वितीयतृतीयपादगतम् अव्यपेतम् आदियमकं विद्यते ।

विशेष—

(१) इस पद्य में प्रथमपाद के आदि में 'विशदा', द्वितीय पाद के आदि में 'सारसे' और तृतीय पाद के आदि में 'कुरुते' इस वर्णसमुदाय की अव्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ त्रिपादगत वाला प्रथमद्वितीयतृतीयपादगत अव्यपेत आदियमक है।

(प्रथमद्वितीयचतुर्थपादगताव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

विषमं विषमन्वेति मदनं मदनन्दनः ।
सहेन्दुकलयापोढमलया मलयानिलः ।।१५।।

अन्वय— मदनन्दनः मलयानिलः अपोढमलया इन्दुकलया सह विषमं विषं मदनं अन्वेति ।

शब्दार्थ— मदनन्दनः = मुझे आनन्दरहित (दुःखी) करने वाला । मलयानिलः = मलयपवन । अपोढमलया = मलिनता से रहित, निर्मल, स्वच्छ । इन्दुकलया सह = चन्द्रकला (चाँदनी) के साथ । विषमं = तीक्ष्ण, दुःसह । विषं = विषरूप । मदनं = कामदेव का । अन्वेति = अनुगमन कर रहा है, अनुचर हो रहा है, सहायता कर रहा है ।

अनुवाद— मुझे आनन्दरहित (दुःखी) करने वाला मलयपवन मलिनता से रहित (स्वच्छ) चन्द्रकला (चाँदनी) के साथ दुःसह विषरूपी कामदेव का अनुगमन (सहायता) कर रहा है ।

संस्कृतव्याख्या— त्रिपादयमकस्य प्रथमद्वितीयचतुर्थपादगतम् अव्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **विषममिति** । **मदनन्दनः** मम अनन्दनः दुःखकारकः **मलयानिलः** मलयपवनः **अपोढमलया** अपोढं परित्यक्तं मलं मालिन्यं यया तादृश्या स्वच्छया **इन्दुकलया** चन्द्रलेखया सह **विषमं** तीक्ष्णं **विषम्** अलर्करूपं **मदनं** कामदेवम् **अन्वेति** अनुकरोति साहाय्यं करोतीत्यर्थः । अत्र प्रथमे पादे आदौ विषमं इत्यस्य द्वितीये पादे आदौ 'मदनं' इत्यस्य चतुर्थे पादे 'मलया' इत्यस्य वर्णसमूहस्य अव्यवहिता आवृत्तिः विद्यते अत एव त्रिपादयमकस्य प्रथमद्वितीयचतुर्थपादगतं अव्यपेतम् आदियमकम् अस्ति ।

विशेष—

(१) इस उदाहरण के प्रथम चरण के आदि में 'विषमं', द्वितीय चरण के आदि में 'मदनं और चतुर्थ चरण के आदि में 'मलया' इस वर्णसमूह की अव्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ त्रिपादगत वाला प्रथमद्वितीयचतुर्थपादगत अव्यपेत आदियमक है।

(प्रथमतृतीयचतुर्थपादगताव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

मानिनी मा निनीषुस्ते निषङ्गत्वमनङ्ग मे ।
हारिणी हारिणी शर्म तनुतां तनुतां यतः ।।१६।।

अन्वय— अनङ्ग, मा ते निषङ्गत्वं निनीषुः हारिणी हारिणी मानिनी तनुतां यतः मे शर्म तनुताम् ।

शब्दार्थ— अनङ्ग = हे कामदेव। मा = मुझको। निषङ्गत्वं = तरकस। निनीषुः = बनाने की इच्छा करने वाली। हारिणी = हार से युक्त, हार से शोभायमान (अलङ्कृत)। हारिणी = मन को हरने वाली। मानिनी = प्रणयकोप से युक्त। तनुतां = कृशत्व को। यतः = प्राप्त करते हुए। मे = मेरे। शर्म = सुख को। तनुताम् = प्रदान करे, विस्तृत करे, बढ़ाए।

अनुवाद— हे कामदेव, (मुझ पर कामबाणों का प्रहार करके) मुझको (आपका) तरकस बनाने की इच्छा करने वाली, हार से शोभायमान (अलङ्कृत), मन को हरने वाली और प्रणयकोप से युक्त (मेरी प्रियतमा) (विरह में) कृशता को प्राप्त होने वाले मेरे सुख को बढ़ाये (अर्थात् मानत्याग कर मुझे समागम का सुख प्रदान करें)।

संस्कृतव्याख्या— त्रिपादयमकस्य प्रथमतृतीयचतुर्थपादगतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र– **मानिनीति**। **अनङ्ग** हे कामदेव **मा** मां **ते** तव कामदेवस्य **निषङ्गत्वं** कामबाणप्रहारेण तूणीरभावं **निनीषुः** कर्त्तुमभिलषमाणा **हारिणी** हाराभूषणयुक्ता **हारिणी** मनोहारिणी **मानिनी** प्रणयकुपिता प्रियतमा **तनुतां** कृशतां **यतः** गच्छतः तद्वियोगे कृशतां प्राप्नुवतः, **मे** मम **शर्म** मानं त्यक्त्वा समागमेन सुखं **तनुतां** ददातु। हे काम, मम प्रियतमा मानं परित्यज्य यथा मयि प्रसीदतु तथा त्वं विधेहि इत्यनेन कामं स्तौति। अत्र प्रथमे पादे आदौ 'मानिनी' इत्यस्य तृतीये पादे आदौ हारिणी' इत्यस्य चतुर्थे पादे चादौ 'तनुतां' इत्यस्य वर्णसमुदायस्य अव्यवहिता आवृत्तिः अत्र एव प्रथमतृतीयचतुर्थपादगतम् अव्यपेतम् आदियमकम्।

विशेष—

(१) इस पद्य के प्रथम पाद के आदि में 'मानिनी', तृतीय पाद के आदि में 'हारिणी' और चतुर्थ पाद के आदि में 'तनुतां' इस वर्णसमुदाय की अव्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ प्रथमतृतीयचतुर्थपादगत अव्यपेत आदियमक है।

(द्वितीयतृतीयचतुर्थपादगताव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

जयता त्वन्मुखेनास्मानकथं न कथं जितम्।
कमलं कमलंकुर्वदलिमद्दालि मत्प्रिये ।।१७।।

अन्वय— मत्प्रिये, अस्मान् जयता त्वन्मुखेन कम् अलङ्कुर्वत् अलिमद्दलि अकथं कमलं कथं न जितम्।

शब्दार्थ— मत्प्रिये = हे मेरी प्रियतमे। **अस्मान्** = हमको। जयता = जीत लेने वाले, स्ववश कर लेने वाले। त्वन्मुखेन = तुम्हारे मुख के द्वारा। कम् = जल को। अलङ्कुर्वत् = शोभायमान करता हुआ। अलिमद्दलि = भ्रमरों से युक्त पङ्खुड़ियों

वाला। अकथं = वाणी विहीन, मूक। कमलं = कमल को। कथं = कैसे। न जितम् = नहीं जीता गया।

अनुवाद— हे मेरी प्रियतमे, हमको जीत लेने वाले तुम्हारे मुख के द्वारा जल को शोभायमान करता हुआ, भ्रमरों से युक्त पङ्खुड़ियों वाला तथा वाणीविहीन (मूक) कमल कैसे नहीं जीता (पराजित किया) गया (अर्थत् अवश्य ही पराजित कर दिया गया है)।

संस्कृतव्याख्या— द्वितीयतृतीयचतुर्थपादगतम् अव्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **जयतेति**। **मत्प्रिये** हे मम प्रियतमे, **अस्मान् जयता** स्ववशीकुर्वता **त्वन्मुखेन** तव प्रियतमायाः मुखेन आननेन **कं** जलम् **अलङ्कुर्वत्** शोभयत् **अलिमद्दलि** अलिमत् भ्रमरयुक्तं दलं यस्य तादृशम् **अकथं** वाणीरहितं मूकं **कमलम्** अरविन्दं **कथं न** जितम्, अवश्यमेव जितमित्यर्थः। अत्र द्वितीये तृतीये चतुर्थे च पादे आदौ क्रमेण 'नकथं', 'कमलं', दलिमद् (त्) इत्यस्य वर्णसमूहस्य अव्यवहिता आवृत्तिः अत एव त्रिपादगतस्य द्वितीयतृतीयचतुर्थपादगतम् अव्यपेतम् आदियमकं विद्यते।

विशेष—

(१) इस पद्य के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पाद के आदि में क्रमशः 'नकथं', 'कमलं', और 'दलिमत्' इस वर्णसमुदाय की अव्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ त्रिपादगत वाला द्वितीयतृतीयचतुर्थपादगत अव्यपेत आदियमक हैं।

(चतुष्पादगताव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

रमणी रमणीया मे पाटलापाटलांशुका।
वारुणीवारुणीभूतसौरभा सौरभास्मदम् ।।१८।।

अन्वय— अरुणीभूतसौरभा वारुणी इव पाटलपाटलांशुका सौरभास्पदं रमणी मे रमणीया (विद्यते)।

शब्दार्थ— अरुणीभूतसौरभा = लाल वर्ण वाली (सूर्य की) कान्ति से युक्त। वारुणी इव = वारुणी (पश्चिम दिशा अथवा मदिरा) के समान। पाटलापाटलांशुका = पाटल (गुलाब पुष्प) से हल्के लाल रंग वाले रेशमी वस्त्र से सम्पन्न। सौरभास्पदं = सुगन्धित शरीर वाली। रमणी = रमणी। मे = मेरे। रमणीया = रमण करने योग्य है।

अनुवाद— लाल वर्ण वाली (सूर्य की) कान्ति से युक्त, वारुणी (पश्चिम दिशा अथवा मदिरा) के समान गुलाब (पुष्प) से हल्के लाल रंग वाले रेशमी वस्त्र से सम्पन्न तथा सुगन्धित शरीर वाली (यह) रमणी मेरे रमण करने योग्य हैं।

संस्कृतव्याख्या— चतुष्पादगतम् अव्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **रमणीति**। **अरुणीभूतसौरभा** अरुणीभूता रक्तीभूता सौरभा कान्ति यस्याः तादृशा **वारुणी इव** पश्चिमदिगिव मधु इव वा **पाटलापाटलांशुका** पाटलपुष्पवत् आपाटलं ईषद्रक्तं अंशुः दूकूलं यस्याः तादृशी **सौरभास्पदं** सुगन्धभूमिः सुगन्धयुक्ता वा **रमणी** तरुणी **मे** मम **रमणीया** रमणयोग्या विद्यते। अत्र प्रथमे पादे आदौ रमणी इत्यस्य द्वितीये पादे आदौ 'पाटला' इत्यस्य तृतीये पादे आदौ वारुणी इत्यस्य चतुर्थे पादे आदौ च सौरभा इत्यस्य वर्णसमूहस्य अव्यवहिता आवृत्तिः विद्यते अत एव चतुष्पादगतम् अव्यपेतम् आदियमकम्।

विशेष—

(१) उदाहरण पद्य के प्रथम पाद के आदि में रमणी, द्वितीय पादके आदि में 'पाटला' तृतीय पाद के आदि में 'वारुणी' और चतुर्थ पाद के आदि में 'सौरभा' इस वर्णसमूह की आवृत्ति हुई है अतः यहाँ चतुष्पादगत अव्यपेत आदियमक है।

(व्यपेतादियमकोपक्रमणम्)

इति पादादियमकमव्यपेतं विकल्पितम्।
व्यपेतस्यापि वर्णने विकल्पास्तस्य[१] केचन ॥१९॥

अन्वय— इति अव्यपेतं पादादियमकम् विकल्पितम्। व्यपेतस्य अपि वर्णने तस्य केचन विकल्पाः (कथयन्ते)।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। अव्यपेतं = अव्यवहित। पादादियमकं = पाद के आदि में विद्यमान यमक। विकल्पितम् = उद्भावित किया गया। व्यपेतस्य = व्यवहित (यमक) के भी। वर्णने = वर्णन में। तस्य = उसके। केचन = कतिपय, कुछ। विकल्पाः = विकल्प (उद्भावनाएं) (कहे जा रहे हैं)।

अनुवाद— इस प्रकार (अन्य वर्णसमूह से) अव्यवहित पादादियमक (पाद के आदि में विद्यमान यमक) उद्भावित किया गया। (अन्य वर्णसमुदाय से) व्यवहित (आदियमक) के भी वर्णन में उसके कुछ विकल्प (उद्भावनाएँ) (कहे जा रहे हैं)।

संस्कृतव्याख्या— अव्यपेतादियमकं निदर्श्यात्र व्यपेतादियमकमुपक्रमते- **इतीति**। **इति** अनेन प्रकारेण **अव्यपेतं** अन्यैः वर्णसमूहैः अव्यवहितं **पादादियमकं** पादस्य पादानां वा आदौ विद्यमानं यमकं **विकल्पितम्** उद्भावितम् सभेदोहरणम् विवेचितम् **व्यपेतस्य** अन्यैः वर्णसमूहैः व्यवहितस्य आदियमकस्य **अपि वर्णने** विवेचने **तस्य** आदियमकस्य **केचन** कतिपयाः **विकल्पाः** उद्भावनाः प्रभेदाः वा विवेच्यन्ते।

(प्रथमद्वितीयपादगतव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

मधुरेणदृशां मानं मधुरेण सुगन्धिना ।
सहकारोद्गमेनैव शब्दशेषं करिष्यति ।।२०।।

अन्वय— मधुः मधुरेण सुगन्धिना सहकारोद्गमेन एव एणदृशां मानं शब्दशेषं करिष्यति ।

शब्दार्थ— मधुः = वसन्त । मधुरेण = मधुर, मनोहर, परागयुक्त । सुगन्धिना = सुगन्धित, सुगन्ध वाली । सहकारोद्गमेन एव = आम्रमञ्जरी द्वारा ही । एणदृशां = मृगाक्षी (रमणियों) के । मानं = प्रणयकोप को । शब्दशेषं = शब्दशेष, ध्वस्त, विनष्ट । करिष्यति = कर देता है ।

अनुवाद— वसन्त मधुर (अथवा परागयुक्त) और सुगन्धित आम्रमञ्जरी द्वारा ही मृगाक्षी (रमणियों) के प्रणयकोप को शब्दशेष (ध्वस्त) कर देता है ।

संस्कृतव्याख्या— प्रथमद्वितीयपादगतं व्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **मधुरेणेति** । **मधुः** वसन्तः **मधुरेण** मनोहरेण परागमधुयुक्तेन **सुगन्धिना** सुगन्धयुक्तेन **सहकारोद्गमेन** आम्रमञ्जर्या एव **एणदृशां** मृगाक्षीणां **मानं** प्रणयकोपं **शब्दशेषं** शब्दमात्रोऽवशिष्टं विनष्टं वा **करिष्यति** विधास्यति । वसन्तः आम्रमञ्जरीद्वारा मानिनीनां मानम् अपाकरोतीति भावः। अत्र प्रथमद्वितीयपादगतस्य आदौ 'मधुरेण' इत्यस्य वर्णसमूहस्य व्यवहिता आवृत्तिः अत एव प्रथमद्वितीयपादगतं व्यपेतमादियमकम् ।

विशेष—

(१) इस उदाहरण के प्रथम और द्वितीय चरण के आदि में 'मधुरेण' इस वर्णसमुदाय की व्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ प्रथमद्वितीयपादगत व्यपेत आदियमक है ।

(प्रथमतृतीयपादगतव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

करोऽतिताम्रो रामाणां[२] तन्त्रीताडनविभ्रमम् ।
करोति सेर्ष्यं[३] कान्ते च[४] श्रवणोत्पलताडनम् ।।२१।।

अन्वय— रामाणाम् अतिताम्रः करः तन्त्रीताडनविभ्रमं कान्ते च सेर्ष्यं श्रवणोत्पलताडनं करोति ।

---

(१) तत्र ।
(२) नारीणां ।
(३) सेर्ष्ये ।
(४) वा ।

शब्दार्थ— रामाणां = रमणियों का। अतिताम्रः = अत्यधिक रक्त वर्ण वाला। करः = हाथ। तन्त्रीताडनविभ्रमं = वीणा-वादन रूप विलास को। कान्ते च = और प्रियतम पर। सेर्ष्यं = ईर्ष्या (से उत्पन्न कोप) के साथ। श्रवणोत्पलताडनं = कर्णोत्पल से प्रहार करता है।

अनुवाद— रमणियों का अत्यधिक रक्त वर्ण वाला हाथ वीणा-वादन रूप विलास को और प्रियतम पर ईर्ष्या से उत्पन्न क्रोध के साथ कर्णोत्पल से प्रहार करता है।

संस्कृतव्याख्या— प्रथमतृतीयपादगतं व्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **करोऽतीति**। **रामाणां** रमणीणाम् **अतिताम्रः** अत्यधिकलोहितवर्णः **करः** हस्तः **तन्त्रीताडनविभ्रमं** वीणावादनविलासं **कान्ते च** प्रियतमे च **सेर्ष्यम्** ईर्ष्यापूर्वकं **श्रवणोत्पलताडनं** कर्णोत्पलप्रहारं करोति। अत्र प्रथमतृतीयपादयोः आदौ 'करोति' इत्यस्य वर्णसमुदायस्य व्यवधानेन आवृतिः भवति अत एव प्रथमतृतीयपादगतं व्यपेतं आदियमकम्।

विशेष—

(१) इस पद्य के प्रथम और तृतीय पाद के आदि में 'करोति' इस वर्णसमुदाय की व्यवधान के साथ आवृत्ति हुई है अतः यहाँ प्रथमद्वितीयपादगत व्यपेत आदियमक है।

(प्रथमचतुर्थपादगतव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

सकलापोल्लसनया कलापिन्या नु नृत्यते।
मेघाली नर्तिता वातैः सकलाऽपो विमुञ्चति ।।२२।।

अन्वय— कलापस्य उल्लसनया कलापिन्या नु नृत्यते, वातैः नर्तिता मेघाली अपः विमुञ्चति।

शब्दार्थ— कलापस्य = पङ्खों को। उल्लसनया = उल्लसित की हुई, फैलायी हुई। कलापिन्या = मयूरी के द्वारा। नु = निश्चित ही। नर्तिता = नृत्य किया जा रहा है। वातैः = पवन के द्वारा। नर्तिता = नचायी गयी, आन्दोलित की गयी, झकझोरी गयी। **सकला** = सम्पूर्ण। मेघाली = मेघमाला। अपः = जल को। विमुञ्चति = छोड़ रही है, बरसा रहीं है।

अनुवाद— पङ्खों को उल्लसित की हुई (फैलायी हुई) मयूरी द्वारा निश्चित ही नृत्य किया जा रहा है और पवन द्वारा आन्दोलित (झकझोरी गयी) सम्पूर्ण मेघमाला जल को बरसा रही है।

संस्कृतव्याख्या— प्रथमचतुर्थपादगतं व्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र-**सकलेति**। **कलापस्य** बर्हभारस्य **उल्लसनया** उन्नमनया विस्तारया वा **कलापिन्या** मयूर्या

नु निश्चयेन **नृत्यते** नृत्यं क्रियते **वातैः** पवनैः **नर्तिता** आन्दोलिता **सकला** सम्पूर्णा **मेघाली** मेघमाला **अपः** जलं **विमुञ्चति** परित्यजति वर्षतीत्यर्थः । अत्र प्रथमचतुर्थयोः पादयोः आदौ 'सकलापो' इत्यस्य वर्णसमूहस्य व्यवहितेन आवृत्तिः अत एव प्रथम-चतुर्थपादगतं व्यपेतम् आदियमकं विद्यते ।

विशेष—

(१) इस उदाहरण के प्रथम और चतुर्थ पाद के आदि में 'सकलापो' इस वर्णसमूह की व्यवधानपूर्वक आवृत्ति हुई है अतः यहाँ प्रथमचतुर्थपादगत व्यपेत आदि-यमक हैं ।

(द्वितीयतृतीयपादगतव्यपेतादिमयकनिदर्शनम्)

स्वयमेव गलन्मानकलि कामिनि ते मनः ।
कलिकामद्य नीपस्य दृष्ट्वा कां नु स्पृशेद्दशाम् ।।२३।।

अन्वय— कामिनि, ते स्वयम् एव गलन्मानकलि मनः अद्य नीपस्य कलिकां दृष्ट्वा कां नु दशां स्पृशेत् ।

शब्दार्थ— कामिनि = हे कामिनि । ते = तुम्हारा । स्वयम् एव = स्वयं ही, अपने आप ही । गलन्मानकलि = नष्ट होते हुए प्रणयकोप युक्त कलह वाला । मनः = मन । अद्य = आज । नीपस्य = कदम्ब की । कलिकां = कली को । दृष्ट्वा = देखकर । कां नु = किस । दशां = अवस्था को । स्पृशेत् = स्पर्श करेगा, प्राप्त होगा ।

अनुवाद— हे कामिनि, तुम्हारा स्वयं ही नष्ट होते हुए प्रणयकोपयुक्त कलह वाला मन आज (वर्षा ऋतु में) कदम्ब की कली को देखकर (न जाने) किस अवस्था को स्पर्श करेगा (प्राप्त होगा) ।

संस्कृतव्याख्या— द्वितीयतृतीयपादगतं व्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र— **स्वयमेवेति** । **कामिनि** हे नायकसमागमाभिलाषिणि **ते** तव कामिन्याः **स्वयम् एव गलन्मानकलि** गलन्तः अपगच्छन्तः मानस्य प्रणयकोपस्य कलः कलहः यस्य तादृशं **मनः** चित्तं **अद्य** अस्मिन् वर्षाकाले **नीपस्य** कदम्बस्य **कलिकां** कोरकं **दृष्ट्वा** अव-लोक्य **कां** कीदृशीं **नु** वितर्के **दशाम्** अवस्थां **स्पृशेत्** अनुभवेत् । कामातुरायाः स्वयमेव अपगतमानकलहं मनः फुल्लकदम्बकोरकं दृष्ट्वा स्थातुं न शक्यते इति भावः । अत्र द्वितीये तृतीये पादे आदौ 'कलिका' इत्यस्य वर्णसमुदायस्य व्यवधानेना-वृत्तिः अत एव द्वितीयतृतीयपादगतं व्यपेतम् आदियमकं विद्यते ।

विशेष—

(१) इस पद्य में द्वितीय और तृतीय पाद के आदि में 'कलिका' इस वर्ण समूह की व्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ द्वितीयतृतीयपादगत व्यपेत आदियमक है।

(द्वितीयचतुर्थपादगतव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

आरुह्याक्रीडशैलस्य चन्द्रकान्तस्थलीमिमम् ।
नृत्यत्येष चल[1]च्चारुचन्द्रकान्तः शिखावलः ।।२४।।

अन्वय— आक्रीडशैलस्य इमां चन्द्रकान्तस्थलीम् आरुह्य एषः चलच्चारुचन्द्रकान्तः शिखावलः नृत्यति ।

शब्दार्थ— आक्रीडशैलस्य = (उद्यान में स्थित) क्रीडा-पर्वत के । इमां = इस। चन्द्रकान्तस्थलीं = चन्द्रकान्तमणि-जड़ित भूमि (चबूतरे) पर । आरुह्य = चढ़कर। एषः = यह । चलच्चारुचन्द्रकान्तः = चञ्चल हैं मनोहर चन्द्रक 'पिच्छ, (पंखों के अग्रभाग) जिसके ऐसा, चञ्चल मनोहर मेचकों के अग्रभाग वाला । शिखावलः = मयूर । नृत्यति = नाच रहा है ।

अनुवाद— (उद्यान में स्थित) क्रीडापर्वत के इस चन्द्रकान्तमणि-जड़ित भूमि (चबूतरे) पर चढ़कर यह चञ्चल मनोहर मेचक (पिच्छों, पंखों) के अग्रभाग वाला मयूर नाच रहा है ।

संस्कृतव्याख्या— द्वितीयचतुर्थपादगतं व्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **आरुह्येति** । **आक्रीडशैलस्य** उद्याने विद्यमानस्य क्रीडापर्वतस्य **इमां** पुरोदृश्यमानां **चन्द्रकान्तस्थलीं** चन्द्रकान्तमणिनिर्मितभूमिम् **आरुह्य** आरोहरणं कृत्वा **एषः** दृश्यमानः **चलच्चारुचन्द्रकान्तः** चलन्तः स्फुरन्तः चारुचन्द्रकाणां मनोहरमेचकानाम् अन्ताः अग्रभागाः यस्य तादृशः **शिखवलः** मयूरः **नृत्यति** नर्तनं करोति । अत्र द्वितीयचतुर्थयोः पादयोः आदौ 'चन्द्रकान्तः' इत्यस्य वर्णसमूहस्य व्यवधानेनावृत्तिः अत एव द्वितीयचतुर्थपादगतं व्यपेतम् आदियमकं विद्यते ।

विशेष—

(१) इस उदाहरण पद्य के द्वितीय और चतुर्थ पाद के आदि में 'चन्दकान्त' इस वर्णसमूह की व्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ द्वितीयचतुर्थपादगत व्यपेत आदियमक है ।

---

(१) लसच् ।

(तृतीयचतुर्थपादगतव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

उद्धृत्य राजकादुर्वी ध्रियतेऽद्य भुजेन ते ।
वराहेणोद्धृता यासौ वराहेरुपरि स्थिता ।।२५।।

अन्वय— वराहेण उद्धृता वराहेः उपरि स्थिता या असौ उर्वी अद्य ते भुजेन राजकात् उद्धृत्य ध्रियते ।

शब्दार्थ— वराहेण = वराह (रूपधारी विष्णु) के द्वारा । उद्धृता = (समुद्र से) निकाली गयी । वराहेः = श्रेष्ठ (वर) नाग (अहि) अर्थात् शेषनाग के । उपरि = ऊपर । स्थिता = स्थित (स्थापित) की गयी । या = जो । असौ = यह । उर्वी = पृथिवी है । अद्य = आज । ते = तुम्हारी । भुजेन = भुजा द्वारा । राजकात् = (प्रतिपक्षी) राजा से । उद्धृत्य = छीन करके, जीत करके । ध्रियते = परिपालित की जा रही है ।

अनुवाद— (हे राजन्), वराह (रूपधारी विष्णु) के द्वारा (समुद्र से) निकाली गयी और शेषनाग के ऊपर स्थापित की गयी जो यह पृथ्वी है, वह आज तुम्हारी भुजाओं द्वारा (प्रतिपक्षी) राजाओं से जीत कर परिपालित की जा रही है ।

संस्कृतव्याख्या— तृतीयचतुर्थपादगतं व्यपेतम् यमकं निदर्शयत्यत्र– **उद्धृत्येति** । **वाराहेण** शूकररूपधारिणा विष्णुना **उद्धृता** सागराद् बहिरानीता **वराहेः** वरस्य श्रेष्ठस्य अहेः नागस्य शेषनागस्येत्यर्थः **उपरि स्थिता** स्थापिता **या असौ** इमा **उर्वी** पृथ्वी **सा अद्य** अस्मिन्दिवसे **ते** तव राज्ञः **भुजेन** हस्तेन **राजकात्** प्रतिपक्षिराजसमूहाद् **उद्धृत्य** विजित्य **ध्रियते** धार्यते पाल्यते वा । अत्र तृतीयचतुर्थयोः पादयोः आदौ 'वराहे' इत्यस्य वर्णसमुदायस्य व्यवहितेनावृत्तिः अत एव तृतीयचतुर्थपादगतं व्यपेतम् आदियमकम् ।

विशेष—

(१) इस पद्य के तृतीय और चतुर्थ पादों के आदि में 'वराहे' इस वर्णसमूह की व्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ तृतीयचतुर्थपादगत व्यपेत आदियमक है ।

(प्रथमद्वितीयतृतीयपादगतव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

करेण ते रणेष्वन्तकरेण द्विषतां हताः ।
करेणवः क्षरद्रक्ता भान्ति सन्ध्याघना इव ।।२६।।

अन्वय— रणेषु ते करेण द्विषतां हताः क्षरद्रक्ताः करेणवः सन्ध्याघनाः इव भान्ति ।

शब्दार्थ— रणेषु = युद्ध में । ते = तुम्हारे । अन्तकरेण = अन्त करने वाले,

मृत्यु को प्राप्त कराने वाले, विनाशकारी। करेण = हाथ द्वारा। द्विषतां = शत्रुओं के। हताः = मारे गये। क्षरद्रक्ताः = बहते हुए रक्त वाले। करेणवः = हाथी। सन्ध्याघनाः इव = सायंकालीन बादलों के समान। भान्ति = प्रतीत हो रहे हैं।

अनुवाद— (हे राजन्), युद्ध में तुम्हारे मृत्यु को प्राप्त कराने वाले (विनाशकारी) हाथों द्वारा शत्रुओं के मारे गये (अत एव) बहतु हुए रक्त वाले हाथी सायंकालीन बादलों के समान प्रतीत हो रहे हैं।

संस्कृतव्याख्या— त्रिपादगतस्य प्रथमद्वितीयतृतीयपादगतां व्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **करेणेति**। हे राजन् **रणेषु** युद्धेषु **ते** तव राज्ञः **अन्तकरेण** विनाशकारिणा **करेण** हस्तेन **द्विषतां** शत्रूणां **हताः** निहताः **क्षरद्रक्ताः** निःसरद्रूधिरधारयुक्ताः **करेणवः** हस्तिनः **सन्ध्याघना इव** सायंकालिकमेघाः इव रक्तवर्णाः **भान्ति** प्रतीयन्ते। अत्र प्रथमद्वितीयतृतीयपादानाम् आदौ 'करेण' इत्यस्य वर्णसमुदायस्य व्यवहितेनावृत्तिः अत एव त्रिपादयमकस्य प्रथमद्वितीयतृतीयपादगतं व्यपेतम् आदियमकम्।

विशेष—

(१) इस पद्य में त्रिपादगत व्यपेत आदियमक का उदाहरण दिया गया है। इसके प्रथम, द्वितीय और तृतीय पादों के आदि में 'करेण' इस वर्णसमूह की व्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ त्रिपादगतादियमक के अन्तर्गत प्रथमद्वितीयतृतीयपादगत व्यपेत आदियमक है।

(प्रथमतृतीयचतुर्थपादगतव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

परागतरुराजीव वातैर्ध्वस्ता भटैश्चमूः।
परागतमिव क्वापि परागततमम्बरम् ॥२७॥

अन्वय— भटैः पराः चमूः वातैः अगतरुराजी इव ध्वस्ताः, परागततम् अम्बरं क्वापि परागतम् इव।

शब्दार्थ— भटैः = सैनिकों द्वारा। पराः चमूः = शत्रुसेनाएँ। वातैः = आँधी द्वारा। **अगतरुराजी इव** = पहाड़ों (अग) पर स्थित वृक्षों (तरु) की पंक्ति (राजि) के समान। ध्वस्ताः = ध्वस्त (विनष्ट) कर दी गयीं। परागततं = धूलि (पराग) से व्याप्त (तत)। अम्बरं = आकाश। क्वापि = कहीं भी। परागतम् इव = भाग रहा सा (प्रतीत होने लगा)।

अनुवाद— (हे राजन्,) सैनिकों द्वारा शत्रुसेनाएँ आँधी द्वारा (विनष्ट किये गये) पहाड़ों पर स्थित वृक्षों की पंक्ति के समान विनष्ट कर दी गयीं (और उस

समय) धूलि से व्याप्त आकाश मानों कहीं (किसी अन्य स्थान) पर भाग रहा-सा प्रतीत होने लगा।

संस्कृतव्याख्या— त्रिपादयमकस्य प्रथमतृतीयचतुर्थपादगतं व्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र– **परागतेति**। हे राजन्, युद्धे तव **भटैः** सैनिकैः **पराः चमूः** शत्रूणां सैनिकाः **वातैः** झञ्झावातैः **अगतरुराजी इव** पर्वतवृक्षङ्क्तिः इव **ध्वस्ताः** विनाशिताः जाताः युद्धसङ्क्षोभात् **परागततम्** उद्धितैः परागैः धूलिभिः ततं व्याप्तम् **अम्बरम्** आकाशं **क्वापि** कुत्रापि अनिर्दिष्टे स्थाने **परागतं** पलायितम् इव प्रतीयते। अत्र त्रिपादगतस्य प्रथमतृतीयचतुर्थपादानामादौ 'परागत' इत्यस्य वर्णसमूहस्य व्यवहितेनावृत्तिः अत एव प्रथमतृतीयचतुर्थपादगतं व्यपेतम् आदियमकम्।

विशेष—

(१) इस पद्य के प्रथम, तृतीय और चतुर्थ पाद के आदि में 'परागत' इस वर्णसमुदाय की व्यवहित आवृत्ति हुई है, यहाँ त्रिपादयमक के अन्तर्गत प्रथमतृतीयचतुर्थपादगत व्यपेत आदियमक है।

(द्वितीयतृतीयचतुर्थपादगतव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

पातु वो भगवान् विष्णुः सदा नवघनद्युतिः[१]।
स दानवकुलध्वंसी सदानवरदन्तिहा ।।२८।।

अन्वय— नवघनद्युतिः दानवकुलध्वंसी सदानवरदन्तिहा सः भगवान् विष्णुः वः पातु।

शब्दार्थ— नवघनद्युतिः = नूतन मेघ (के समान) कान्ति वाले। दानवकुलध्वंसी = दानव-कुल के विनाशक। सदानवरदन्तिहा = मदयुक्त महान् (श्रेष्ठ, वर) हाथी (दन्ति) के विनाशक (संहार करने वाले)। सः = वह। भगवान् = भगवान्। विष्णुः = विष्णु। वः = तुम लोगों की। पातु = रक्षा करे।

अनुवाद— वे नूतन मेघ (के समान) कान्ति वाले (अर्थात् श्याम वर्ण वाले), दानव-कुल के विनाशक (संहार करने वाले) तथा (कुवलयापीड नामक) मदयुक्त श्रेष्ठ हाथी के विनाशक भगवान् विष्णु तुम लोगों की रक्षा करें।

संस्कृतव्याख्या— त्रिपादयमकस्य द्वितीयतृतीयचतुर्थपादगतं व्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र– **पात्विति**। **नवघनद्युतिः** नूतनमेघकान्तिरिव कन्तिसम्पन्नः **दानवकुलध्वंसी** राक्षसकुलविनाशकः **सदानवरदन्तिहा** सदानस्य मदयुक्तस्य वरस्य श्रेष्ठस्य

---

(१) - च्छविः।

दन्तिनः कुवलयापीडनामकस्य हस्तिनः संहारकः **सः** पूर्वोक्तगुणसम्पन्नः **भगवान् विष्णुः वः** युष्मान् **पातु** रक्षतु। अत्र द्वितीयतृतीयचतुर्थपादानाम् आदौ 'सदानव' इत्यस्य वर्णसमूहस्य व्यवहितेन आवृत्तिः अत एव त्रिपादयमकस्य द्वितीयतृतीयचतुर्थपादगतं व्यपेतम् आदियमककम्।

विशेष—

(१) इस पद्य में द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पाद के आदि में 'सदानव' इस वर्णसमूह की व्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ द्वितीयतृतीयचतुर्थपादगत व्यपेत आदियमक है।

(चतुष्पादगतव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

कमलेः समकेशं ते कमलेर्ष्याकरं मुखम्।
कमलेख्यं करोषि त्वं कमलेवोन्मदिष्णुषु ॥२९॥

अन्वय— ते कम् अलेः समकेशं, मुखं कमलेर्ष्याकरं, त्वं कमला इव, कम् उन्मदिष्णुषु अलेख्यं करोषि।

शब्दार्थ— ते = तुम्हारा। कम् = सिर। अलेः = भ्रमर के। समकेशं = समान (काले) केशों वाला। मुखं = मुख। कमलेर्ष्याकरं = कमल से ईर्ष्या करने वाला, कमल के समान। त्वं = तुम। कमला इव = लक्ष्मी के समान। कं = किस (व्यक्ति) को। उन्मदिष्णुषु = उन्मादयुक्त (पुरुषों) में। अलेख्यं = न लिखे जाने योग्य, न गिने जाने योग्य। करोषि = कर देती हो, बना देती हो।

अनुवाद— (हे सुन्दरि), तुम्हारा सिर भ्रमर के समान (काले) केशों वाला (है) और मुख कमल से ईष्या करने वाला है (कमल के समान है) तथा तुम लक्ष्मी के समान (होकर) किस (व्यक्ति) को उन्मादयुक्त (पुरुषों) में न लिखे जाने (न गिने जाने) योग्य कर देती हो।

संस्कृतव्याख्या— चतुष्पादगतं व्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **कमलेः इति**। हे सुन्दरि, **ते** तव सुन्दर्याः **कं** शिरः **अलेः** भ्रमरस्य **समकेशं** सदृशकेशयुतं, भ्रमरवत् कृष्णकेशयुतं तव शिरः विद्यत इत्यर्थः **मुखम्** आननं च **कमलेर्ष्याकरं** कमलं प्रति ईर्ष्याकरं द्वेषकरं कमलसदृशं वा विद्यते, एतादृशी कृष्णकेशपाशयुता कमलसदृशी मुखसम्पन्ना **त्वं** सुन्दरी **कमला इव** लक्ष्मी इव **कं** जनम् **उन्मदिष्णुषु** उन्मादयुक्तेषु पुरुषेषु **अलेख्यं** अलेखनीयम् अगणनीयं करोषि। सर्वं जनमुन्मादयुक्तं करोषीति भावः। अत्र चतुर्षु एव पादेषु आदौ 'कमले' इत्यस्य वर्णसमूहस्य व्यवहितेनावृत्तिः अव एव चतुष्पादगतं व्यपेतम् आदियमकम्।

विशेष—

(१) इस पद्य के चारों पादों के आदि में 'कमले' इस वर्णसमूह की व्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ चतुष्पादगत व्यपेत आदियमक है।

(चतुष्पादगतमिश्रव्यपेतादियमकनिदर्शनम्)

मुदा रमणमन्वीतमुदारमणिभूषणाः ।

मदभ्रमदृशः[१] कर्तुमदभ्रजघनाः क्षमाः ।।३०।।

अन्वय— उदारमणिभूषणाः मदभ्रमद्दृशः अदभ्रजघनाः रमणं मुदा अन्वीतम् क्षमाः (भवन्ति)।

शब्दार्थ— उदारमणिभूषणाः = बहुमूल्य रत्नाभूषणों से अलङ्कृत (सजी हुई)। मदभ्रमद्दृशः = मद से झूमती हुई (चञ्चल) आखों वाली। अदभ्रजघनाः = भारी नितम्बों वाली। रमणं = रमण करने वाले (नायक) को। मुदा = हर्ष से, आनन्द से, प्रसन्नता से। अन्वीतं = युक्त करने में, सम्पन्न करने में, सराबोर करने में। क्षमाः = समर्थ (होती हैं)।

अनुवाद— बहुमूल्य रत्नाभूषणों से सजी हुई, मद से झूमती हुई (चञ्चल) आखें वाली तथा भारी नितम्बों वाली (रमणियाँ) रमण करने वाले (प्रियतम) को आनन्द से सराबोर करने में समर्थ होती हैं।

संस्कृतव्याख्या—चतुष्पादगतं मिश्रं व्यपेतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **मुदा** इति। **उदारमणिभूषणाः** उदारैः बहुमूल्यैः मणिभिः रत्नभिः निर्मितैः भूषणाः अलङ्कारयुता **मदभ्रमद्दृशः** मदेन मधुपानोत्पन्नेन भ्रमद्दृशः आघूर्णमाननेत्राः **अदभ्रजघनाः** पृथुनितम्बाः युवत्यः रमण्यः **रमणं** रमणकर्त्तारं नायकं **मुदा** आनन्दातिशयेन **अन्वीतं** समन्वितं **कर्त्तुं क्षमाः** समर्थाः भवन्ति। अत्र प्रथमद्वितीययोः पादयोः आदौ सजातीयस्य 'मुदारम' इत्यस्य तृतीयचतुर्थपादयोः आदौ अन्यजातीयस्य 'मदभ्र' इत्यस्य वर्णसमुदायस्य व्यवहितेन आवृत्तिः अत एव चतुष्पादगतं मिश्रं व्यपेतंम् आदियमकम्।

विशेष—

(१) इस पद्य के प्रथम और द्वितीय पाद के आदि में एक जाति वाले 'मुदारम' तथा तृतीय और चतुर्थ पाद के आदि में उससे अन्य जाति वाले 'मदभ्र' इस वर्ण-समुदायों की व्यवहित आवृत्ति हुई है। इन दो जातीय वर्णसमूहों की व्यवहित आवृत्ति होने के कारण यहाँ चतुष्पादगत मिश्र व्यपेत आदियमक है।

(२) इस चतुष्पादगत मिश्र व्यपेत आदियमक में प्रथम और द्वितीय पाद में एकजातीय

(१) भ्रमदृशः

तथा तृतीय और चतुर्थ पाद में अन्यजातीय वर्णसमूह की आवृत्ति होने के कारण चतुष्पादगत मिश्र व्यपेत आदियमक का एक भेद है; अतः इस पद्य में चतुष्पादगतयमक के अन्तर्गत प्रथमद्वितीयपादगत सजातीय तथा तृतीयचतुर्थपादगत अन्यजातीय मिश्र व्यपेत आदियमक है इस प्रकार इसके अन्य दो भेदों को आगे उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है।

उदितैरन्यपुष्टानामारुतैर्मे हतं मनः।
उदितैरपि ते दूति मारुतैरपि दक्षिणैः ।।३१।।

अन्वय— दूति, अन्यपुष्टानाम् उदितैः आरुतैः ते उदितैः दक्षिणैः मारुतैः अपि मे मनः हतम्।

शब्दार्थ— दूति = हे दूति। अन्यपुष्टानां = अन्य (कौओं) द्वारा पालित (परभृत, कोयलों) की। उदितैः = निकलने वाली, उद्गत्। आरुतैः = कूजनों से। ते = तुम्हारी। उदितैः = बातों से। दक्षिणैः मारुतैः = दक्षिण पवन के द्वारा, मलयपवन के द्वारा। मे = मेरा। मनः = मन। हतम् = आहत कर दिया गया है।

अनुवाद— हे दूति! परभृतों (कोयलों) की निकलती हुई कूजनों, (प्रिया के सन्देशरूप) तुम्हारी बातों और दक्षिणपवन (मलयपवन) के द्वारा मेरा मन आहत कर दिया गया है।

संस्कृतव्याख्या— चतुष्पादगतं प्रथमतृतीययोः एकजातीयं द्वितीयचतुर्थयोः अन्यजातीयं मिश्रं व्यपेतमादियमकं निदर्शयत्यत्र– **उदतैरिति**। **दूति** हे प्रियतमाप्रेषिते दूति **अन्यपुष्टानां** परभृतानां कोकिलानां **उदितैः** निःसृतैः **आरुतैः** कूजनध्वनिभिः **ते** तव दूत्याः प्रियासन्देशरूपाभिः **उदितैः** वचनैः **दक्षिणैः** दक्षिणदिगागतैः **मारुतैः** पवनैः मलयपवनैः च **मे** मम विरहिणः **मनः** चेतः **हतम्** आहतं कृतम्। अत्र प्रथमतृतीययोः पादयोः आदौ 'उदितैर' इत्यस्य एकजातीयस्य द्वितीयचतुर्थयोः पादयोः आदौ मारुतैः इत्यस्य अन्यजातीयस्य वर्णसमूहस्य व्यवहितेन आवृत्तिः विद्यते अत एव चतुष्पादगतं मिश्रं प्रथमतृतीयपादयोः आदौ एकजातीयं द्वितीयचतुर्थपादयोः अन्यजातीयं व्यपेतम् आदियमकम् विद्यते।

विशेष—

(१) इस पद्य के प्रथम और तृतीय पाद के आदि में एकजातीय 'उदितैर' तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद के आदि में अन्यजातीय 'मारुतैः' वर्णसमूह की व्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ प्रथमतृतीयपादगत एकजातीय और द्वितीयचतुर्थपादगत अन्यजातीय— इस प्रकार चतुष्पादगत मिश्र व्यपेत आदियमक है।

सुराजितह्रियो यूनां तनुमध्यासते स्त्रियः ।
तनुमध्याः क्षरत्स्वेद[१]सुराजितमुखेन्दवः ।।३३।।

अन्वय— सुराजितह्रियः क्षरत्स्वेदसुराजितमुखेन्दवः तनुमध्याः यूनां तनुम् अध्यास्ते ।

शब्दार्थ— सुराजितह्रियः = मदिरापान ने हर लिया (विनष्ट कर दिया) है लज्जाभाव जिनका ऐसी, मदिरापान के द्वारा हर लिये गये (विनष्ट कर दिये गये) लज्जाभाव वाली । क्षरत्स्वेदसुराजितमुखेन्दवः = बह रहे स्वेदकणों से शोभायमान है मुखचन्द्र जिनके ऐसी, बह रहे स्वेदकणों (पसीने की बूदों) से शोभायमान (सुराजित) मुखचन्द्र वाली । तनुमध्याः = तनु (पतले) हैं मध्यभाग (कटिप्रदेश, कमर) जिनके ऐसी, कृश कटिप्रदेश (पतली कमर) वाली । यूनां = युवकों के । तनुं = शरीर पर । अध्यासते = आसीन हो जाती है, चढ़ जाती हैं ।

अनुवाद— मदिरापान के द्वारा विनष्ट लज्जा वाली, बह रहे स्वेदबिन्दुओं (पसीने की कणों) से शोभायमान मुखचन्द्र वाली तथा कृश कटिप्रदेश वाली (युवतियाँ) युवकों के शरीर पर (विपरीत रति के लिए) आसीन हो जाती हैं ।

संस्कृतव्याख्या— चतुष्पादगतयमकस्य प्रथमचतुर्थयोः पादयोरादौ एकजातीयं द्वितीयतृतीययोः पादयोः आदौ अन्यजातीयं मिश्रम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र– **सुराजितेति** । **सुराजितह्रियः** सुराभिः मदिरापानैः जिता विनष्टा लज्जा यासां ताः, **क्षरत्स्वेदसुराजितमुखेन्दवः** क्षरद्भिः स्वेदैः स्वेदबिन्दुभिः सुराजितः शोभायमानः मुखेन्दुः मुखचन्द्रः यासां ताः, **तनुमध्याः** कृशकटिप्रदेशाः युवत्यः **यूनां** युवकानां **तनुं** शरीरम् **अध्यास्ते** विपरीतरतिनिमित्तम् आसीनाः भवन्ति । अत्र प्रथमचतुर्थपादयोः आदौ एकजातीयस्य 'सुराजित' इत्यस्य द्वितीयतृतीययोः पादयोः आदौ अन्यजातीयस्य 'तनुमध्या' इत्यस्य वर्णसमूहस्य व्यवहितेन आवृत्तिः विद्यते अत एव चतुष्पादयमकस्य प्रथमचतुर्थपादगतमेकजातीयं द्वितीयत्तृतीयपादगतमन्यजातीयं मिश्रं व्यपेतम् आदियमकं विद्यते ।

विशेष—

(१) इस पद्य के प्रथम और चतुर्थपाद के आदि में एकजातीय 'सुराजित' तथा द्वितीय और तृतीय पाद के आदि में अन्यजातीय 'तनुमध्या' वर्णसमूह की व्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ चतुष्पादयमक वाला प्रथमचतुर्थपादगत एकजातीय और द्वितीयतृतीयपादगत अन्यजातीय मिश्र व्यपेत आदियमक है ।

---

(१) क्षरत्स्वेदा ।

(अव्यपेतव्यपेतगतयमकनिरूपणम्)

इति व्यपेतयमकप्रभेदोऽ[१]प्येष दर्शितः ।
अव्यपेतव्यपेतात्मा विकल्पोऽप्यस्ति[२] तद्यथा ।।३३।।

अन्वय— इति एषः व्यपेतयमकप्रभेदः दर्शितः अव्यपेतव्यपेतात्मा अपि विकल्पः अस्ति तत् यथा ।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार । एषः = यह । व्यपेतयमकभेदः = व्यपेतयमक का भेद । दर्शितः = दिखला दिया गया । अव्यपेतव्यपेतात्मा = अव्यपेत और व्यपेत युक्त (यमक), अव्यपेत और व्यपेत से मिश्रणयुक्त (यमक) वाला । अपि = भी । विकल्षः = भेद । अस्ति = है । तत् यथा = उनको उदाहरित किया जा रहा है ।

अनुवाद— इस प्रकार यह व्यपेत यमक का भेद दिखला दिया गया । अव्यपेत- व्यपेत से मिश्रण युक्त (यमक) वाला भी भेद है, वह (आगे) उदाहरित किया जा रहा है ।

(अव्यपेतव्यपेतात्मकयमकनिदर्शनम्)

साऽलं सालम्बकलिकासालं सालं न[३] वीक्षितुम्[२] ।
नालीनालीनबकुलनाली नालीकिनीरपि ।।३४।।

अन्वय— सा आली सालम्बकलिकासालं सालम् आलीनबकुलान् अलीन् नालीकिनीः अपि वीक्षितुम् न अलम् ।

शब्दार्थ— सा = वह । आली = सखी । सालम्बकलिकासालं = लटकती हुई कलिका रूपी प्राकार (साल) वाले । सालं = साल (वृक्ष) को । आलीनबकुलान् = बकुल (मौलश्री) (के वृक्षों) पर बैठे हुए । अलीन् = भौरों को । नालीकिनीः = कमलिनी को । अपि = भी । वीक्षितुं = देखने के लिए । न अलम् = समर्थ नहीं है ।

अनुवाद— वह (मेरी विरहाकुल) सखी लटकती हुयी कलिकारूपी प्रकार वाले साल (वृक्ष) को, बकुल (मौलश्री) (के वृक्षों) पर बैठे हुए भौंरो को तथा कमलिनी को भी देखने में समर्थ नहीं है ।

संस्कृतव्याख्या— अव्यपेतव्यपेतात्मकं प्रथमद्वितीयोः पादयोः आदौ एकजातीयं

---

(१) -प्रपञ्चो ।
(२) -ऽप्यस्य ।
(३) नु ।
(४) निरी- ।

तृतीयचतुर्थयोः पादयोः आदौ अन्यजातीयं मिश्रं चतुष्पादगतम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **साऽलमिति।** **सा** पुरोदृश्यमाना मम **आली** सखी समवयस्या **सालम्बकलिकासालं** सालम्बा आलम्बमानाः कलिकाः कोरकाः एव सालं प्राकारः यस्य तादृशं **सालं** सालवृक्षम् अपि च **आलीनबकुलान्** समाश्रितबकुलवृक्षान् **अलीन्** भ्रमरान् **नालीकिनीः** कमलिनीः **अपि वीक्षितुं** द्रष्टुं **न अलम्** असमर्था विद्यते। अत्र 'सालं' वर्णसमूहस्य प्रथमद्वितीययोः 'नाली' इत्यस्य तृतीयचतुर्थयोः पादयोः आदौ अव्यवहितेनावृत्तिः अत एवाव्यपेतम् आदियमकं तथा च 'सालंसालं' इत्यस्य एकजातीयस्य वर्णसमूहस्य प्रथमद्वितीययोः पादयोः 'नालीनाली' इत्यस्यान्यजातीयस्य वर्णसमूहस्य तृतीयचतुर्थयोः पादयोः आदौ व्यवहितेनावृतिः अत एव व्यपेतमादियमकम्। एवमत्र अव्यपेतव्यपेतात्मकम् अनेकजातीयम् आदियमकं विद्यते।

विशेष—

(१) इस पद्य के प्रथम तथा द्वितीय पाद के आदि में 'सालं' और तृतीय तथा चतुर्थ पाद के आदि में 'नाली' इस वर्णसमूह की व्यवधानरहित आवृत्ति हुई है अतः अव्यपेत आदियमक है। प्रथम तथा द्वितीय पाद के आदि में 'सालंसालं' एकजातीय और तृतीय तथा चतुर्थपाद के आदि में 'नालीनाली' अन्यजातीय वर्णसमूह की व्यवहित आवृत्ति हुई है अतः व्यपेत आदियमक है। इस प्रकार सम्पूर्ण पद्य में अव्यपेत-व्यपेतात्मक एकजातीय- अन्यजातीय आदियमक है।

(२) सखी कलियों से आच्छादित वृक्ष को नहीं देख सकती- इससे पूर्ण बहार सूचित होती है। कलियों पर साल (प्राकार) के आरोप से कलिकाओं का आधिक्य सूचित होता है। इन वर्णनों में यह आभासित होता है कि वसन्त अपने पूर्ण विकास पर आरुढ है।

(३) मौलश्री के वृक्ष इतने अधिक पुष्पित हो गये है कि उन पर मडराने वाले भ्रमरों से वे पूर्णतः ढक गये है। ये भौरे सखी को अत्यधिक कामोद्दीपित कर रहे है अतः वह उन्हें देख नहीं सकती।

(४) मदमाते वसन्त में अपने प्रियतम सूर्य-किरणों के स्पर्श से कमलिनियाँ पूर्णरूपेण विकसित हो गयीं हैं अतः उनको खिला हुआ देखकर सखी का सूर्यकिरण रूपी अपने भी प्रियतम की इतनी अधिक याद सताने लगती है कि वे उन कमलिनियों को नहीं देख सकती।

(५) 'सालं' शब्द तीन अर्थों में प्रयुक्त होता है- वृक्ष, साल (सर्ज) नामक वृक्ष और प्राकार। 'साल' और अन्य शब्दों के अर्थ के विषय में टीकाकारों में कुछ मतभेद दिखलायी पड़ता है।

काऽलं कालमनालक्ष्यतारतारकमीक्षितुम् ।
तारतारम्यरसितं कालं कालमहाघनम् ।।३५।।

अन्वय— अनालक्ष्यतारतारकं तारतारम्यरसितं कालं कालमहाघनं कालम् ईक्षितुम् का अलम् ।

शब्दार्थ— अनालक्ष्यतारताकं = नहीं दिखलायी पड़ रहे हैं उज्ज्वल नक्षत्र जिसमें ऐसे, न दिखलायी पड़ने वाले उज्ज्वल नक्षत्रों से युक्त। तारतारम्यरसितं = गम्भीर (उत्युच्च) अप्रिय (अरम्य) मेघगर्जन (रसित) है जिसमें ऐसे, ऊँचे (गम्भीर) (अत एव) अप्रिय गर्जन वाले। कालं = कालरूप, यमराजरूप। कालमहाघनं = कृष्ण (काले वर्ण वाले) विशाल मेघों वाले। कालं = समय को। ईक्षितुं = देखने के लिए। का = कौन (रमणी)। अलम् = समर्थ हो सकती है।

अनुवाद— दिखलायी नहीं पड़ने वाले उज्ज्वल नक्षत्रों (तारों) से युक्त, गम्भीर (ऊँचे अत एव) सुनने में अप्रिय मेघगर्जन वाले, कालस्वरूप (यमराजरूप) और कृष्ण (काले वर्ण वाले) विशाल मेघों वाले (बरसात के) समय को कौन (रमणी) देखने के लिए समर्थ हो सकती है (कोई नहीं)।

संस्कृतव्याख्या— अव्यपेतव्यपेतात्मकं प्रथमचतुर्थयोः पादयोः एकजातीयं द्वितीयतृतीययोः पादयोः अन्यजातीयं मिश्रम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र– **काऽलमिति**। **अनालक्ष्यतारतारकं** अनालक्ष्याः अदृश्यमानाः ताराः धवलाः तारकाः नक्षत्राणि यस्मिन् तादृशं **तारतारम्यरसितं** तारता गम्भीरस्वरता अत एव अरम्यं अरुचिकरं रसितं मेघगर्जनं यस्मिन् तादृशं **कालं** कालस्वरूपं यमराजरूपं **कालमहाघनं** कालं कृष्णं महत् विशालं च घनं मेघं यस्मिन् तादृशं **कालं** वर्षायाः समयं **ईक्षितुं** द्रष्टुं **का** रमणी अलं समर्था जायते। अत्र 'कालं' इत्यस्य वर्णसमूहस्य प्रथमचतुर्थयोः 'तार' इत्यस्य च द्वितीयतृतीययोः पादयोः आदौ अव्यवधानेनावृत्तिः अत एवाव्यपेतयमकम्, 'कालं-कालं' इत्यस्य एकजातीयस्य वर्णसमूहस्य प्रथमचतुर्थयोः पादयोः आदौ 'तारतार' इत्यस्य अन्यजातीयस्य वर्णसमूहस्य द्वितीयतृतीययोः पादयोः आदौ व्यवधानेनावृत्तिः अत एव व्यपेतयमकम्। एवमंत्र अव्यपेतव्यपेतात्मकम् अनेकजातीयकम् मिश्रम् आदियमकम्।

विशेष—

(१) इस पद्य के प्रथम और चतुर्थ चरण के आदि में 'कालम्' तथा द्वितीय और तृतीय चरण के आदि में 'तार' इस वर्णसमूह की अव्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ अव्यपेत आदियमक है। प्रथम तथा चतुर्थपाद के आदि में एकजातीय (कालं कालम्) तथा द्वितीय और तृतीय पाद के आदि में 'तारतार' इस अन्यजातीय

वर्णसमूह की व्यवधानपूर्वक आवृत्ति होने के कारण यहाँ व्यपेत आदि यमक है। अतः पूरे पद्य में अव्यपेतव्यपेतात्मक अनेकजातीय मिश्र आदियमक है।

(२) विरहिणी रमणियों के लिए वर्षाकाल अत्यधिक त्रासदायक होता है। इस मौसम में बादल इतने घने होते हैं कि रात में चमकने वाले तारे तक नहीं दिखलायी पड़ते। भयशील रमणियों के लिए मेघगर्जना डरावनी होने के कारण प्रिय नहीं लगती। विरहिणी कामिनियों के लिए तो यह मौसम साक्षात् महाकाल के समान प्रतीत होता है।

याम यामत्रयाधीनायामया मरणं निशा।
यामयाम धियाऽस्वर्त्याया मया मथितैव सा ।।३६।।

अन्वय— यामत्रयाधीनायामया निशा मरणं याम, याम् धिया अयाम मया अस्वर्त्याया सा मथिता।

शब्दार्थ— यामत्रयाधीनायामया = तीन प्रहर अवशिष्ट हैं जिसके ऐसी, तीन प्रहरों के अधीन विस्तार वाली। निशा = रात्रि के द्वारा। मरणं = मृत्यु को प्राप्त करें। याम् = जिस (प्रिया) के पास। धिया = बुद्धि (मन) द्वारा। आयाम = पहुँचे थे। मया = मेरे द्वारा। अस्वर्त्यायाः = प्राण (असु) की व्यथा (आर्त) को प्राप्त। सा = वह (प्रिया)। मथिता = मार डाली गयी।

अनुवाद— तीन प्रहरों के अधीन विस्तार वाली (अर्थात् अभी तीन प्रहर अवशिष्ट हैं जिसके ऐसी अत एव लम्बी) रात्रि के द्वारा हम मृत्यु को प्राप्त करें (क्योंकि) जिस (प्रिया) के पास हम बुद्धि (मन) द्वारा पहुँचे थे (अर्थात् जो प्रिया मन में बसी थी) मेरे द्वारा वह प्राणव्यथा को प्राप्त (प्रिया) मार डाली गयी (अर्थात् मेरे विरह में वह मर गयी है)।

संस्कृतव्याख्या— अव्यपेतव्यपेतात्मकस्य एकजातीयम् आदियमकं निदर्शयत्यत्र- **यामेति**। **यामत्रयाधीनायामया** यामत्रयस्य प्रहरत्रितयस्य आधीनः आयतः आयामः विस्तारः यस्याः तादृश्या **निशा** रात्र्या **मरणं** मृत्युं **याम** प्राप्नवाम यतो हि **यां** प्रियतमां **धिया** मनसा **याम** अगच्छाम यां चिन्तयन्तः समयम् अयापयाम **मया** प्रवासिना **अस्वर्त्याया** असूनां प्राणानां अर्तिं व्यथाम् अयातेति तादृशी **सा** प्रिया **मथिता** मम विरहेण मृत्युं प्राप्ता। मम वियोगेन सा मृता ततो हि तस्याः विरहेण मरणं भवत्विति कस्यचिद् विरहिणः प्रवासिनः मरणस्य प्रार्थनं विद्यते। अत्र चतुर्षु पादेषु आदौ 'याम' इत्यस्य वर्णसमूहस्य अव्यवहिता आवृत्तिः अत एव अव्यपेतमादियमकं, 'यामयाम' इति एकजातीयस्य वर्णसमूहस्य च व्यवधानेनावृत्तिः अत एव व्यपेतमादियमकं विद्यते। एवं सम्पूर्णे पद्ये अव्यपेताव्यपेतात्मकम् एकजातीयम् आदियमकम्।

विशेष—

(१) इस पद्य के चारो पादों के आदि में 'याम' वर्णसमूह की अव्यवहित आवृत्ति हुई है अत: यहाँ चतुष्पादगत अव्यपेत आदियमक है तथा चारों ही पादों के आदि में 'यामयाम' इस एकजातीय वर्णसमूह की व्यवहित आवृत्ति हुई है अत: यहाँ चतुष्पादगत एकजातीय व्यपेत आदियमक है। इस प्रकार सम्पूर्ण पद्य में अव्यपेतव्यपेतात्मक एकजातीय चतुष्पाद आदियमक है।

(२) इस श्लोक में अत्यधिक प्रेम करने वाली नायिका में अत्यधिक अनुरक्त विरही नायक ने प्रिया से मिलन न होने के कारण प्रिया की अत्यधिक कष्टमय अवस्था का वर्णन किया है।

(३) अभी तो रात्रि का एक प्रहरमात्र व्यतीत हुआ है अभी तीन प्रहर अवशिष्ट है- यह व्यतीत नहीं पायेगी। ऐसा प्रतीत होता है कि रात बीतते-बीतते मौत हो जाएगी। मेरी तो जो दशा है, वह है ही, शरीर से उसके पास न रहकर केवल मन से ही उसकी दशा को सोच सकता हूँ। मेरे विरह में तो प्राणहारी कामपीड़ा वाली वह मर ही गयी होगी।

(पादादियमकमुपसंहारः)

इति पादादि[१]यमकविकल्पस्येदृशी गतिः ।
एवमेव विकल्पानि यमकानीतराण्यपि ।।३६।।

अन्वय— इति पादादियमकविकल्पस्य ईदृशी गतिः एवम् एव इतराणि अपि यमकानि विकल्पानि (सन्ति)।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। पादादियमकविकल्पस्य = पादादियमक के भेदों की। ईदृशी = इस प्रकार की। गतिः = दिशा। एवम् एव = इसी प्रकार ही। इतराणि अपि = अन्य भी। यमकानि = यमक-विषयक। विकल्पानि = प्रभेद हैं।

अनुवाद— इस प्रकार पादादियमक के भेद की दिशा (निरूपित की गयी)। इसी प्रकार ही अन्य यमक विषयक प्रभेद हैं (उनकी कल्पना कर लेनी चहिए)।

संस्कृतव्याख्या— पादादियमकम् उपसंहरत्यत्र- **इतीति**। **इति** अनेन प्रकारेण **पादादियमकविकल्पस्य** पादादौ विद्यमानस्य यमकविकल्पस्य यमकभेदस्य **गतिः** दिक् निरूपिता। **एवमेव** अनेनैव प्रकारेण **इतराणि** अन्यानि **यमकानि** यमकविषयकाणि विकल्पानि प्रभेदानि सन्ति तानि उद्भावितव्यानि।

---

(१) इत्यादिपाद-।

विशेष—

(१) यहाँ पादादि में विद्यमान प्रभेदों का दिग्दर्शन करा दिया गया है। इस प्रकार अन्य भी प्रभेद कल्पित किये जा सकते है, उन्हें समझ लेना चाहिए।

(सर्वयमकप्रभेदाव्याख्यानकारणम्)

न प्रपञ्चभयाद् भेदाः कात्स्न्येंनाख्यातुमनहिताः।
दुष्कराभिमता ये तु वर्ण्यन्ते तेऽत्र केचन।।३८।।

अन्वय— प्रपञ्चभयात् भेदाः कात्स्न्र्येन आख्यातुं न ईहिताः। ये तु दुष्कराभिमता ते केचन अत्र वर्ण्यन्ते।

शब्दार्थ— प्रपञ्चभयात् = विस्तार भय से। भेदाः = (यमक के सभी) प्रभेद। कात्स्न्र्येन = सम्पूर्ण रूप से। **आख्यातुं** = व्याख्यान करने के लिए। न ईहिताः = अभीष्ट नहीं हैं। ये तु = जो (प्रभेद)। दुष्कराभिमताः = दुष्कर (दु:साध्य, कठिन) माने गये हैं। ते = वे। केचन = कुछ, कतिपय। अत्र = यहाँ। वर्ण्यन्ते = वर्णित किये जा रहे हैं।

अनुवाद— विस्तारभय से (यमक के सम्पूर्ण) प्रभेद सम्पूर्णरूप से व्याख्यान करने लिए अभीष्ट नहीं हैं (व्याख्यान के विषय नहीं बनाये गये हैं)। (उनमें से) जो दुःखसाध्य (कठिन) माने गये हैं वे कुछ यहाँ वर्णित किये जा रहे हैं।

संस्कृतव्याख्या— सम्पूर्णस्य यमकप्रभेदस्य व्याख्याने कारणं निर्दिशत्यत्र-नेति। **प्रपञ्चभयात्** विस्तारभयाद् **भेदाः** यमकस्य सर्वे प्रभेदाः **कात्स्न्येंन** समग्रूपेण आख्यातुं व्याख्यातुं **न ईहिताः** न अभीष्टाः। **दुष्कराभिमताः** दुःसाध्यत्वेन ज्ञाताः **ये** तु प्रभेदाः **ते केचन** तेषु कतिपयाः एव न तु सर्वे प्रभेदाः **अत्र** ग्रन्थेऽस्मिन् **वर्ण्यन्ते** विवेच्यन्ते।

विशेष—

(१) विस्तारभय के कारण दण्डी ने यमक के सभी प्रभेदों का निरूपण नहीं किया है। जो दुःसाध्य प्रभेद हैं उनमें से कुछ प्रभेदो का निरूपण कर रहे हैं।

(चतुष्पादगताव्यपेतव्येतमध्ययमकनिदर्शनम्)

स्थिरायते यतेन्द्रियो न हीयते यतेर्भवान्।
अमायतेयतेऽप्यभूत् सुखाय तेऽयते क्षयम्।।३९।।

अन्वय— स्थिरायते, यतेन्द्रियः भवान् यतेः न हीयते, ते अमायता क्षयं अयते इयते सुखाय अभूत्।

शब्दार्थ— स्थिरायते = हे स्थिर (निश्चित) उत्तरकाल (भविष्य) वाले (महात्मन्)।

यतेन्द्रियः = संयमित इन्द्रिय वाले, जितेन्द्रिय । भवान् = आप । यतेः = संयम से । न ह्रियते = च्युत (स्खलित) नहीं होते । ते = तुम्हारी । अमायता = माया से रहितता, अहङ्काराभावता, निष्कपटता । क्षयं = क्षयता को, विनाश को । अयते = न प्राप्त होने पर । ते = तुमको । इयते = इतना । सुखाय = सुख देने के लिए । अभूत् = हो गयी है ।

अनुवाद— हे स्थिर (निश्चित) उत्तरकाल (भविष्य) वाले (महात्मन्), संयमित इन्द्रिय वाले आप संयम से च्युत (स्खलित, हीन) नहीं होते । तुम्हारी निश्छलता (निष्कपटता) क्षय को (विनाश) न प्राप्त होकर तुमको इतना सुख (आनन्द) देने के लिए (सक्षम) हो गयी है ।

संस्कृतव्याख्या— चतुष्पादगतमव्यपेतव्यपेतं मध्ययमकं निदर्शयत्यत्र- **स्थिरायते इति** । **स्थिरायते** स्थिरा निश्चिता अयतिः भविष्यकालः यस्य सः निश्चितपरलोकाभ्युदयः तत्सम्बुद्धौ हे स्थिरायते महात्मन्, **यतेन्द्रियः** संयतेन्द्रियः **भवान्** महात्मा **यतेः** संयमात् **न ह्रीयते** न स्खलितो भवति । **ते** तव महात्मनः **यमायता** मायारहितता निष्कपटत्वमित्यर्थः **क्षयं** विनाशं **अयते** अप्राप्ताय **इयते** एतावते **सुखाय** आनन्दाय **अभूत्** । अत्र चतुर्षु पादेषु मध्ये 'यते' इत्यस्य वर्णसमूहस्य अव्यवहितेनावृत्तिः अत एव अव्यपेतं मध्ययमकं तथा च 'यतेयते' इत्यस्य सजातीयस्य वर्णसमूहस्य व्यवहितेनावृत्तिः अत एव व्यपेतं मध्ययमकम् । एवं सम्पूर्णे पद्ये अव्यपेतव्यपेतात्मकं चतुष्पादगतं सजातीयं मध्ययमकं विद्यते ।

विशेष—

(१) पद्य के चारों चरणों के मध्य में 'यते' इस वर्णसमुदाय की अव्यवहित आवृत्ति हुई है अतः अव्यपेत मध्ययमक है तथा 'यतेयते' इस सजातीय वर्णसमूह की व्यवहित आवृत्ति होने के कारण व्यपेत सजातीय मध्ययमक है । इस प्रकार पूरे पद्य में अव्यपेतव्यपेतात्मक सजातीय मध्ययमक है ।

(२) इस श्लोक में जितेन्द्रिय निच्छल पुरुष का वर्णन किया गया है ।

(चतुष्पादगतव्यपेतमध्ययमकनिदर्शनम्)

सभासु राजन्नसुराहतैर्मुखै-
र्महीसुराणां वसुराजितैः स्तुताः ।
न भासुरा यान्ति सुरान्न ते गुणाः
प्रजासु रागात्मसु राशितां गताः ॥४०॥

अन्वय— राजन्, सभासु महीसुराणाम् असुराहतैः वसुराजितैः मुखैः स्तुताः

रागात्मसु प्रजासु ते राशितां गताः भासुराः गुणाः सुरान् न यान्ति (इति) न।

शब्दार्थ— राजन् = हे राजन्। सभासु = सभाओं में, गोष्ठियों में। महीसुराणां = पृथ्वी के देवाओं (ब्रह्मणों) के। असुराहतैः = मदिरापान (सुरा) न करने के कारण अदूषित। वसुराजितैः = धन से शोभायमान। मुखैः = मुखों द्वारा। स्तुताः = कीर्तित। रागात्मसु = अनुराग करने वालीं। प्रजासु = प्रजाओं में। राशितां गताः = राशिता को प्राप्त, पुञ्जीभूत। भासुराः = समुज्ज्वल। गुणाः = गुण। सुरान् = देवताओं तक। न यान्ति = नहीं पहुँचते। न = नहीं है।

अनुवाद— हे राजन्, सभाओं गोष्ठियों में ब्राह्मणों के मदिरापान न करने के कारण अदूषित (आप द्वारा दिये गये) धन से शोभायमान मुखों से प्रशंसित और (आप के प्रति) अनुराग करने वाली प्रजाओं में पुञ्जीभूत (आप का) समुज्ज्वल गुण देवताओं तक नहीं पहुँचते- ऐसा नहीं है (अर्थात् अवश्य ही पहुँचते हैं)।

संस्कृतव्याख्या— चतुष्पादगतं व्यपेतं मध्ययमकं निदर्शयत्यत्र- **सभास्विति**। **राजन्** हे नृपते, **सभासु** गोष्ठीषु **महीसुराणां** भूदेवानां ब्राह्मणानाम् **असुराहतैः** सुरायाः मदिरायाः पानेन अहतैः अविनाशितैः अदूषितैः वा **वसुराजितैः** वसुभिः भवत्प्रदत्तैः धनैः राजितैः सुशोभितैः **मुखैः** आननैः **स्तुताः** प्रशंसिताः अथ च **रागात्मसु** भवतः प्रति अनुरागयुक्तेषु **प्रजासु** प्रकृतीषु **ते** तव भवतः वा **भासुराः** समुज्ज्वलाः **गुणाः** त्यागादयः **सुरान्** देवान् **न यान्ति** न गच्छन्ति इति **न** अर्थात् अवश्यमेव यान्ति। देवेष्वपि तव गुणाः विख्याता इति भावः। अत्र पादचतुष्टयेषु मध्ये 'सुरा' इत्यस्य वर्णसमूहस्य व्यवधानेनावृत्तिः अत एव चतुष्पादगतं व्यपेतं मध्ययमकम्।

विशेष—

(१) इस पद्य के चारों चरणों के मध्य में 'सुरा' इस वर्णसमूह की व्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ चतुष्पादगत व्यपेत मध्ययमक है।

(चतुष्पादगतव्यपेतान्तयमकनिदर्शनम्)

तव प्रियाऽसच्चरित[1] प्रमत्त या
विभूषणं धार्यमिहांशुमत्तया।
रतोत्सवामोद[2]विशेषमत्तया
न मे फलं किञ्चन[3] कान्तिमत्तया ।।४१।।

---

(१) -चरिता-।

(२) - वानन्द-।

(३) प्रयोजनं नास्ति हि।

अन्वय— असच्चरित, प्रमत्त, या तव प्रिया तया रतोत्सवामोदविशेषमत्तया अंशुमत् विभूषणं धार्यम्। कान्तिमत्तया मे किञ्चन फलम् न (अस्ति)।

शब्दार्थ— असच्चरित = हे दुश्चरित। प्रमत्त = हे लम्पट, हे कामुक। या = जो। तव = तुम्हारी। प्रिया = प्रेयसी (है)। तया = उस। रतोत्सवामोदविशेषमत्तया = सुरतोत्सव के आनन्द-विशेष से मतवाली के द्वारा। अंशुमत् = कान्तिमान्, चमकने वाले, समुज्ज्वल। विभूषणं = आभूषण। धार्यम् = धारण किया जाना चाहिए। मे = मेरे। कान्तिमत्तया = शोभासम्पदा से, आभूषण-धारण से, सौन्दर्यसम्पदा से। किञ्चन = कोई। फलं = फल, परिणाम, प्रयोजन। न = नहीं है।

अनुवाद— हे दुश्चरित कामुक, जो तुम्हारी प्रेयसी है, उस सुरतोत्सव के आनन्द-विशेष से मतवाली के द्वारा चमकने वाले आभूषण धारण किया जाना चाहिए मेरे सौन्दर्यसम्पदा से कोई प्रयोजन नहीं है।

संस्कृतव्याख्या— चतुष्पादगतं व्यपेतम् अन्तयमकं निदर्शयत्यत्र- तवेति। **असच्चरित** हे दुश्चरित्र, **प्रमत्त** हे लम्पट कामुक वा, **या** स्त्री **तव** कामुकस्य **प्रिया** प्रेयसी विद्यते **तया** स्त्रिया **रतोत्सवामोदविशेषमत्तया** रतोत्सवस्य सुरतोत्सवस्य आमोद-विशेषेण आनन्दविशेषेण मतत्तया गर्वितया **अंशुमत्** प्रस्फुरितकिरणं समुज्ज्वलं वा **विभूषणम्** आभूषणं **धार्यं** धारणीयम्। **मे** मम त्वदुपेक्षितायाः **कान्तिमत्तया** सौन्दर्यसम्पत्तियुक्तया **किञ्चन** किमपि **फलं** प्रयोजनं **न** विद्यते। अत्र पादचतुष्टयेषु अन्ते 'मत्तया' इत्यस्य वर्णसमूहस्य व्यवहितेनावृत्तिः अत एव चतुष्पादगतं व्यपेतम् अन्तयमकम्।

विशेष—

(१) इस पद्य के चारो चरणों के अन्त में 'मत्तया' इस वर्णसमूह की व्यवहित आवृत्ति हुई है, अतः यहाँ चतुष्पादगत व्यपेत अन्तयमक है।

(२) आभूषण देकर मनाने का प्रयत्न करते हुए कामुक नायक को उसकी पत्नी उपलम्भ से खेदयुक्त करने के लिए आभूषण भी उसी कुलटा को देने के लिए कह रही है। यह आभूषणधारण करके सौन्दर्य सम्पन्न होने से मेरा क्या प्रयोजन है तुम तो कुलटा के पास जाओगे।

(चतुष्पादगताव्यपेतव्यपेतात्मकान्तयमकनिदर्शनम्)

भवादृशा नाथ न जानते नते
रसं विरुद्धे सन्नतेनते।
य एव दीनाः शिरा नतेन ते
चरन्त्यलं दैन्यरसेन तेन ते ।।४२।।

अन्वय— नाथ, भवादृशाः नतेः रसं न जानते, सन्नतेनते विरुद्धे (अतः) ये दीनाः ते एव नतेन शिरसा चरन्ति, तेन दैन्यरसेन ते अलम् ।

शब्दार्थ— नाथ = हे स्वामिन्, हे राजन् । भवादृशाः = आप जैसे लोग । नतेः = नमन के । रसं = रस को । न = नहीं । जानते = जानते हैं । सन्नतेनते = नमन (सन्नत) और प्रभुता (इनता) दोनों । विरुद्धे = (परस्पर) विरोधी हैं । ये = जो । दीनाः = दरिद्र है । ते एव = वे ही । नतेन शिरसा = नीचे शिर से, नतमस्तक होकर । चरन्ति = सेवा करते हैं । तेन = उस । दैन्यरसेन = दैन्यजनित रस से । अलम् = कोई प्रयोजन नहीं है ।

अनुवाद— हे राजन्, आप जैसे (प्रभु) लोग नमन के रस (के स्वाद) को नहीं जानते क्योंकि नमन और प्रभुता दोनों (परस्पर) विरोधी (वस्तुएँ) हैं । जो दरिद्र लोग हैं वे नतमस्तक होकर (आप जैसे लोगों की) सेवा करते हैं । उस दैन्य-जनित रस (के स्वाद) से (आपका) क्या प्रयोजन है ।

संस्कृतव्याख्या— चतुष्पादगतम् अव्यपेतात्मकम् अन्तयमकं निदर्शयत्यत्र-भवेति । **नाथ** हे स्वामिन्, **भवादृशाः** भवतः सदृशाः प्रभुजनाः **नतेः** नमनजनितस्य **रसम्** आस्वादविशेषं **न जानते** नैव जानन्ति यतः **सन्नतेनते** सन्नता सम्यग् नमनं इनता प्रभुता च **विरुद्धे** परस्परविसंधिने विद्यते तयोः एकत्र सम्मेलनं न भवति । अतः **ये** जनाः **दीनाः** दुर्गताः **ते** जनाः एव **नतेन शिरसा** नतमस्तकेन **चरन्ति** सेवन्ते भवा-दृशान् प्रभूनिति शेषः, **ते** तव राज्ञः **तेन दैन्यरसेन** दीनताजन्यरसेन **अलं** किमपि प्रयोजनं न विद्यते । अत्र पादचतुष्टयेषु 'नते' इत्यस्य वर्णसमूहस्याव्यवधानेनावृत्तिः अत एव चतुष्पादगतम् अव्यपेतम् अन्तयमकं विद्यते तथा च एकजातीयस्य 'नतेनते' इत्यस्य वर्णसमूहस्य व्यवहितेन आवृत्ति अतः व्यपेतमपि अन्तयमकम् । एवं सम्पूर्णे-पद्ये चतुष्पादगतम् अव्यपेतव्यपेतात्मकम् अन्तयमकम् ।

विशेष—

(१) इस पद्य के चारों चरणों के अन्त में 'नते' इस वर्णसमूह की अव्यवहित आवृत्ति हुई है अतः अव्यपेत चतुष्पादगत अन्तयमक है तथा 'नतेनते' इस वर्णसमूह की अव्यवहित आवृत्ति होने के कारण व्यपेत अन्तयमक भी है । इस प्रकार पूरे पद्य में चतुष्पादगत अव्यपेतव्यपेतात्मक अन्तयमक है ।

(चतुष्पादगतव्यपेतमध्यान्तगतयमकनिदर्शनम्)

लीलास्मितेन शुचिना मृदुनोदितेन
व्यालोकितेन लघुना गुरुणा गतेन ।

व्याजृम्भितेन जघनेन च दर्शितेन
सा हन्ति तेन गलितं मम जीवितेन ।।४३।।

अन्वय— सा शुचिना लीलास्मितेन, मृदुना उदितेन, लघुना व्यालोकितेन, गुरुणा गतेन, व्याजृम्भितेन, जघनेन दर्शितेन हन्ति तेन मम जीवितेन गलितं (सञ्जातम्)।

शब्दार्थ— सा = वह । शुचिना = विशद, निर्मल । लीलास्मितेन = विलासयुक्त मुस्कान से । मृदुना = मधुर । उदितेन = वार्तालाप (सम्भाषण) से । लघुना = चञ्चलतापूर्वक । व्यालोकितेन = देखने से । गुरुणा = (नितम्ब के) भार के कारण गतेन = मन्द चाल से । व्याजृम्भितेन = (अनुरागपूर्वक) जम्हाई से । जघनेन = नितम्ब के । दर्शितेन = थोड़ा प्रदर्शन से । हन्ति = अत्यधिक व्यथित कर देती है मार डालती है । तेन = इसलिए । मम = मुझे । जीवितेन = जीवनं से । गलितं = च्युत, (रहित, विहीन) कर देती है ।

अनुवाद— वह (मेरी प्रेयसी) (अपने) विशद लीलापूर्वक मुस्कान से, मधुर वार्तालाप से, चञ्चलतापूर्वक देखने से, (नितम्ब के) भार के कारण मन्द चाल से, (अनुरागपूर्वक) जम्हाई से, नितम्ब के थोड़ा प्रदर्शन से (मुझको) अत्यधिक व्यथित कर देती है (मार डालती है। इसलिए मुझे जीवन से विहीन कर देती है।

संस्कृतव्याख्या— चतुष्पादगतं व्यपेतं मध्यान्तयमकं निदर्शयत्यत्र- **लीलेति**। सा मम प्रियतमा **शुचिना** निर्मलेन **लीलास्मितेन** लीलापूर्वक हसितेन **मृदुना** मधुरेण **उदितेन** वार्तालापेन **लघुना** चञ्चलतपपूर्वकं **व्यालोकितेन** वीक्षितेन **गुरुणा** नितम्बभारेण **गतेन** मन्दतया गमनेन **व्याजृम्भितेन** अनुरागव्यञ्जितया जृम्भणविशेषेण **जघनेन** स्थूलनितम्बेन **दर्शितेन** ईषत्प्रदर्शितेन मां **हन्ति** व्यथयति। **तेन** कारणेन मम **जीवितेन** जीवनेन **गलितं** नष्टप्रायमिव सञ्जातम् । अत्र चतुष्पादेषु मध्ये अन्ते च 'तेन' इत्यस्य समजातीयस्य वर्णसमुदायस्य व्यवहितेनावृत्तिः अत एव चतुष्पादगतं व्यपेतं सजातीयं मध्यान्तयमकम् ।

विशेष—

(१) इस पद्य के चारों पादों के मध्य तथा अन्त में 'तेन' इस एकजातीय वर्णसमुदाय की आवृत्ति हुई है अतः यहाँ चतुष्पादगत एकजातीय व्यपेत मध्यान्तयमक है।

(२) इस पद्य में नायक की रति के आलम्बन विभाव सुन्दरी की चेष्टाओं (उद्दीपन विभावों) का वर्णन करके उसके प्रति नायक की प्ररूढ़ रति का कथन हुआ है।

(३) यह पद्य वसन्ततिलका छन्द में रचित है।

(चतुष्पादगताव्यपेतव्यपेतात्मकमध्यान्तयमकनिदर्शनम्)

श्रीमानमानमरवर्त्मसमानमान-
मात्मानमानतजगत्प्रथमानमानम् ।
भूमानमानमत[1] यः स्थितिमानमान-
नामानमानमतमप्रतिमानमानम् ॥४४॥

पदच्छेद— श्रीमान् अमान् अमरवर्त्मसमान-मानम् आत्मानम् आनत-जगत्प्रथ-मानमानम् । भूमानम् आनमत यः स्थितिमान् अमान-नामानम् आन-मतम् अप्रतिमान-मानम् ॥

अन्वय— यः श्रीमान्, अमान् स्थितिमान् (तं) अमरवर्त्मसमानम् आनतजगत्प्रथमानं भूमानम् अमाननामानम् आनमतम् अप्रतिमानमानम् आत्मानम् आनमत ।

शब्दार्थ— यः = जो (विष्णु) । श्रीमान् = लक्ष्मी (शोभा) से सम्पन्न । अमान् = अपरिमित, अपरिमेय । स्थितिमान् = नित्य या मर्यादावान् । अमरवर्त्मसमानम् = देवमार्ग (अमरवर्त्म, आकाश) के समान (व्यापक) । आनतजगत्प्रथमानमानम् = प्रणत (प्रणाम = नमन करने वाले) लोगों (जगत्) में प्रसरित (विस्तृत, प्रसिद्ध, प्रथमान) सम्मान (आदर, मान) वाले । भूमानम् = महान्, विशाल, विश्वरूप में विद्यमान । अमाननामानम् = असङ्ख्य (अगणित, अमान) नाम वाले । आनमतम् = प्राणियों (योगियों) के पूज्य (मत) । अप्रतिमानमानम् = अनुपम (अप्रतिमान) स्वरूप (मान) वाले, प्रमाणों (प्रतिमान) से अवेद्य, प्रतिमाओं द्वारा अज्ञेय । आत्मानम् = आत्मास्वरूप को, चैतन्य रूप वाले को । आनमत = प्रणाम करो, नमन करो ।

अनुवाद— जो (विष्णु) लक्ष्मी (शोभा) से सम्पन्न, अपरिमेय (अपरिमित), और नित्य (अथवा मर्यादावान्) है (उस) देवमार्ग (आकाश) के समान (व्यापक), प्रणत (प्रणाम = नमन करने वाले) लोगों में प्रसरित (प्रसिद्ध), विश्वरूप में विद्यमान (महान्), असङ्ख्य (अगणित) नामों वाले, योगियों (प्राणियों) के लिए पूज्य, अनुपम स्वरूप वाले (अथवा प्रतिमाओं द्वारा अज्ञेय) तथा आत्मास्वरूप (चैतन्य रूप वाले) (भगवान् विष्णु) को प्रणाम करो ।

संस्कृतव्याख्या— चतुष्पादगतम् अव्यपेतव्यपेतात्मकं मध्यान्तयमकं निदर्शयत्यत्र- **श्रीमान्निति** । **यः** विष्णु **श्रीमान्** लक्ष्मीसम्पन्नः शोभायुक्तः वा **अमान्** अपरिमेयः **स्थितिमान्** नित्यः मर्यादासम्पन्नः वा विद्यते तं **अमरवर्त्मसमानम्** अमरवर्त्मनः

---

(१) -नयति ।

देवमार्गस्य समानं सदृशम् आकाशमिव इत्यर्थः, **आनतजगत्प्रथमानमानम्** आनते प्रणमिते जगति लोके प्रथमानः प्रसरितः प्रसिद्धिप्राप्तः वा मानः पूजनं यस्य तादृशम् **भूमान** विश्वरूपं **अमाननामानम्** अमानानि असङ्ख्यकानि नामानि यस्य तादृशम् **आनमतं** आनाः प्राणिनः योगिनः वा तेषां मतं पूजनीयम् **अप्रतिमानमानम्** अनुपमस्वरूपसम्पन्नं प्रमाणैः अवेद्यं वा **आत्मानम्** आत्मस्वरूपं चैतन्यं वा भगवन्तं विष्णुं **आनमत** प्रणमत। अत्र पादचतुष्टयेषु मध्ये अन्ते च 'मान' इत्यस्य वर्ण समूहस्य अव्यवहितेनावृत्तिः अत एव पादचतुष्टयगतम् अव्यपेतं मध्यान्तयमकम्। तथा च 'मानमान' इत्यस्य सजातीयस्य वर्णसमूहस्य व्यवहितेनावृत्तिः अत एव व्यपेतमपि मध्यान्तयमकम् एवं सम्पूर्णे पद्ये चतुष्पादगतं सजातीयम् अव्यपेतव्यपेतात्मकं मध्यान्तयमकम्।

विशेष—

(१) इस पद्य के चारों पादों के मध्य और अन्त में 'मान' इस वर्णसमूह की अव्यवहित आवृत्ति हुई है अतः चतुष्पादगत अव्यपेत मध्यान्त यमक है तथा 'मानमान' इस सजातीय वर्णसमूह की व्यवहित आवृति हुई है अतः चतुष्पादगत व्यपेत एकजातीय मध्यान्तयमक है। इस प्रकार सम्पूर्ण पद्य में चतुष्पादगत अव्यपेत-व्यपेतात्मक सजातीय मध्यान्तयमक है।

(२) इस पद्य में दुष्कर रचना द्वारा जगत् के निमित्तोपादान कारण परमतत्त्व का वर्णन किया गया है।

(३) यह पद्य मन्दाक्रान्ता छन्द में विरचित है।

(चतुष्पादगतव्यपेतादिमध्ययमकनिदर्शनम्)

सारयन्तमुरसा रमयन्ती
सारभूतमुरुसारधरा तम्।
सारसानुकृतसारसकाञ्ची
सा रसायनमसारमवैति ।।४५।।

अन्वय— सारयन्तं सारभूतं तं उरसा रमयन्ती उरुसारधरा सारसानुकृतसारसकाञ्ची सा रसायनं असारम् अवैति।

शब्दार्थ— सारयन्तं = अभिसरण करने वाले, सङ्केतस्थल को गये हुए, आलिङ्गन करने वाले। सारभूतं = उत्कृष्ट सौन्दर्यभूत, सौन्दर्ययौवन से भूषित, श्रेष्ठ। तं = उस (नायक) को। उरसा = वक्षःस्थल से, स्तनभार से। रमयन्ती = रमण कराती हुई, आनन्दित करती हुई। उरुसारधरा = सुवर्ण (उरुसार) (के आभूषण) को धारण करने वाली। सारसानुकृतसारसकाञ्ची = सारसों का अनुकरण करने वाली

(सारसों के समान) ध्वनि से सम्पन्न मेखला से शोभायमान। सा = वह (अभिसारिका रमणी)। रसायनं = अमृत को। असारं = निस्सार, तुच्छ। अवैति = समझती है।

अनुवाद— अभिसरण करने वाले और उत्कृष्ट सौन्दर्ययौवन से भूषित उस नायक को (अपने) स्तनभार से आनन्दित करती हुई, सुवर्ण (के आभूषण) को धारण करने वाली और सारसों के समान ध्वनि से सम्पन्न मेखला से शोभायमान वह (अभिसारिका रमणी) अमृत को भी निस्सार (तुच्छ) समझती है।

संस्कृतव्याख्या— चतुष्पादगतं व्यपेतम् आदिमध्ययमकं निदर्शयत्यत्र– **सारयन्तमिति**। **सारयन्तं** स्वमभिसारयन्तं **सारभूतं** सौन्दर्यसारभूतं सौन्दर्ययौवनेन भूषितं वा **तं** नायकं **उरसा** स्वकीयेन वक्षःस्थलेन स्तनभारेण वा **रमयन्ती** आलिङ्गनेनानन्दयन्ती **उरुसारधरा** उरुसारं सुवर्णम् आभूषणरूपेण धृतवती **सारसानुकृतसारसकाञ्ची** सारसैः अनुकृता सारसा सशब्दा काञ्ची मेखला यस्याः तादृशी **सा** अभिसारिका रमणी **रसायनम्** अमृतमपि **असारं** निस्सारं **अवैति** जानाति मन्यते इत्यर्थः। अत्र पादचतुष्टयस्य आदौ मध्ये च 'सार' इत्यस्य सजातीयस्य वर्णसमूहस्य व्यवहितेनावृतिः अत एव चतुष्पादगतं व्यपेतं सजातीयम् आदिमध्ययमकम्।

विशेष—

(१) इस पद्य के चारों चरणों के आदि और मध्य में 'सार' इस सजातीय वर्णसमूह की व्यवहित आवृत्ति हुई है, अतः यहाँ चतुष्पादगत व्यपेत सजातीय आदि-मध्ययमक है।

(२) पण्डित शिवनारायण शास्त्री ने इस पद्य की कामशास्त्रविषयक अर्थ किया है– स्थिर (दृढ़) बने हुए (साधन, मदनध्वज) को प्रवेश कराते हुए उस (नायक) को वक्षःस्थल से (दबाकर) रमण के लिए प्रेरित करती हुई, प्रबलकामवेग को या स्थूल (व्यायत्त) (खूब लम्बे) दृढ साधन को (मानमन्दिर में) धारण करने वाली, सीत्कार आदि ध्वनि करती हुई, सारस नामक पक्षियों की ध्वनि के समान आवाज से युक्त करधनी वाली वह (रमणी) रसायन को निस्सार समझती है।

(चतुष्पादगताव्यपेतव्यपेतात्मकाद्यन्तादिमध्यमिश्रयमकनिदर्शनम्)

नयानयालोचनयाऽनयाऽनया-
नयानयान्धान् विनयानयायते।
न यानयासीज्जिनयानया नया
नयामयांस्ताञ्जनयानयाश्रितान् ॥४६॥

पदच्छेद— नयानयालोचनया अनया अनयान् अयानयान्धान् विनय अनायते न यान् अयासीत् जिनयानयाः नयान् अयानयान् तान् जनय अनयाश्रितान्।

अन्वय— अनायते, अनया नयानयालोचनया अनयान् अमानयान्धान् विनय। अनयाश्रितान् जनान् तान् अयानयान् जनय, यान् जिनयानयाः न अयासीत्।

शब्दार्थ— अनायते = हे अचल उत्तरकाल (भविष्य) वाले (राजन्)। अनया = इस। नयानयालोचनया = नीति (नय) और अनीति (अनय) की विवेचना (आलोचना) के द्वारा। अनयान् = नीतिविहीन। अयानयान्धान् = शुभ (अय) और अशुभ (अनय) (कर्मों के प्रति) विवेक-शून्य (अन्धे) लोगों को। विनय = विनीत बनाओ, विनयशील बनाओ। अनयाश्रितान् = अनीति के आश्रित, अनीति के मार्ग पर चलने वाले। जनान् = लोगों को। तान् = उन। अयानयान् = शुभ (अय) नीतियों (नय) को। जनय = उत्पन्न करो, उपदेश करो, सिखाओ। यान् = जिनका। जिनयानयाः = जिनमार्गी लोगों (जैनों) ने। न अयासीत् = अनुसरण नहीं किया है।

अनुवाद— हे अचल उत्तरकाल (भविष्य, अभ्युदय) वाले (राजन्), इस नीति और अनीति की विवेचना के द्वारा नीतिविहीन तथा शुभ और अशुभ (कर्मों के प्रति) विवेकशून्य लोगों को विनीत (विनयशील) बनाओ (अनुशासित करो)। अनीति के आश्रित (अनीति के मार्ग पर चलने वाले) लोगों को उन शुभ-नीतियों को सिखाओ (उपदेश करो) जिनको जिनमार्गी लोगों (जैनों) ने अनुसरण नहीं किया है।

संस्कृतव्याख्या— चतुष्पादगतम् अव्यपेतव्यपेतात्मकम् आद्यन्तादिमध्यमिश्र-यमकं निदर्शयत्यत्र– **नयानयेति**। **अनायते** हे अचलभविष्यशालिन् राजन्, **अनया** महदुपदेशरूपया **नयानयालोचनया** नीत्यनीतिविवेचनया **अनयान्** नीतिविहीनान् **अयानयान्धान्** अये शुभदायके अनये अशुभदायके च विधौ अन्धान् विवेकशून्यान् जनान् **विनय** विनीतान् कुरु तेषु विनयं स्थापयेत्यर्थः। तथा च **अनयाश्रितान्** अनीतिमार्गाश्रितान् **जनान्** लोकान् **तान् अयानयान्** शुभदायकान् नीतिः **जनय** उपदिश्य स्थापय **यान्** खलु नयान् **जिनयानयाः** जिनमार्गावलम्बिनः जनाः जैनाः इत्यर्थः **न अयासीत्** न प्राप्नोद् अन्वसरद्वा। अत्र पादचतुष्टयेषु 'नया' इत्यस्य वर्णसमूहस्य आदौ क्वचिदन्तौ क्वचिद् मध्ये च अव्यवहितेनावृत्तिः अत एव अव्यपेतयमकम्। 'नयानया' इत्यस्यापि वर्णसमूहस्य व्यवहितेन आवृत्तिः अत एव व्यपेतञ्च यमकम्। एवं चतुष्पादगतम् अव्यपेतव्यपेतात्मकम् आद्यन्तादिमध्ययमकम्।

विशेष—

(१) इस उदाहरण के चारों पादों के कहीं आदि में कहीं मध्य में और कही अन्त में 'नया' इस वर्णसमूह की अव्यवहित आवृत्ति हुई है अतः अव्यपेतयमक है तथा

'नयानया' इस वर्णसमूह की व्यवहित आवृत्ति होने के कारण व्यपेतयमक है। इस प्रकार पूरे पद्य में चतुष्पादगत अव्यपेतव्यपेतात्मक आद्यन्तादिमध्ययमक है।

(चतुष्पादगताव्यपेताव्यपेताद्यन्तयमकनिदर्शनम्)

रवेण भौमो ध्वजवर्तिवीरवे रवेजि संयत्यतुलास्त्रगौरवे ।
रवेरिवोग्रस्य पुरो हरेरवेरवेत तुल्यं रिपुमस्य भैरवे ।।४७।।

अन्वय— अतुलास्त्रगौरवे भैरवे संयति ध्वजवर्तिवीरवेः रवेण भौमः अवेजि। उग्रस्य रवेः इव हरेः पुरः अस्य रिपुम् अवेः तुल्यम् अवेत।

शब्दार्थ— अतुलास्त्रगौरवे = अतुल (अनुपम) अस्त्रों की बहुलता (गौरव) वाले। भैरवे = भयङ्कर। संयति = युद्ध में। ध्वजवर्तिवीरवेः = ध्वजा पर स्थित वीर पक्षी (गरुड़) की। रवेण = ध्वनि से, गर्जन से। भौमः = भूमिपुत्र (नरकासुर)। अवेजि = उद्वेजित हो गया, भयाक्रान्त हो गया। उग्रस्य = प्रदीप्त, प्रचण्ड। रवेः = इव = सूर्य के समान। हरेः = हरि (भगवान् विष्णु, सिंह) के। पुरः = सामने। अस्य = उनके। रिपुम् = शत्रु (नारकासुर) को। अवेः तुल्यम् = भेड़ के समान। अवेत = जानो, समझो।

अनुवाद— अतुल (अनुपम) अस्त्रों की बहुलता वाले भयङ्कर युद्ध में ध्वजा पर (आगे) स्थित वीर पक्षी (गरुड़) की गर्जन से भूमिपुत्र (नरकासुर) भयाक्रान्त हो गया। प्रचण्ड सूर्य के समान भगवान् विष्णु के सामने उनके शत्रु (नरकासुर) को तुम भेड़ के समान समझो।

संस्कृतव्याख्या—चतुष्पादगतं व्यपेताव्यपेतात्मकम् आद्यन्तयमकं निदर्शयत्यत्र-रवेणेति। **अतुलास्त्रगौरवे** अतुलानां अलौकिकानाम् अस्त्राणां गौरवं बाहुल्यं यत्र तादृशे **भैरवे** भयङ्करे **अयति** युद्धे **ध्वजवर्तिवीरवेः** ध्वजवर्तिनः पताकाग्रे स्थितस्य वरस्य श्रेष्ठस्य वेः पक्षिणः गरुणस्येत्यर्थः **रवेण** गर्जनेन **भौमः** भूमिपुत्रः नरकासुरः **अवेजि** भयाक्रान्तोऽभवत्। **उग्रस्य** प्रचण्डस्य **रवेः इव** सूर्यस्य इव **हरेः** विष्णोः **पुरः अस्य** विष्णोः **रिपुं** शत्रुं नरकासुरम् **अवेः तुल्यं** मेषस्य सदृशम् **अवेत** जानीत। अत्र चतुष्पादेषु आदौ अन्तौ 'रवे' इत्यस्य वर्णसमूहस्य व्यवहिताव्यहितेन आवृतिः अत एव चतुष्पादगतं व्यपेताव्यपेतात्मकम् आद्यन्तयमकम्।

विशेष—

(१) इस उदाहरण के चारों पादों के आदि और अन्त में 'रवे' इस वर्णसमूह की व्यपेताव्यपेत आवृत्ति हुई है अतः यहाँ चतुष्पादगत व्यपेताव्यपेत आद्यन्तयमक है।

(२) इस पद्य में कृष्ण के ध्वज पर विद्यमान गरुड़ की गर्जना को सुनकर भयभीत हुए

भीमासुर (नरकासुर) के भय का वर्णन हुआ है। विष्णु के ध्वज पर गरु विद्यमान रहते हैं। इसीलिए उन्हें गरुड़ध्वज कहा जाता है।

(३) हरि यहाँ श्लिष्ट अर्थ में कृष्ण और सिंह के अर्थ में प्रयुक्त है। कृष्ण की समान सूर्य से तथा शत्रु (नरकासुर) की समानता भेड़ से बतलायी गयी है इसलि उपमा भी है।

(चतुष्पादगताव्यपेतव्यपेताद्यन्तयमकनिदर्शनम्)

मयामयालम्ब्य[१]कलामयामया-
मयामयातव्यविरामयामया ।
मयामयार्तिं निशयामयामया
मयामयाम् करुणामयामया ।।४८।।

पदच्छेद— मयामयालम्ब्यकलामयामयाम् अयाम् अयातव्यविरामयामया। मयामयार्तिं निशया अमया अमया मया आमय अमूं करुणामय आमया।

अन्वय— अयातव्यविरामयामया अमया अमया निशया मयामयार्तिम् अयाम्। करुणामय, आमया मया मयामयालम्ब्यकलामयामयाम् अमूम् आमय।

शब्दार्थ— अयातव्यविरामयामया = कभी व्यतीत न होने वाले (अयातव्य) अवसान (विराम) से युक्त प्रहर (यामय) वाली। अमया = शोभा (मा) से रहित। अमया = परिमाण (मा) से विहीन, सुदीर्घ। निशया = रात्रि के द्वारा। मयामयार्तिं = क्षय (क्षीणता, दुर्बलता, मय) रूपी रोग (आमय) की पीडा (आर्ति) को। अयाम् = प्राप्त हो गया हूँ। करुणामय = हे दयासम्पन्न (मित्र)। आमया = रोगयुक्त, काम-पीड़ा युक्त। मया = (विरही) मेरे साथ। मयामयालम्ब्यकलामयामयां = घटते (मय) बढ़ते (अमय) आश्रय (आलम्ब्य) युक्त चन्द्रमा (कलामय) (को देखने) के कारण रोगी (कामसन्तप्त, आमय) हो जाने वाली। अमूम् = उस (सुन्दरी) को। आमय = मिला दो।

अनुवाद— कभी व्यतीत न होने वाले अवसान से युक्त प्रहर वाली और शोभा से रहित (अशोभनीय) तथा परिणाम से विहीन (सुदीर्घ) रात्रि के द्वारा क्षीणता (दुर्बलता) रूपी रोग की पीड़ा (कामपीड़ा) को प्राप्त हो गया हूँ। हे करुणमय (दया-सम्पन्न, मित्र), कामपीड़ायुक्त (विरही) मेरे साथ घटते-बढ़ते आश्रय युक्त चन्द्रमा (को देखने) के कारण कामसन्तप्त हो जाने वाली उस (सुन्दरी) को मिला दो।

(१) -लङ्घ्य-।

संस्कृतव्याख्या— चतुष्पादगतम् अव्यपेतव्यपेतात्मकम् आद्यन्तयमकं निदर्शयत्यत्र– **मयामयेति** । **अयातव्यविरामयामया** अयातव्यः असमाप्यः विरामः अवसानं येषां तासां यामाः प्रहराः यस्याः तादृश्या असमाप्यप्रहरया इत्यर्थः, **अमया** या शोभा तया विहीना अमा तादृश्या शोभाविहीनया **अमया** मा परिणामं तया विहीना अमा तया, अपरिमाणया सुदीर्घया इत्यर्थः **निशया** रात्र्या **मयामयार्तिं** मयः क्षयः तद्रूपः यः आमयः रोगः तस्य आर्तिं पीडां दुर्बलतास्वरूपां कामपीडामित्यर्थः **अयाम्** अगच्छम् । **करुणामय** हे दयासम्पन्न मित्र, **आमया** आमं रोगं कामपीडां याति प्राप्नोतीति आमयाः तेन; कामार्तेन इत्यर्थः **मया** प्रियाविरहिणा सह **मयामयालम्ब्यकलामयामयां** मयः क्षयः अमयः वृद्धिः ताभ्यां आलम्ब्यः आश्रयणीयः यः कलामयः चन्द्रः तस्मात् आमयः रोगः कामव्यथा यस्याः तादृशीं क्षीणत्ववृद्धित्वयुक्तचन्द्रदर्शनेन सञ्जातकाम-व्यथासम्पन्नामित्यर्थः, **अमूं** मत्प्रियां कामिनीं **आमय** सङ्गमय । अत्र पादचतुष्टयेषु, आदौ अन्ते च 'मया' इत्यस्य वर्णसमूहस्य अव्यवहितेनावृत्तिः अत एव अव्यपेतयमकम्, तथा च 'मयामया' इत्यस्य वर्णसमूहस्य व्यवहितेन आवृतिः अत एव व्यपेतयमकम् । एवं सम्पूर्णे पद्ये चतुष्पादगतम् अव्यपेतव्यपेतात्मकम् आद्यन्तयमकम् ।

विशेष—

(१) इस उदाहरण के चारों चरणों के आदि और अन्त में 'मया' इस वर्णसमूह की अव्यवहित आवृत्ति होने के कारण अव्यपेत तथा 'मयामया' इस वर्णसमूह की व्यवहित आवृत्ति होने के कारण व्यपेत यमक है। इस प्रकार पूरे पद्य में चतु-ष्पादगत अव्यपेतव्यपेतात्मकम् आद्यन्तयमक है।

(२) इस अत्यन्त दुष्कर पद्य में कवि के अभिलषित अर्थ को निश्चित रूप से कह पाना तो अत्यन्त कठिन है। व्याख्याकारों ने अपनी-अपनी दृष्टि से इसका अर्थ निकालने का प्रयत्न किया है।

(चतुष्पादगतव्यपेताव्यपेतादिमध्यान्तयमकनिदर्शनम्)

मतान्धुनाना[१] रमतामकामता-
मतापलब्धाग्रिमता[२] नुलोमता ।
मतावयत्युत्तमताविलोमता-
मताम्यतस्ते समता न वामता ।।४९।।

पदच्छेद— मतां धुनाना आरमताम् अकामताम् अतापलब्धाग्रिमतानुलोमता । मतौ अयती उत्तमताविलोमताम् अताम्यतः ते समता न वामता ।

(१) मता धुनाना- ।　　　(२) - क्रमता - ।

अन्वय— अताम्यतः ते मतौ आरमताम् मताम् अकामतां धुनाना अतापलब्धाग्रिमतानुलोमता उत्तमताविलोमताम् अयती समता न वामता (विद्यते)।

शब्दार्थ— अताम्यतः = चित्तग्लानि को कभी प्राप्त न होने वाले। ते = तुम्हारी। मतौ = मति में, बुद्धि में। आरमताम् = (अपनी आत्मा में) रमण करते हुए (योगियों) के। मताम् = अभिमत, समादृत। अकामतां = निष्कामता को, निष्कामभाव को। धुनाना = तिरस्कृत करती हुई (स्पृहा करती हुई)। अतापलब्धाग्रिमतानुलोमता = अनायास (विना कष्ट, विना प्रयत्न, अताप) प्राप्त (लब्ध) श्रेष्ठता (अग्रिमता) की अनुलोमता (अनुकूलता)। उत्तमताविलोमताम् = श्रेष्ठता (उत्तमता) की प्रतिकूलता (विलोमता)। अयती = न प्राप्त करती हुई। समता = समता (समानता) है। न वामता = (उसकी) प्रतिकूलता (विषमता, वामता) नहीं।

अनुवाद— (हे समदर्शिन्), चित्तग्लानि को कभी प्राप्त न होने वाले तुम्हारे बुद्धि में, (अपनी आत्मा में) रमण करते हुए योगियों के अभिमत (समादृत) निष्कामभाव को तिरस्कृत करती हुई अनायास (विना प्रयत्न) प्राप्त श्रेष्ठता की अनुलोमता (अनुकूलता) और श्रेष्ठता की प्रतिकूलता (प्रतिलोमता) को न प्राप्त सकरती हुई समता (समता का भाव) है, उसके प्रतिकूल (विषमता भाव) नहीं है।

संस्कृतव्याख्या— चतुष्पादगतं व्यपेताव्यपेतात्मकम् आदिमध्यान्तयमकं निदर्शयत्यत्र- **मतेति**। हे समदर्शिन्, **अताम्यतः** चेतोग्लानिम् अप्राप्यतः **ते** तव समदर्शिनः **मतौ** बुद्धौ **आरमतां** स्वात्मनि रममाणानां योगिनामित्यर्थः **मतां** समादृताम् **अकामतां** निष्कामतां **धुनाना** तिरस्कारं कुर्वती **अतापलब्धाग्रिमतानुलोमता** अतापेन अक्लेशेन अप्रयत्नेन वा लब्धा प्राप्ता अग्रिमतायाः श्रेष्ठतायाः उत्तमतायाः वा अनुलोमता अनुकूलता यस्य तादृशी, **उत्तमताविलोमता** उत्तमतायाः श्रेष्ठतायाः विलोमता विपरीतता प्रतिकूलता वा अश्रेष्ठता इत्यर्थः, **अयती** कदाचिद् अप्राप्तवती नित्यश्रेष्ठा **समता** मित्रामित्रसुखदुःखादिषु समभावः विद्यते **न वामता** तत्प्रतिकूलता वैषम्यं वा न भवति। ते बुद्धि सुखदुःखादिषु समभावेन सर्वदा भवतीति भावः। अत्र पादचतुष्टयेषु आदिमध्यान्तेषु 'मता' इत्यस्य वर्णसमूहस्य व्यवधानेनाव्यवधनेन च आवृत्तिः अत एव चतुष्पादगतं व्यपेताव्यपेतात्मकम् आदिमध्यान्तयमकम्।

विशेष—

(१) इस उदाहरण में चारो पादों के आदि, मध्य और अन्त में 'मता' इस सजातीय वर्णसमूह की व्यवहित आवृत्ति हुई है अतः चतुष्पादगत सजातीय आदिमध्यान्त यमक है तथा पादान्त में पठित 'मता' इस सजातीय वर्णसमूह की अगले पाद के आदि में अव्यवहित आवृत्ति हुई है अतः चतुष्पादगत सजातीय अव्येतात्मक

आदिमध्यान्तयमक है। इस प्रकार पूरे पद्य में चतुष्पादगत सजातीय व्यपेताव्यपेतात्मक आदिमध्यान्तयमक है।

(२) इस पद्य में किसी योगी पुरुष की समभावता का वर्णन किया है। वह सुखदुःख इत्यादि सभी परिस्थितियों में समभाव से रहता है।

(चतुष्पादगताव्यपेतव्यपेतात्मकादिमध्यान्तयमकनिदर्शनम्)

कालकालगलकालकालमुखकालकाल
कालकालघन[१]कालकालपन[२]काल काल ।
कालकालसितकालका ललनि[३]कालकाल-
कालकालगतु[४] कालकाल कलि[५]कालकाल ।।५०।।

पदच्छेद— काल-कालगल-काल-कालमुख-काल-काल (क + आल), काल-कालघनकाल-का (क + आ) लपन-काल, काल। काल-कालका (क + अ) लसित-कालका ललनिका, आलकालका (क + अ) लका, अलगतु, कालकाल कलिकालकाल।

अन्वय— काल-कालगल-काल-कालमुख-कालकाल काल-कालघनकाल-कालपन-काल कालकाल कालिकाकाल काल, कालकालसितकालका आलकालकालका, ललनिका आलगतु।

शब्दार्थ— कालकालगलकालकालमुखकालकाल = हे कालकालरूप शिव (= काल-गल), यमराज (= काल), वन्दर विशेष (= कालमुख) के समान श्यामता (कृष्णता, = कालक) वाले। कालकालघनकालकालपनकाल = हे जल (=क) को ग्रहण (= अलन) करने वाले श्याम (= काल) मेघों (= घन) के समय (= काल) में ध्वनि (शब्द) करने वाले (मयूरों = कालका) के समान ध्वनि करने वाले (= आलपन) के समान ध्वनि करने वाले। कालकाल = हे यमराज (अन्तक, = काल) को अन्त करने वाले (आन्तक, = काल)। कलिकालकाल = हे करायुग (= कलिकाल) के काल। काल = हे श्यामवर्ण वाले (= कृष्ण)। कालकालसितकालका = जल (= क) से शोभायमान (लसित = आल) (सरोवर) पर निवास करने वाले (कालक) (अर्थात्

(१) -पन-।
(२) -घन-।
(३) -गतु-।
(४) -कलि-।
(५) -लनि-।

हंस के समान मन्थर गति (= अलसित) वाले पादों (पैरों, कालक) से युक्त। आल-कालकालका = भ्रमरों के समूह (= आल) के समान कृष्णवर्ण वाले (= कालक) कुन्तलों (= अलक) वाली। ललनिका = ललना, रमणी, लक्ष्मी। आलगतु = तुम्हारा आलिङ्गन करें, तुम्हारा सङ्गमन करें।

अनुवाद— हे कालरूप शिव, यमराज और कालमुख (वन्दर विशेष) के समान श्यामता वाले, हे जल को ग्रहण करने वाले श्याम मेघों के समय (वर्षाकाल) में ध्वनि करने वाले मयूरों के (ध्वनि के) समान ध्वनि करने वाले, हे यमराज का भी अन्त करने वाले, हे कलयुग के काल स्वरूप, हे श्यामवर्ण वाले (कृष्ण)! सरोवर पर निवास करने वाले हंसों के समान मन्थर गति वाले पैरों से युक्त तथा भौरों के समान कृष्ण वर्ण वाले कुन्तलों (बालों) वाली लक्ष्मी (अथवा रमणी) तुम्हारा आलिङ्गन (सङ्ग-मन) करें।

संस्कृतव्याख्या— चतुष्पादगतम् अव्यपेतव्यपेतात्मकम् आदिमध्यान्तयमकं निदर्शयत्यत्र- **कालकालेति**। **कालकालगलकालकालमुखकालकाल** कालः कालस्वरूपः कालगलः नीलकण्ठः शङ्करः, कालः यमराजः कालमुखः श्याममुखः वानरविशेषः तेषां कालकं कृष्णत्वम् अलति आदत्ते इति तादृशः तत्सम्बुद्धौ हे नीलकण्ठयमराजराजकालमुखसमवर्ण **कालकालघनकालकालपनकाल** कालः कं जलम् अलति गृह्णाति इति कालः अर्थात् सजल. यः कालघनः कृष्णवर्णः मेघः तस्य काले वर्षासमये कायन्ति ध्वन्यन्ते इति कालकालः कालः अर्थात् सजलः यः कालघनः कृष्णवर्णः मेघः तस्य काले वर्षासमये कायन्ति ध्वन्यन्ते इति कालकालघनकालकाः मयूराः तेषाम् आलपनं कूजनम् इव कलते शब्दायते इति तादृशः तत्सम्बुद्धौ हे मयूरध्वनिवद्रवसम्पत्र, **कालकाल** कालस्य यमराजस्य अपि कालः अन्तकः तत्सम्बुद्धौ हे यमान्तक, **कालिकालकाल** हे कलयुगान्तक, **काल** कालस्वरूप, कृष्णवर्ण वा कृष्ण, **कालकालसितकालका** कं जलं अलातीति कालं सरः तत्र कार्यन्तीति कालकाः हंसा तेषामिव अलसितौ गमनमन्थरौ कालकौ पादौ यस्याः तादृशी हंसमन्थरगमना **आलकालकालका** अलीनां भ्रमराणां समूहः आलं तद्वत् कालकाः कृष्णवर्णाः अलकाः कुन्तलाः यस्याः तादृशी भ्रमरसमूहवत्कृष्णकुन्तला सा **ललनिका** ललना रमणी लक्ष्मी वा **आलगतु** समालिङ्गतु सङ्गमतु वा। अत्र पदचतुष्टयेषु आदौ मध्ये अन्ते च 'काल-काल' इत्यस्य सजातीयस्य वर्णसमूहस्य अव्यवहितेन व्यवहितेन च आवृत्तिः अत एव चतुष्पादगतम् अव्यपेतव्यपेतात्मकम् आदिमध्यान्तयमकम्।

विशेष—

(१) इस उदाहरण के चारों पादों के आदि, मध्य और अन्त में 'कालकाल' इस सजातीय वर्णसमूह की अव्यवहित और व्यवहित रूप से आवृत्ति हुई है अतः यहाँ चतुष्पादगत अव्यपेतव्यपेतात्मक आदिमध्यान्त यमक है।

(२) इस पद्य की व्याख्या में व्याख्याकारों में पर्याप्त मतभेद है। उन मतभेदों में यहाँ सर्वाधिक सङ्गत अर्थ को अपनाया गया है।

(सन्दष्टयमकविवेचनम्)

सन्दष्टयमकस्थानमन्तादी पादयोर्द्वयोः ।
उक्तान्तर्गतमप्येतत् स्वातन्त्रेणात्र कीर्त्यते ।।५१।।

अन्वय— द्वयोः पादयोः अन्तादी सन्दष्टयमकस्थानं (विद्यते)। उक्तान्तर्गतम् अपि एतत् अत्र स्वातन्त्र्येण कीर्त्यते।

शब्दार्थ— द्वयोः = दो। पादयोः = पादों में। अन्तादी = अन्त और आदि। सन्दष्टयमकस्थानं = सन्दष्टयमक का स्थान (है)। उक्तान्तर्गतम् अपि = पूर्वोक्त (प्रभेदों) के अन्तर्गत (समाहित) होने पर भी। एतत् = यह (सन्दष्टयमक)। अत्र = यहाँ। स्वातन्त्रेण = स्वतन्त्र रूप से। कीर्त्यते = कहा जा रहा है।

अनुवाद— दो पादों में (पूर्ववर्ती पाद का) अन्त और (परवर्ती पाद का) आदि भाग सन्दष्ट यमक का स्थान (होता है)। पूवोक्त (यमक के प्रभेदों) के अन्तर्गत (समाहित) होने पर भी यह (सन्दष्ट यमक) यहाँ स्वतन्त्र रूप से कहा जा रहा है।

संस्कृतव्याख्या— अन्याचार्यैरभिमतं सन्दष्टयमकं निरूपयत्यत्र– **सन्दष्टेति**। **द्वयोः** समीपवर्तिनोः **पादयोः** पद्यस्य चरणयोः **अन्तादी** अन्तः पूर्ववर्त्तिनः चरणरस्य अन्तभागः आदिः च परवर्तिनः चरणस्य आदिभागः च **सन्दष्टयमकस्थानं** सन्दष्टयमकस्य स्थानम् अवस्थानं भवति। **उक्तान्तर्गतम्** उक्तेषु यमकप्रभेदेषु अन्तर्गतम् अन्तर्भावितम् अपि एतत् सन्दष्टयमकं **स्वातन्त्र्येण** स्वतन्त्ररूपेण पृथक्त्वेन **कीर्त्यते** उच्यते।

विशेष—

(१) आद्यन्त और अन्तादि यमक के उदाहरण सन्दष्टयमक के भी उदाहरण हैं फिर भी इसको पृथग्रूप से निदर्शित किया जा रहा है।

(२) सन्दष्टयमक में पूर्ववर्ती चरण का परवर्ती चरण में आवृत्त वर्णसमूह द्वारा अभिन्नतया सन्धान हो जाता है। इस दृष्टि से दण्डी के द्वारा उद्भावित सन्दष्टयमक अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

(सन्दष्टयमकनिदर्शनम्)

उपोढरागाप्यबला मदेन सा
मदेनसा मन्युरसेन योजिता ।
न योजितात्मानमनङ्गतापिता-
ङ्गतापि तापाय[1] ममाद्य[2] नेयते ।।५२।।

अन्वय— मदेन उपोढरागा अपि सा मदेनसा मन्युरसेन योजिता । योजितात्मानं अनङ्गतापितां गता अपि अद्य मम इयते तापाय न (इति) न ।

शब्दार्थ— मदेन = (यौवन से उत्पन्न अथवा मदिरापान से उत्पन्न) मदविकार के कारण । उपोढरागा = उमड़ते हुए अनुराग वाली, उत्पन्न सुरत की अभिलाषा वाली, बढ़े हुए प्रेमभाव वाली । सा = वह (मेरी प्रियतमा) । मदेनसा = मेरे (परस्त्री-गमन रूपी) अपराध के द्वारा । मन्युरसेन = (प्रणय) कोप के आवेग से । योजिता = जोड़ दी गयी, युक्त कर दी गयी । योजितात्मानं = अतिप्रगाढ़ । अनङ्गतापितां = कामसन्ताप को, कामपीडा को । गता = गयी हुई, प्राप्त हुई । अपि = भी । अद्य = आज । मम = मेरी । इयते = इतनी । तापाय = ताप के लिए, व्यथा के लिए, कामपीड़ा के लिए । न इयते = नहीं हुई । न = (ऐसी बात) नहीं है ।

अनुवाद— (यौवन से उत्पन्न अथवा मदिरापान से उत्पन्न) मदविकार के कारण उमड़ते हुए अनुराग वाली (अथवा उत्पन्न सुरत की अभिलाषा वाली) भी वह (कामिनी, मेरी प्रियतमा) मेरे (परस्त्रीगमन रूप, अथवा विलम्ब से आने के) अपराध के द्वारा प्रणय-कोप के आवेग से सम्पन्न कर दी गयी (अर्थात् मानयुक्त हो गयी) अतिप्रगाढ़ काम-पीड़ा को प्राप्त हुई (वह) आज मेरे इतनी अधिक कामव्यथा के लिए (कारण) नहीं बनी (ऐसी बात) नहीं है ।

संस्कृतव्याख्या— सन्दष्टयमकं निदर्शयत्यत्र– **उपोढरागेति** । **मदेन** यौवनजनितेन मद्यपानजनितेन वा विकारेण **उपोढरागा** प्रवृद्धानुरागवती सञ्जातसुरताभिलाषिणी वा **अपि सा** पूर्वोपभुक्ता कामिनी मम प्रियतमा **मदेनसा** मम परस्त्रीगमनरूपेण विलम्बागमनेन वा **एनसा** अपराधेन **मन्युरसेन** प्रणयकोपेन योजिता युक्ता जाता । एवं **योजितात्मानं** योजितः निहितः आत्मा स्वभावं यस्यां तादृशीं **अनङ्गतापितां** अनङ्गेन कामेन तापितां व्यथितां **गता** प्राप्ता अपि सा **अद्य** अस्मिन्दिवसे **मम** कामपीडितस्य इयते **तापाय** कामपीडनाय न विद्यते इति न, कामपीडनाय भवत्येवेति भावः । अत्र प्रथमपाद

१. तावाच ।
२. ममास ।

स्यान्ते द्वितीपादस्यादौ 'मदेनसा' इत्यस्य द्वितीयपादस्यान्ते तृतीयपादस्यादौ 'न योजिता' इत्यस्य तृतीयपादस्यान्ते चतुर्थपादस्यादौ च 'ङ्क्तापिता' इत्यस्य वर्णसमूहस्य आवृत्तिः अत एव सन्दष्टयमकम् ।

विशेष—

(१) इस उदाहरण में प्रथमपाद के अन्त और द्वितीयपाद के आदि में 'मदेनसा', द्वितीयपाद के अन्त और तृतीय पाद के आदि में 'न योजिता' तथा तृतीयपाद के अन्त और चतुर्थपाद के आदि में 'ङ्क्तापिता' इस वर्णसमूह की आवृत्ति हुई है, अतः यहाँ सन्दष्टयमक है ।

(२) अन्यस्त्री सम्भोग के चिह्न इत्यादि से युक्त होने के कारण नायिका के प्रति अपराधी किसी नायक की मानिनी नायिका के मान के कारण होने वाले काम-सन्ताप का यहाँ वर्णन हुआ है ।

(समस्तपादगतयमकविवेचनम्)

अर्धाभ्यासे समुद्गः स्यादस्य भेदास्त्रयो मताः ।
पादाभ्यासोऽप्यनेकात्मा व्यज्यते स निदर्शनैः ।।५३।।

अन्वय— अर्धाभ्यासः समुद्गः स्यात् । अस्य अत्र त्रयः भेदाः मता । पादाभ्यासः अपि अनेकात्मा (भवति) स निदर्शनैः व्यज्यते ।

शब्दार्थ— अर्धाभ्यासः = पद्य के अर्धभाग में आवृत्ति होने वाला (अभ्यास) । समुद्गः = समुद्ग (यमक) । स्यात् = होता है । अस्य = इस समुद्ग (यमक) के । त्रयः = तीन । भेदाः = भेद । मताः = माने गये हैं । पादाभ्यासः = पाद का अभ्यासरूप (पाद की आवृत्ति रूप) । अपि = भी । अनेकात्मा = अनेक प्रकार (अनेक भेद) वाला (होता) है । वह (पादाभ्यास) । निदर्शनैः = उदाहरणों द्वारा । व्यज्यते = व्यक्त (निरूपित) किया जा रहा है ।

अनुवाद— पद्य के अर्धभाग में होने वाली आवृत्ति समुद्ग होती (कहलाती) है । इस (समुद्गयमक) के तीन भेद माने गये हैं । पादाभ्यास भी अनेक प्रकार वाला होता है । वह (समुद्ग और पादाभ्यास) उदाहरणों द्वारा व्यक्त (निरूपित) किया जा रहा है ।

संस्कृतव्याख्या— समस्तपादगतयमकं निरूपयत्यत्र– **अर्धेति** । **अर्धाभ्यासः** अर्धे पद्यार्धे भागे अभ्यासः आवृत्तिः **समुद्गः** समुद्गनाम यमकं भवति । **अस्य** समुद्गयमकस्य **त्रयः भेदाः** विकल्पाः प्रथमतृतीययोः एकजातीयं द्वितीयचतुर्थयोः अन्यजातीयं पादावृत्तिः, प्रथमद्वितीययोः एकजातीयं तृतीयचतुर्थयोः अन्यजातीयं पादावृत्तिः, प्रथम-चतुर्थयोः एकजातीयं द्वितीयतृतीययोः अन्यजातीयं पादावृत्तिश्च **मताः** प्रोक्ता आचार्यैरिति

शेषः । एवमेव **पादाभ्यासः** पादावृत्तिः **अपि अनेकात्मा** अनेकविधः भवति; सः समुद्गः पादाभ्यासः च **निदर्शनैः** उदाहरणैः **व्यज्यते** निरूप्यते ।

विशेष—

(१) अर्धभाग अर्थात् दो पादों में आवृत्ति होने पर समुद्ग यमक कहलाता है। यह तीन प्रकार का होता है- (क) जिसके प्रथम और तृतीय पाद एकजातीय हों तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद अन्यजातीय (ख) जिसके प्रथम और द्वितीय पाद एकजातीय हो तथा तृतीय और चतुर्थ पाद अन्यजातीय (ग) जिसके प्रथम और चतुर्थ पाद एकजातीय हों तथा द्वितीय और तृतीय पाद अन्यजातीय ।

(२) पादाभ्यास यमक के भेदों को समुद्ग यमक के निरूपण के बाद कहा जाएगा।

(प्रथमरूपं समुद्गयमकनिदर्शनम्)

नास्थेयःसत्त्वया वर्ज्यः परमायतमानया ।
नाऽऽस्थेयः स त्वयाऽऽवर्ज्यः परमायतमानया ।।५४।।

अन्वय— अस्थेयःसत्वया परमायतमानया सः न वर्ज्यः, परम् आस्थेयः ना आयतमानया त्वया आवर्ज्यः ।

शब्दार्थ— अस्थेयःसत्वया = अस्थिर स्वाभाव वाली । परमायतमानया = अतिदीर्घ (अत्यधिक) प्रणय-युक्त (तुम्हारे) द्वारा । सः = वह । न वर्ज्यः = छोड़ नहीं दिया जाना चाहिए, तिरस्कृत नहीं किया जाना चाहिए । परं = किन्तु । आस्थेयः = परमादरणीय । ना = पुरुष । आयतमानया = अत्यधिक (आयत) समादर (मान) के साथ, अत्यधिक प्रयत्न के साथ । त्वया = तुम्हारे द्वारा । आवर्ज्यः = वश में कर लिया जाना चाहिए ।

अनुवाद— (हे मानिनि), अस्थिर स्वभाव वाली तथा अत्यधिक प्रणयकोप से युक्त (तुम्हारे) द्वारा वह (अपराधयुक्त भी) प्रिय तिरस्कृत नहीं किया जाना चाहिए प्रत्युत (वह) परमादरणीय पुरुष अत्यधिक समादर के साथ तुम्हारे द्वारा वश में कर लिया जाना चाहिए ।

संस्कृतव्याख्या— समुद्गयमकस्य प्रथमं रूपं निदर्शयत्यत्र- **नास्थेयः** इति। हे कामिनि, **अस्थेयःसत्वया** अस्थेयः अस्थिरं सत्त्वं स्वभावः यस्याः तया च **परमायतमानया** परमायतः अतिविस्तीर्णः मानः प्रणयमानः यस्याः तादृश्या त्वया कामिन्या **सः** परस्त्रीगमनेन सापराधोऽपि कान्तः **न वर्ज्यः** न तिरस्करणीयः **परं** प्रत्युत सः **आस्थेयः** सम्माननीयः **ना** पुरुषः **आयतमानया** अत्यधिकं समादरम् आचरन्त्या त्वया **आवर्ज्यः** स्ववशीकरणीयः । अत्र प्रथमतृतीययोः पादयोः सजातीययोः व्यवहिता आवृत्तिः

एवञ्च द्वितीयचतुर्थयोः पादयोः अन्यजातीययोः व्यवहिता आवृत्तिः अत एव व्यपेत-रूपः समुद्गस्य यमकस्य प्रथमः भेदः।

विशेष—

(१) इस उदाहरण में प्रथम और तृतीयपाद की सजातीय व्यवहित तथा द्वितीय और चतुर्थपाद की अन्यजातीय व्यवहित आवृत्ति हुई है, अतः यहाँ व्यपेतरूप प्रथम प्रकार का समुद्गयमक है।

(द्वितीयसमुद्गयमकनिदर्शनम्)

नरा जिता माननया समेत्य
न राजिता माननयासमेत्य।
विनाशिता वै भवताऽयनेन[1]
विनाऽशिता वैभवतायनेन[2] ।।५५।।

अन्वय— माननया समेत्य जिताः नराः माननयासम् एत्य न राजिताः। वैभव-तायनेन वै भवता अयनेन विनाशिताः विना अशिताः।

शब्दार्थ—माननया = सम्मान के साथ, समादर के साथ। समेत्य = हे समुपगमनीय, हे समुपसरणीय। जिताः = पराजित, पराभूत। नराः = मनुष्य (शत्रु)। माननयासम् = (आत्मा-) सम्मान (मान) और (युद्ध) नीति (नय) को। एत्य = जाकर, प्राप्त करके। न राजिताः = शोभायमान नहीं हुए। वैभवतायनेन वै = अपने वैभव का विस्तार करने वाले। भवता = आपके द्वारा। अयनेन = आक्रमण से। विनाशिताः = विनष्ट किये गये, मारे गये। विना = पक्षियों द्वारा। अशिताः = खा लिये गये।

अनुवाद— समादर के साथ समुपगमनीय (हे राजन्), (आप के द्वारा) पराजित (पराभूत) मनुष्य (शत्रु) आत्मसम्मान और नीति को प्राप्त करके शोभायमान नहीं हुए। (अपने) वैभव का विस्तार करने वाले आप के द्वारा आक्रमण से मारे गये (शत्रु) (गिद्ध) पक्षियों द्वारा खा डाले गये।

संस्कृतव्याख्या—द्वितीयं समुद्गभेदं निदर्शयत्र- **नरा इति**। **माननया** समा-दरेण **समेत्य** हे समागमनीय राजन्, भवता **जिताः** युद्धे पराभूताः **नराः** मनुष्याः शत्रवः **माननयासं** मानस्य सम्मानस्य नयस्य नीतेः च आसं शेषम् **एत्य** प्राप्य न

(१) -ऽऽयनेन।

(२) -तापनेन।

राजिताः न शोभिताः युद्धक्षेत्रात्पलायितास्ते नितरां तिरस्कृताः । तथा च **वैभवता**... वै विभुत्वविस्तारकारिणा **भवता** राज्ञा **अयनेन** यानेन आक्रमणेन **विनाशितः** विना... मृताः ते शत्रवः **विना** गृद्धपक्षिणा **अशिताः** भक्षिताः जाताः । अत्र प्रथमद्वितीय... सजातीययोः तृतीयचतुर्थयोः भिन्नजातीययोः अव्यवहितेन आवृत्या अव्यपेता... द्वितीयप्रकारकं समुद्गयमकं विद्यते ।

विशेष—

(१) इस उदाहरण में प्रथम और द्वितीय पाद में सजातीय तथा तृतीय और चतुर्थ... में भिन्नजातीय वर्णसमुदाय की अव्यवहित आवृत्ति है अतः यहाँ द्वितीय प्रकार... अव्यपेतसमुद्गयंमक है ।

(तृतीयसमुद्गयमकनिदर्शनम्)

कलापिनां चारुतयोपयान्ति[१]
वृन्दानि लापोढ[२]घनागमानाम् ।
वृन्दानिलापोढघनागमानां
कलापिनां चारुतयोऽपयान्ति ।।५६।।

अन्वय— लापोढघनागमानां कलापिनां वृन्दानि चारुतया उपयान्ति (तथा च) वृन्दानिलापोढघनागमानां कलापिनाम् आरुतयः अपयान्ति ।

शब्दार्थ— लापोढघनागमानां = कूजन (लाप) से सूचित (ऊढ) होता है मेघागमन (वर्षा काल जिसके ऐसे, कूजन से वर्षाकाल को सूचित करने वाले) कलापिनां = मयूरों के । वृदानि = समूह । चारुतया = शोभाविशेष से । उपयान्ति = समन्वित हो रहे हैं । वृन्दानिलापोढघनागमानां = आँधी की वायु (वृन्दानिल) द्वारा निवारित (विघ्नित, रोका गया अपोढ) है नृत्योल्लास जिनका ऐसे, आँधी की वायु (वृन्दानिल) द्वारा निवारित (रोके गये) नित्योल्लास वाले । कलापिनां = जल (क) में मधुरध्वनि (लाप) करने वाले अर्थात् हंसों के । आरुतयः = कूजन । अपयान्ति = दूर हो रहे हैं, समाप्त हो रहे हैं ।

अनुवाद— कूजन से मेघागमन (वर्षा काल) को सूचित करने वाले मयूरों के समूह शोभा से समन्वित हो रहे हैं तथा आँधी की वायु द्वारा निवारित नृत्योल्लास वाले हंसों के कूजन समाप्त हो रहे हैं ।

---

(१) -तमोप- ।
(२) खापोढ- ।

संस्कृतव्याख्या— तृतीयं समुद्गभेदं निदर्शयत्यत्र– **कलापिनामिति**। वर्षा-कालस्य वर्णनमत्र विद्यते। **लापोढघनानां** लापेन अव्यक्तकूजनेन ऊढः घनागमः वर्षागमनकालः यैः तादृशानां कूजनध्वनिसूचितवर्षागमानां **कलापिनां** मयूराणां **वृन्दानि** समूहानि **चारुतया** शोभाविशेषेण **उपयान्ति** प्राप्नुवन्ति अत्यधिकशोभासम्पन्नाः भवन्तीत्यर्थः। तथा च **वृन्दानिलापोढघनागमानां** वृन्दानिलेन झञ्झावातेन अपोढः निवारितः घनस्य नृत्यविशेषस्य आगमः उत्सवः येषां तादृशानां तीव्रगतिवायुना निरस्तनृत्योत्सवानां **कलापिनां** के जले लपन्तीति कलं मुधरम् अलपन्ति रवं कुर्वन्तीति वा तादृशानाम् अर्थात् हंसानाम् **आरुतयः** कूजितानि **अपयान्ति** अपगच्छन्ति। वर्षासु मदरहिताः जाताः हंसाः परित्यज्य मानसरोवरं प्रति प्रस्थानं कुर्वन्ति। अत्र प्रथमचतुर्थयोः, समजातीययोः पादयोः व्यवहितेन द्वितीयतृतीययोः भिन्नजातीययोः पादयोः अव्यवहितेन आवृत्या व्यपेताव्यपेतात्मकं तृतीयप्रकारकं समुद्गयमकम्।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण के प्रथम और चतुर्थपाद में सजातीय व्यवहित तथा द्वितीय और तृतीयपाद में भिन्नजातीय अव्यवहित समुद्गयमक है। इस प्रकार यहाँ व्यपेताव्यपेतात्मक तृतीय प्रकारवाला समुद्गयमक है।

(२) इस श्लोक में वर्षा काल का सजीव वर्णन किया गया है।

(द्वितीयपादगतप्रथमपादाभ्यासयमकनिदर्शनम्)

न मन्दयाऽवर्जितमानसात्मया
न मन्दयावर्जितमानसात्मया।
उरस्युपास्तीर्णपयोधरद्वयं
मया समालिङ्ग्यत जीवितेश्वरः॥५७॥

अन्वय— अवर्जितमानसात्मया दयावर्जितमानसात्मया मन्दया मया नमन् जीवितेश्वरः उरसि उपास्तीर्णपयोधरद्वयं न समालिङ्ग्यत।

शब्दार्थ— अवर्जितमानसात्मया = मान को न छोड़ने में प्रयत्नशील। दयावर्जितमानसात्मया = दयाविहीन मन और आत्मा वाली। मन्दया = मन्दगति, मूढ। मया = मेरे द्वारा। नमन् = (मेरे पैरों पर) झुका हुआ। जीवितेश्वर = प्राण प्रिय, प्रियतम। उरसि = वक्षस्थल पर। उपास्तीर्णपयोधरद्वयं = (अपने) दोनों उरोजों को फैलाये हुए। न समालिङ्ग्यत = समालिङ्गित नहीं किया गया, चुम्बन नहीं लिया गया।

अनुवाद— मान को न छोड़ने में प्रयत्नशील तथा दयाविहीन मन और आत्मा

वाली मूढ मेरे द्वारा (मेरे पैरों पर) झुका हुआ प्राणप्रिय, वक्षस्थल पर (अपने) उरोजों को फैलाये हुए समालिङ्गित नहीं किया गया (यह कष्ट की बात है)।

संस्कृतव्याख्या— पादाभ्यासस्य यमकस्य प्रथमद्वितीयपादगतं द्विपादाभ्यासयमकं निदर्शयत्यत्र- **न भन्दयेति**। **अवर्जितमानसात्मया** अवर्जिते अपरित्यक्ते माने प्रणयमाने सात्मया सप्रयत्नया प्रयत्नं कुर्वत्या, तथा च **दयावर्जितमानसात्वया** दयया करुणया वर्जितौ विहीनौ मानसात्मानौ मानं चात्मा च यस्याः तथाभूतया **मूढया** मन्दमत्या **मया** मनिन्या **नमन्** मम पादयोः परिपतन् **जीवितेश्वरः** प्राणप्रियः **उपस्तीर्णपयोधरद्वयम्** उपास्तीर्णं प्रगाढमर्षितं पयोधरद्वयम् उरोजयुगलं **न समालिङ्ग्यत** न समाश्लिष्यत्। प्रणयकोपाद् मया क्षमां याचान्नपि प्रियः न समादरितः इत्यपगतमानायाः अनुशयेन कथनमिदम्। अत्र प्रथमद्वितीययोः पादयोः अव्यवहितेन अभ्यासः अत एव द्वितीयपादगतं प्रथमपादाभ्यासम् अव्यपेतयमकम्।

विशेष—

(१) पादाभ्यास यमक के तीन भेद हैं– (क) एक पाद की एक बार आवृत्ति (ख) एक पाद की दो बार आवृत्ति और (क) एक पाद की तीन बार आवृत्ति।

(२) एक पाद की एक बार आवृत्ति में पद्य के दो पाद वर्णसमूह की दृष्टि से समान होते हैं। इस पादाभ्यासयमक के छः प्रभेद होते हैं– (i) प्रथम पाद की द्वितीयपाद में आवृत्तिः (ii) प्रथमपाद की तृतीयपाद में आवृत्ति (iii) प्रथमपाद की चतुर्थ पाद में आवृत्ति (iv) द्वितीय पाद की तृतीयपाद में आवृत्तिः (v) द्वितीयपाद की चतुर्थ में आवृत्ति (vi) तृतीयपाद की चतुर्थपाद में आवृत्ति। इन प्रभेदों में से प्रथम, चतुर्थ और षष्ठ प्रभेद अव्यपेत पादाभ्यास यमक तथा शेष तीन व्यपेत पादाभ्यास यमक है।

(३) एक पाद की दो बार आवृत्ति पद्य के तीन पाद समूह की दृष्टि से समान होते हैं। इसके चार प्रभेद होते हैं– (i) प्रथमपाद की द्वितीय और तृतीयपाद में आवृत्ति (ii) प्रथमपाद की द्वितीय और चतुर्थपाद में आवृत्तिः (iii) प्रथमपाद की तृतीय और चतुर्थपाद में आवृत्ति (iv) द्वितीयपाद की तृतीय और चतुर्थपाद में आवृत्ति। इनमें से प्रथम, और चतुर्थ प्रभेद अव्यपेत पादाभ्यासयमक तथा शेष दो व्यपेतपादाभ्यासयमक हैं।

(४) एक पाद की तीन बार आवृत्ति में पद्य के चारों पाद समान वर्णसमूह वाले हैं। इस प्रकार यह एक ही प्रकार का होता है। यह अव्यपेत चतुष्पाद यमक भी कहलाता है। यह यमक महायमक भी कहलाता है।

(५) प्रस्तुत उदाहरण में प्रथमपाद के वर्णसमूह की द्वितीय पाद में अव्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ द्वितीयपादगत प्रथमपादाभ्यास अव्यपेतयमक है।

(तृतीयपादगतप्रथमपादाभ्यासयमकनिदर्शनम्)

सभा सुराणामबला विभूषिता
गुणैस्तवारोहि मृणालनिर्मलैः ।
स भासुराणामबला विभूषिता
विहारयन्निर्विश सम्पदः पुराम् ।।५८।।

अन्वय— तव मृणालनिर्मलैः गुणैः अबलाविभूषिता सुराणां सभा आरोहि, सः विभूषिताः अबलाः विहारयन् भासुराणां पुरां सम्पदः निर्विश।

शब्दार्थ— तव = तुम्हारे। मृणालनिर्मलैः = मृणाल (कमलदण्ड) के समान निर्मल। गुणैः = गुणों द्वारा। अबलाविभूषिता = रमणियों (अप्सराओं) से शोभायमान। देवानां = देवताओं (सुधर्मा) की। सभा = सभा। आरोहि = आरुढ़ हुई है। सः = वह (ऐसे आप)। विभूषिताः = अलङ्कृत। अबलाः = रमणियों को। विहारयन् = विहार कराते हुए। भासुराणां = समृद्ध। पुरां = नगरों की। सम्पदः = सम्पदाओं का। निर्विश = उपभोग करो।

अनुवाद— (हे राजन्) तुम्हारे मृणाल (कमलदण्ड के समान) निर्मल गुणों द्वारा रमणियों (अप्सराओं) से शोभायमान देवताओं (सुधर्मा) की सभा आरुढ (दृढ) हुई है वह (ऐसे गुण वाले तुम) अलङ्कृत रमणियों को विहार कराते हुए समृद्ध नगरों की सम्पदाओं का उपभोग करो।

संस्कृतव्याख्या— तृतीयपादगतं व्यपेतं प्रथमपादाभ्यासयमकं निदर्शयत्यत्र– **सभेति**। हे राजन्, **तव** राज्ञः **मृणालनिर्मलैः** मृणालवत् कमलवृन्तवत् निर्मलैः शुभ्रैः गुणैः **अबलाविभूषिता** अबलाभिः रमणीभिः अप्सरसोभिः विभूषिता सुशोभिता **देवानां सभा** अमराणां सुधर्मणः सभा परिषद् **आरोहि** आरुढा विद्यते। **सः** एतादृशः गुणसम्पन्नः त्वं **विभूषिताः** विशेषेणालङ्कृताः **अबलाः** स्त्रियः **विहारयन्** रमयन् **भासुराणां** समृद्धानां **पुरां** नगराणां **सम्पदः** वैभवानि **निर्विश** उपसेवय। अत्र तृतीयपादगतं व्यपेतं प्रथमपादाभ्यासयमकम्।

विशेष—

(१) यहाँ प्रथम पाद की तृतीयपाद में व्यवहित आवृत्ति हुई है अतः तृतीयपादगत व्यपेत प्रथमपादाभ्यास यमक है।

(चतुर्थपादगतप्रथमपादाभ्यासयमकनिदर्शनम्)

कलं कमुक्तं तनुमध्यनामिका
स्तनद्वयी च त्वदृते न हन्त्यतः ।
न याति भूतं गणने भवन्मुखे
कलङ्कमुक्तं तनुमध्यनामिका ।।५९।।

अन्वय— कलं उक्तं तनुमध्यनामिका स्तनद्वयी त्वदृते कं न हन्ति, भवन्मुखे गणने अनामिका कं कलङ्कमुक्तं तनुमत् भूतं न याति ।

शब्दार्थ— कलं = मधुर । उक्तं = कथन, वाणी । तनुमध्यनामिका = कृश (तनु) कटिप्रदेश (मध्य) को झुका देने वाले, (नमित कर देने वाले, नामिका)। स्तनद्वयी = (उसके स्थूल) दो स्तन । त्वदृते = तुम्हारे बिना, तुमसे अन्य । कं = किस (पुरुष) को । न हन्ति = नहीं मार डालते हैं, व्यथित नहीं कर देते हैं। भवन्मुखे = आप (जैसे) प्रमुख (पुरुषों) की । गणने = गणना होने पर । अनामिका = अनामिका । कं = किसी (पुरुष) को । न यति = नहीं प्राप्त करती ।

अनुवाद— (युवतियों की) मधुर वाणी और उनके कृश कटिप्रदेश को झुका देने वाले दोनों स्तन तुमसे अन्य किस (पुरुष) को व्यथित नहीं कर देते हैं। आप जैसे प्रमुख (पुरुषों) की गणना होने पर अनामिका किसी कलङ्कविहीन शरीरधारी प्राणी पुरुष को नहीं प्राप्त करती (अर्थात् कनिष्ठिका पर आप का निर्देश हो जाने पर निर्दोष कोई व्यक्ति अनामिका के लिए अवशिष्ट नहीं बचता, सभी को प्राप्त कर लेती है।

संस्कृतव्याख्या— चतुर्थपादगतं प्रथमपादाभ्यासं व्यपेतयमकं निदर्शयत्यत्र-**कलमिति**। स्त्रीणां **कलं** मधुरम् **उक्तं तनुमध्यनामिका** तनुं कृशं मध्यं कटिप्रदेशं नमयतीति तादृशी अतिविशाला **स्तनद्वयी** स्तनद्वययुक्ता रमणी **त्वदृते** त्वां परित्यज्य अन्यं **कं** पुरुषं **न हन्ति** न व्यथयन्ति केवलं त्वामेव वशेन्द्रियं न विकलयति इति भाव: । अत एव **भवन्मुखे** भवत्प्रमुखे **गणने** गणनाप्रसङ्गे **वशेन्द्रियजनानां** गणनायां भवति च कनिष्ठिकाधिष्ठिते **अनामिका** कनिष्ठिकान्तराङ्गुलि: कमपि **कलङ्कमुक्तं** दोषरहितं जितेन्द्रियं तनुमत् शरीरिभूतं सशरीरं प्राणिनं **न याति** नैव प्राप्नोति। अत्र प्रथमपादस्य वर्णसमूहस्य व्यपेतेन चतुर्थेपादे अभ्यास: अत एव चतुर्थपादगतं प्रथमपादाभ्यासं व्यपेतयमकं विद्यते ।

विशेष—

(१) यहाँ प्रथमपाद की चतुर्थपाद में व्यवहित आवृत्ति हुई है, अतः चतुर्थपादगत प्रथमपादाभ्यास व्यपेतयमक है ।

(तृतीयपादगतद्वितीयपादाभ्यासाव्यपेतयमकनिदर्शनम्)

यशश्च ते दिक्षु रजश्च सैनिका
वितन्वतेऽजोपम दंशिता युधा ।
वितन्वतेजोऽपमदंशितायुधा
द्विषां च[१] कुर्वन्ति कुलं तरस्विनः ।।६०।।

अन्वय— अजोपम ते दंशिताः शितायुधाः तरस्विनः सैनिकाः युधा दिक्षु यशः रजः वितन्वते द्विषां कुलं वितनु अतेजः अपमदं च कुर्वन्ति ।

शब्दार्थ— अजोपम = हे अज (विष्णु) के समान (राजन्) । ते = तुम्हारे । दंशिताः = कवचधारी । तरस्विनः = तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों से सम्पनेन । सैनिकाः = सैनिक । युधा = युद्ध द्वारा । दिक्षु = दिशाओं में, चारों ओर । यशः = यश को, कीर्ति को । रजः = (चलने से उड़ी हुई पैरों की) धूलि को । वितन्वते = फैला रहे हैं, बढ़ा रहे हैं । द्विषां = शत्रुओं के । कुलं = समूह को । वितनु = शरीररहित अथवा (मारकर सङ्कुचित) । अतेजः = कान्तिविहीन । अपरं च = और गर्वरहित । कुर्वन्ति = कर रहे (बना रहे) हैं ।

अनुवाद— हे विष्णु के समान राजन्, तुम्हारे कवचधारी और तीक्ष्ण शास्त्रास्त्रों से सम्पन्न सैनिक युद्ध द्वारा चारों दिशाओं में कीर्ति को और (चलने से उड़ी हुई पैरों की) धूलि को फैला रहे हैं तथा शत्रुओं के समूह को शरीरहित (अथवा मारकर सङ्कुचित), कान्तिविहीन और गर्वविहीन बना रहे हैं ।

संस्कृतव्याख्या— तृतीयपादगतं द्वितीयपादाभ्यासम् अव्यपेतयमकं निदर्शयत्यत्र- **यशश्चेति** । **अजोपम** हे विष्णुसदृश राजन्, **ते** तव राज्ञः **दंशिताः** कवचाच्छादिताः **शितायुधा** तीक्ष्णशस्त्रास्त्रसम्पन्नाः **सैनिकाः** बलाः **युधा** युद्धेन **दिक्षु** चतुर्षु दिग्भागेषु **यशः** कीर्तिं **रजः** स्वपादोत्थितधूलिं च **वितन्वते** प्रसारयन्ति एवं **द्विषां** शत्रूणां **कुलं** समूहं **वितनु** शरीरविहीनं हत्वा विशेषेण सङ्कुचितं वा **अतेजः** कान्तिहीनः **अपदं च** गर्वरहितं च **कुर्वन्ति** सम्पादयन्ति । अत्र तृतीयपादगतं द्वितीयपादाभ्यासम् अव्यपेतयमकम् ।

विशेष—

(१) यहाँ द्वितीयपाद की तृतीयपाद में अव्यवहित आवृत्ति है अतः तृतीयपादगत द्वितीयपादाभ्यास अव्यपेतयमक है ।

---

(१) तु ।

(चतुर्थपादगतद्वितीयपादाभ्यासव्यपेतयमकनिदर्शनम्)

विभर्ति भूमेर्वलयं भुजेन ते
भुजङ्गमोऽमा स्मरतो मदञ्चितम् ।
शृणूक्तमेकं स्वमवेत्य भूधरं
भुजङ्ग मो मा स्म रतो मदं चितम् ।।६१।।

अन्वय— भुजङ्गमः ते भुजेन अमा भूमेः वलयं विभर्ति (इति) स्मरतः मदञ्चितम् एकम् उक्तं शृणु । स्वं भुजं भूधरम् अवेत्य रतः चितं मदं मा स्म गमः ।

शब्दार्थ— भुजङ्गमः = शेषनाग । ते = तुम्हारी । भुजेन अमा = भुजा के साथ । भूमेः = पृथिवी के । वलयं = मण्डल को । विभर्ति = धारण करते हैं । स्मरतः = याद करते हुए, ध्यान में रखते हुए । मदञ्चितं = मुझसे युक्तिपूर्ण । एकं = एक । उक्तिं = बात को, कथन को । शृणु = सुनो । स्वं = अपनी । भुजं = भुजा को । भूधरम् = पृथ्वी-धारण करने वाली । अवेत्य = जानकर, समझकर । रतः = अनुरक्त, प्रसन्नचित्त । मदं = गर्व को । मा स्म गमः = प्राप्त न हो जाना, गर्व मत करना ।

अनुवाद— (हे राजन्), शेषनाग तुम्हारी भुजा के साथ पृथ्वी-मण्डल को धारण करते हैं (इसे) याद करते हुए (ध्यान में रखते हुए) मुझसे युक्तिपूर्ण एक बात सुनो-अपनी भुजा को पृथ्वी-धारण करने वाली समझकर प्रसन्नचित हुए तुम (कभी) गर्व मत करना ।

संस्कृतव्याख्या— चतुर्थपादगतं द्वितीयपादाभ्यासं व्यपेतयमकं निदर्शयत्यत्र-**विभर्तीति** । हे राजन्, **भुजङ्गमः** शेषनागः **ते** तव राज्ञः **भुजेन अमा** बाहुना सह **भूमेः** पृथिव्याः **वलयं** मण्डलं **विभर्ति** धारयति कथनमिदं **स्मरतः** ध्यायन्तः **मदञ्चितं** मम अञ्चितं समादरितम् युक्तियुक्तम् । **एकम्** अद्वितीयं **उक्तिं** वचः **शृणु** अवधारय यत् **स्वं** स्वकीयं **भुजं** बाहुं **भूधरं** पृथ्वीभारधारकम् इति **अवेत्य** अवबुद्ध्य **रतः** प्रसन्नचित्तः त्वं **चितम्** उपचितं प्रवृद्धं **मदं** गर्वं **मा स्म गमः** न गच्छ । अत्र चतुर्थपादगतं द्वितीयपादाभ्यासं व्यपेतयमकं विद्यते ।

विशेष—

(१) यहाँ द्वितीयपाद की चतुर्थपाद में व्यवहित आवृत्ति होने के कारण चतुर्थपादगत द्वितीयपादाभ्यास व्यपेतयमक है ।

(चतुर्थपादगततृतीयपादाभ्यासव्यपेतयमकनिदर्शनम्)

स्मरानलो मानविवर्धितो यः
स निर्वृत्तिं ते किमपाकरोति ।

समन्ततस्तामरसेक्षणे न
समं ततस्तामरसे क्षणेन ।।६२।।

अन्वय— अरसे तामरसेक्षणे, ते मानविवर्धितः क्षणेन समं ततः यः स्मरतानलः (अस्ति) सः तां निर्वृत्तिं समन्ततः किं न अपाकरोति।

शब्दार्थ— अरसे = हे अरसिक, हे रसविहीन। तामरसेक्षणे = कमललोचने। ते = तुम्हारी। मानविवर्धितः = प्रणयमान से वृद्धि को प्राप्त (बढ़ी हुई)। क्षणेन = क्षणमात्र में ही। समं = समानरूप से। ततः = विस्तृत हुई, फैली हुई। यः = जो। स्मरानलः = कामाग्नि (है)। सः = वह (कामाग्नि)। तां = उस (पूर्वानुभूत)। निर्वृतिं = (रतिविलास के) सुखविशेष को। समन्ततः = चारों ओर से, सम्पूर्णरूप से। किं न = क्यों नहीं। अपाकरोति = दूर कर रही है।

अनुवाद— हे अरसिक कमलचोचने, तुम्हारी प्रणयमान से बढ़ी हुई तथा क्षणभर में विस्तृत हुई (फैली हुई) जो कामाग्नि है, वह (कामाग्नि तुम्हारी) उस (पूर्वानुभूत रतिविलास के) सुख-विशेष को सम्पूर्ण रूप से क्यों नहीं दूर कर रही है?

संस्कृतव्याख्या— चतुर्थपादगतं तृतीयपादाभ्यासम् अव्यपेतयमकं निदर्शयत्यत्र– स्मरेति। **अरसे** हे अरसिके, **तामरसेक्षणे** हे कमललोचने, **ते** तव **मानविवर्धितः** मानेन प्रणयकोपेन विवर्धितः वृद्धिं गतः **क्षणेन** क्षणमात्रेण च **समं** समानरूपेण **ततः** विस्तृतः यः **स्मरानलः** कामाग्निः विद्यते **सः** कामाग्निः **ते** तव **तां** पूर्वानुभूतां **निर्वृत्तिं** रतिविलासस्य सुखविशेषं **समन्ततः** समग्ररूपेण **किं** केन कारणेन **न अपाकरोति** न दूरीकरोति। मानेन वर्धितः खलु कामाग्निः पूर्वाभूतमपि रतिसुखं निरस्यतीति कयाचित् सख्या मानिनी समुपदिष्टा भवति। अत्र चतुर्थपादगतं तृतीयपादाभ्यासम् अव्यपेतयमकम्।

विशेष—

(१) इस उदाहरण में तृतीयपाद के वर्णसमूह की चतुर्थपाद में अव्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ चतुर्थपादगत तृतीयपादाभ्यास अव्यपेत यमक है।

(द्वितीयतृतीयपादगतप्रथमपादाभ्यासनिदर्शनम्)

प्रभावतो नामन वासवस्य
प्रभावतो नाम नवासवस्य।
प्रभावतोऽनाम न वा सवस्य
विच्छित्तिरासीत्त्वयि विष्टपस्य ।।६३।।

पदच्छेद— प्रभावतः नामन वासवस्य, प्रभावतः नाम नवा (व + आ) सवस्य।

प्रभौ अतः अनाम न वा सवस्य, विच्छित्तिः आसीत् त्वयि विष्टपस्य।

अन्वय— प्रभावतः वासवस्य नामन अनाम विष्टपस्य त्वयि प्रभौ अतः प्रभावतः नाम नवासवस्य समस्य वा विच्छित्तिः न आसीत्।

शब्दार्थ— प्रभावतः = दीप्तिमान्। वासवस्य = इन्द्र को। नामन = विनमित कर देने वाले, झुका देने वाले। अनाम = निरोग अथवा न झुकने वाले। विष्टपस्य = भुवन के। त्वयि = तुम्हारे। प्रभौ = स्वामी होने पर। अतः = इस (भुवन) से। प्रभावतः नाम = प्रभावान् (अथवा कान्तिमान् वर्ण वाली)। नवासवस्य = नवीन आसव (नयी मदिरा) का। वा = अथवा, और। सवस्य = सोम यज्ञ का। विच्छित्तिः = विच्छेद, विनाश। न आसीत् = नहीं हुआ था।

अनुवाद— हे प्रभावान् (दीप्तिमान्) इन्द्र को झुका देने वाले और (स्वयं) न झुकने वाले (अथवा निरोग) (हे राजन्), (इस) भुवन के तुम्हारे स्वामी होने पर (शासक होने पर) इस (भुवन) से प्रभावान् नामक (अथवा कान्तिमान् वर्ण वाली) नवीन आसव (नयी मदिरा) का और सोम यज्ञ का विनाश नहीं हुआ था।

संस्कृतव्याख्या— द्वितीयतृतीयपादगतं प्रथमपादाभ्यासम् अव्यपेतयमकं निदर्शयत्यत्र– **प्रभावत इति**। **प्रभावतः** दीप्तिमतः **वासवस्य** इन्द्रस्य **नामन** नामयति नामनः तत्सम्बुद्धौ हे प्रतापातिशयेन इन्द्रगर्वशामक, **अनाम** न आमः रोगो यस्य तादृशः न नामः नमनं यस्य तादृशः वा तत्सम्बुद्धौ हे निरोग परनमनाभिज्ञ वा हे राजन्, **त्वयि** अस्य **विष्टपस्य** भुवनस्य **प्रभौ** स्वामिनि शासके सति **अतः** अस्माद्भुवनात् **प्रभावतः नाम** प्रभावदभिधानस्य कान्तिमद्वर्णस्य वा **नवासवस्य** अभिनवमदिरायाः **सवस्य वा** सोमयागस्य च **विच्छित्तिः** विनाशः **न आसीत्** नाभवत्। भुवि तव शासने आसवः सवश्च निर्बाधेन प्राचलदित्यनेन कोऽपि राजा प्रशंसितः। अत्र द्वितीयतृतीयपादगतं प्रथमपादाभ्यासमव्येतयमकम्।

विशेष—

(१) इस पद्य के द्वितीय और तृतीयपाद में प्रथमपाद के वर्णसमूह की अव्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ द्वितीयतृतीयपादगत प्रथमपादाभ्यास अव्यपेतयमक है।

(२) इस प्रकार एक ही वर्णसमूह तीन पादों में समान रूप से आता है इस लिए इसे पादत्रयाभ्यास भी कहा जाता है।

(तृतीयचतुर्थपादगतप्रथमपादाभ्यासव्यपेतयमकनिदर्शनम्)

परम्पराया बलवा रणानां

धूलीः स्थलीर्व्योम[१] विधाय रुन्धन्।

(१) व्योम्नि।

परं　　परायाबलवारणानां
　　परं　परया　बलवारणानाम् ।।६४।।

अन्वय— पराय, बलवाः अबलवारणानां बलवारणानां रणानां परम्परायाः स्थलीः धूलीः विधाय व्योम रुन्धन् परं परं परायाः ।

शब्दार्थ— पराय = हे परम (परं) कल्याणमय (अय)। बलवाः = हे बल से (शत्रुओं का) निवारण करने वाले (बलशाली)। अबलवारणानां = दुर्बल शत्रुओं के संहारक। बलवारणानां = प्रबल हस्तिसेना वाले। रणानां = युद्धों के। परम्परायाः = परम्परा की, समूह की। स्थलीः = स्थान को, भूमि को। धूलीः = धूल। विधाय = करके, बना कर। व्योम = आकाश को। रुन्धन् = रूँधते हुए, आच्छादित करते हुए। परं = प्रबल। परं = शत्रु को। परायाः = पराजित कर दिया।

अनुवाद— हे परम कल्याणमय बलशाली (राजन्), दुर्बल शत्रुओं के संहारक और प्रबल हस्तिसेना वाले युद्धों के समूह की भूमि को धूल बनाकर आकाश को आच्छादित करते हुए तुमने प्रबल शत्रु को पराजित कर दिया।

संस्कृतव्याख्या— तृतीयचतुर्थपादगतं प्रथमपादाभ्यासं व्यपेतयमकं निदर्शयत्यत्र- **परम्पराया इति**। **पराय** परः उत्कृष्टः अयः कल्याणविधिः यस्य तादृशः तत्सम्बुद्धौ हे परं कल्याणमय **बलवाः** बलेन वारयति निवारयति रिपूम् इति तत्सम्बुद्धौ हे बलशालिन् राजन्, **अबलवारणानां** अबलानां दुर्बलानां शत्रूणां वारणानां संहारकानां **बलवारणानां** बलवन्तः बलशालिनः वारणाः गजाः यस्मिन् तादृशानां **रणानां** युद्धानां **परम्परायाः** समूहस्य **स्थलीः** भूमीः **धूलीः** राजांसि **विधाय** कृत्वा **व्योम** आकाशं **रुन्धन्** आच्छादयन् **परं** उत्कृष्टं **परं** शत्रुं **परायाः** परागतवान् पराजितवान्। अत्र तृतीयचतुर्थपादगतं प्रथमपादाभ्यासः व्यपेतयमकम्।

विशेष—

(१) इस उदाहरण में तृतीय और चतुर्थ पादों में प्रथमपाद के वर्णसमूह की व्यवहित आवृत्ति है अतः यहाँ तृतीयचतुर्थपादगत प्रथमपादाभ्यास व्यपेतयमक है।

(तृतीयचतुर्थपादगतद्वितीयपादाभ्यासाव्यपेतयमकनिदर्शनम्)

न श्रद्दधे वाचमलज्ज मिथ्या-
　　भवद्विधानामसमाहितानाम् ।
भवद्विधानामसमाहितानां
　　भवद्विधानामसमाहितानाम् ।।६५।।

पदच्छेद— न श्रद्दधे वाचम् अलज्ज मिथ्याभवद्दिधानम् असमा (म + अ) हितानाम् । भव-द्वि-धानाम् असमा (म + अ) हितानाम् भवद्विधानाम् असमाहितानाम् ।

अन्वय— अलज्ज, भवद्-विधानाम् असमाहितानाम् असमा (म + अ) हितानां मिथ्याभवद्विधानाम् असमा (म + अ) हि-तानां भव-द्वि-धानाम् वाचं न श्रद्दधे ।

शब्दार्थ— अलज्ज = हे निर्लज्ज । भवद्विधानां = आप जैसे । असमाहितानाम् = अव्यवस्थित (चञ्चल) मन वाले । असमा (म + अ) हितानां = कुटिल (विषम, असम) शत्रु (अहित) भूत (पुरुषों) की । मिथ्याभवद्विधानां = असत्य होते हुए कर्म वाली, क्रियान्वित न होने वाली (कर्म-विसदृश) । असमा (म + अ) हितानां = कुटिल (असम) साँप (अहि) के समान प्रपञ्च (तान) से युक्त । भव-द्वि-धानां = उत्पन्न होते ही दो अर्थ वाली, सुनने में दो अर्थ वाली । वाचं = वाणी को, कथन को, बात को । न श्रद्दधे = मैं आदर नहीं करती, मैं विश्वास नहीं करती ।

अनुवाद— हे निर्लज्ज, आप जैसे अव्यवस्थित (चञ्चल) मन कुटिल (विषम) शत्रुभूत (पुरुषों) की क्रियान्वित न होने वाली, कुटिल साँप के समान विस्तार (प्रपञ्च) से युक्त और सुनने में दो अर्थ वाली बात को मैं आदर नहीं करती (विश्वास नहीं करती) ।

संस्कृतव्याख्या— तृतीयचतुर्थपादगतं द्वितीयपादाभ्यासम् अव्यपेतयमकं निदर्शयत्यत्र- **नेति** । **अलज्ज** हे निर्लज्ज, **भवद्विधनाम्** भवतः सदृशानाम् **असमाहितानाम्** अव्यस्थितचित्तानाम् चञ्चलमनसाम् **असमाहितानां** असमाः कुटिलाः ते च अहिताः शत्रवः तेषां कुटिलशत्रुभूतानां पुरुषाणां **मिथ्याभवद्विधानां** मिथ्या असत्यं भवद् विधानं क्रिया यस्याः तादृशीं कर्मणाननुगताम् **असमाहितानां** असमः कुटिलश्चासौ अहिः सर्पः तस्य तानः विस्तारः यस्याः तादृशी कुटिलसर्पसदृशप्रपञ्चितां **भवद्विधानां** भवे उत्पत्तिसमये एव द्वे धाने अर्थरूपौ आश्रयौ यस्याः ताम्, श्रवणान्तमेव छद्मानां प्रयोगेण द्व्यर्थकाम् **वाचं** वाणीं **न श्रद्दधे** नैवाहं विश्वासं करोमि । वञ्चितायाः नायिकायाः कञ्चन शठं नायकं प्रति कथनमिदम् । अत्र तृतीयचतुर्थपादगतं द्वितीय प्रथमपादाभ्यासम् अव्यपेतयमकम् ।

विशेष—

(१) यहाँ तृतीय और चतुर्थपाद में द्वितीयपाद के वर्णसमूह की अव्यवहित आवृत्ति हुई है अतः यहाँ तृतीयचतुर्थपादगत द्वितीयपादाभ्यास अव्यपेतयमक है ।

(चतुष्पादगतपादाभ्यासनिदर्शनम्)

सन्नाहितो[१]मानमराजसेन
सन्नाहितो मानमराजसेन ।
सन्नाहितो मानमराजसेन
सन्नाहितो माऽनम राजसे न ।।६६।।

पदच्छेद— सन् आहितोमा (म + अ) नम-राज-सेन सन्ना (न + आ) हितोम आनम-राजसेन। सन् ना आहितः मानम् अराजस इन सन्नाहितः अनम राजसे न।

अन्वय— सन् आहितोमानम-राज-सेन सन्नाहितोम आनम-राजसेन अराजस अनम इन सन् ना मानम् अहितः सन्नाहितः मा राजसे (इति) न।

शब्दार्थ— सन् = सज्जन स्वभाव वाले। आहितोमानमराजसेन = (अपने अङ्गों में) धारण (आहित) की गयी हैं पार्वती (उमा) और शोभा युक्त (शोभासम्पन्न, अनम) चन्द्रमा (राजा) जिसके द्वारा ऐसे (शिव) के भक्त, (अपने अङ्गों में) पार्वती और चन्द्रमा को धारण करने वाले (शिव) के भक्त (सेन) (अर्थात् शैव)। सन्नाहितोम = विनष्ट (सन्न) कर दी गयी है शत्रु (अहित) की शोभा (उमा) जिसके द्वारा, शत्रुओं की शोभा को विनष्ट कर देने वाले। आनमराजसेन = नत (झुकी हुई, आज्ञाकारी, आनम) है राजसेना जिसकी ऐसे, आज्ञाकारी राजसेना वाले। अराजस = राजस (गुण) से रहित अर्थात् सत्त्वगुण वाले। अनम = (शत्रु के सामने) न झुकने वाले। इन = हे स्वामिन्, हे राजन्। सन् = सज्जन। ना = पुरुष। मानम् = गौरव को। आहितः = प्राप्त। सन्नाहितः = सन्नाहयुक्त, कवच (सन्नाह) को धारण किये हुए। मा राजसे = शोभायमान (शोभासम्पन्न) नहीं हो। न = (ऐसी बात) नहीं है।

अनुवाद— सज्जन स्वभाव वाले, (अपने अङ्गों में) पार्वती और चन्द्रमा को धारण करने वाले (शिव) के भक्त (अर्थात् शैव), शत्रुओं की शोभा को विनष्ट कर देने वाले, आज्ञाकारी राजसेना से युक्त, सत्त्वगुणसम्पन्न तथा शत्रु के सामने न झुकने वाले हे राजन्! सज्जन पुरुष (सत्पुरुष), गौरव को प्राप्त तथा कवच को धारण किये हुए तुम शोभायमान नहीं होते (ऐसी बात) नहीं है (अर्थात् अवश्य ही शोभायमान होते हो)।

संस्कृतव्याख्या— पादचतुष्टयाभ्यासम् अव्यपेतयमकं निदर्शयत्यत्र- **सन्नाहित इति**। **सन्** हे सत्स्वभावसम्पन्न, **आहितोमानमराजसेन** आहितौ स्वाङ्गधृतौ उमा पार्वती

---

(१) सन्नाभितो- ।

आनमराजः न अनमः सकान्तिः राजा चन्द्रः तस्य शिवस्य सेनः भक्तः तत्सम्बुद्धौ हे शैव, **सन्नाहितोम** सन्ना निरस्ता अहितानां शत्रूणाम् उमा शोभा येन सः तत्सम्बुद्धौ हे निरस्तशत्रुशोभ **आनमराजसेन** आनमा आनता राजसेना यत्र तादृशः तत्सम्बुद्धौ हे आज्ञापालकराजसेनासम्पन्न, **अराजस** न राजसः अराजसः रजोगुणविहीनः अर्थात् सत्वगुणसम्पन्नः तत्सम्बुद्धौ हे सत्वगुणशालिन्, **अनम** शत्रूणां प्रति अनमितः तत्सम्बुद्धौ हे अप्रणत, **इन** हे स्वामिन् राजन्, **सन्** सज्जनः **ना** पुरुषः **मानं** सम्मानं समादरम् **आहितः** प्राप्तः **सन्नाहितः** कवचितः च त्वं **मा राजसे** शोभायमानः न भवति इति न अर्थात् अवश्यमेव शोभसे। अत्र चतुष्पादगतं पादाभ्यासम् अव्यपेतयमकम्।

विशेष—

(१) यहाँ प्रथमपाद के वर्णसमूह की अव्यवहित आवृत्ति अगले द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पादों में हुई है अतः चतुष्पादगत पादाभ्यास अव्यपेतयमक है। यह यमक महायमक भी कहलाता है।

(२) इस श्लोक में किसी गौरवयुक्त राजा का वर्णन किया गया है। इस पद्य की व्याख्या के सन्दर्भ में विभिन्न टीकाकारों में पर्याप्त मतभेद है। उन मतभेदों का ऊहापोह न करते हुए यहाँ सर्वाधिक सुगङ्गत अर्थ को अपनाया गया है।

(युग्मकश्लोकाभ्यासनिरूपणम्)

सकृद् द्विस्त्रिश्च योऽभ्यासः पादस्यैवं प्रदर्शितः ।
श्लोकद्वयन्तु युक्तार्थं श्लोकाभ्यासो स्मृतो यथा ।।६७।।

अन्वय— पादस्य सकृत् द्विः त्रिः च यः अभ्यासः (स) एवं प्रदर्शितः। युक्तार्थं श्लोकद्वयं तु श्लोकाभ्यासः स्मृतः।

शब्दार्थ— पादस्य = पाद की। सकृत् = एक बार। द्वि = दो बार। त्रिः च = और तीन बार। यः = जो। अभ्यासः = आवृत्ति है। एवं = इस प्रकार। प्रदर्शितः = प्रदर्शित कर दी गयी। युक्तार्थं = परस्पर सम्बद्ध अर्थ वाले। श्लोकद्वयं = दो श्लोकों को। श्लोकाभ्यासं = श्लोकाभ्यास। स्मृतः = कहा जाता है।

अनुवाद— पाद की एक बार, दो बार तथा तीन बार जो आवृत्ति है (वह) इस प्रकार प्रदर्शित कर दी गयी। परस्पर सम्बद्ध अर्थ वाले (और समान रूप वाले) दो श्लोकों को श्लोकाभ्यास कहा जाता है।

संस्कृतव्याख्या— पादाभ्यासयमकं निरूप्यात्र श्लोकाभ्यासयमकं विवेचयति-**सकृदिति**। **पादस्य** पद्यचरणस्य **सकृत्** एक बारं **द्विः** द्विबारं **त्रिः च** त्रिबारं च **यः अभ्यासः** आवृत्तिः सः **एवम्** अनेन प्रकारेण पूर्वं **प्रदर्शितः** निरूपितः। युक्तार्थं

परस्परसम्बद्धार्थं **श्लोकद्वयं** पद्यमिथुनं पुनरावृतः सम्पूर्णोऽपि चतुष्पादात्मकः श्लोकः **श्लोकाभ्यासः स्मृतः** कथितः । यथेति निदर्शनोपक्रमणाय प्रयुक्तः ।

विशेष—

(१) परस्पर सम्बद्ध अर्थ वाले निबद्ध चतुष्पदी पद्य की अक्षरानुपूर्वी साम्य वाली आवृत्ति श्लोकाभ्यास कहलाती है । जिस प्रकार पादाभ्यास और अर्धाभ्यास यमक में अभ्यस्त पादों का अर्थ परस्पर संबद्ध होता है उसी प्रकार श्लोकाभ्यास में अभ्यस्त दोनों श्लोकों का अर्थ परस्पर सम्बद्ध होता है ।

(श्लोकाभ्यासनिदर्शनम्)

विनायकेन भवता वृत्तोपचितबाहुना ।
स्वमित्रोद्धारिणाऽभीता पृथ्वीयमतुलाश्रिता ।।६८।।
विनायकेन भवता वृत्तोपचितबाहुना ।
स्वमित्रोद्धाऽरिणाऽभीता पृथ्वी यमतुलाऽऽश्रिता ।।६९।।

अन्वय— वृत्तोपचितबाहुना स्वमित्रोद्धारिणा अतुलाश्रिता विनायकेन भवता इयं पृथ्वी अभीता । अभीता विनायकेन भवता वृत्तोपचितबाहुना, स्वमित्रोद्धा अरिणा पृथ्वी यमतुला आश्रिता ।

शब्दार्थ— वृत्तोपचितबाहुना = गोल (वृत) और पुष्ट (उपचित) हैं भुजाएँ जिसकी ऐसे, गोल और पुष्ट भुजाओं वाले । स्वमित्रोद्धारिणा = अपने मित्रों के उद्धारक अथवा सुष्ठुरूपेण (सु) शत्रुओं (अमित्रों) के विनष्ट करने वाले । अतुलाश्रित = अनुपम । विनायकेन = प्रजा को विनमित करने वाले (अर्थात् प्रजा के शासक) भवता = आप के द्वारा । इयं = यह । पृथ्वी = पृथ्वी । अभीता = भय से रहित (हो गयी है) । अभीता = आप की ओर (अभि) (आक्रमण के लिए) आने वाले । विनायकेन = नायक-विहीन । भवता = हुए । वृतोपचितबाहुना = चिता (वृत्त) के समीप रखे हुए बाहु वाले (अर्थात् मृतप्राय) । स्वमित्रोद्धा = धनों और मित्रों से रहित । शत्रुणा = शत्रुदल द्वारा । पृथ्वी = भारी । यमतुला = यमराज की तुला । आश्रिता = आश्रय बनायी गयी ।

अनुवाद— (हे राजन्) गोल और पुष्ट भुजाओं वाले, अपने मित्रों के उद्धारक (अथवा सुष्ठुरूपेण शत्रुओं को विनष्ट करने वाले), अनुपम और प्रजा को विनमित करने वाले (प्रजा के शासक) आपके द्वारा यह पृथ्वी भय से रहित हो गयी । (दूसरी ओर) आपकी ओर (आक्रमण के लिए) आने वाले, नायकविहीन हुए, चिता के समीप रखी गयी भुजाओं वाली (अर्थात् (मृतप्राय) और धन तथा मित्र से रहित

शत्रुदल द्वारा यमराज की भारी तुला (तराजू, का आश्रय लिया गया।

संस्कृतव्याख्या— श्लोकाभ्यासं निदर्शयत्यत्र- **विनायकेनेति**। **वृत्तोपचितबाहुना** वृत्तौ वर्तुलाकारौ उपचितौ पुष्ठौ पीनौ वा बाहू यस्य तादृशेन **स्वमित्रोद्धारिणा** स्वमित्राणाम् उद्धारिणा उद्धारकेन अथवा सुष्ठुरूपेण अमित्राणां शत्रूणाम् उद्धारिणा उन्मूलकेन **अतुलाश्रिता** अनुपमेन **विनायकेन** प्रजानां विनेत्रा शासकेन वा **भवता** राज्ञा **इयम्** एषा **पृथ्वी** धरा अभीता भयरहिता जाता। अथ च **अभीता** अभि भवतः सम्मुखं युद्धाय इता आगच्छता **विनायकेन** नायकविहीनेन **भवता** सता **वृतोपचितबाहुना** वृत्तौ सञ्जातौ उपचितं चितासमीपे बाहू यस्य तादृशेन मृतप्रायेण **स्वमित्रोद्धा** स्वं धनं मित्राणि च। विहीनेन **शत्रुणा** शत्रुदलेन **पृथ्वी** महती **यमतुला** यमराजस्य तुला परिमाणयन्त्रम् **आश्रिता** आरूढा। भवतः शत्रुदलं यमगृहं प्राप्नोद् इति भावः। अत्र युक्तार्थं समानरूपं श्लोकद्वयं विद्यते अत एव **श्लोकाभ्यासः**।

विशेष—

(१) प्रस्तुत दोनों श्लोकों में से प्रथम श्लोक की द्वितीय श्लोक में पूर्णतः वर्णसमूहावृत्ति हुई है और दोनों का अर्थ परस्पर सम्बद्ध है। अतः यहां श्लोकाभ्यास यमक है।

(२) यहाँ कवि ने राजा के अमित तेज का वर्णन किया है। दोनों श्लोक वर्णसमूह की दृष्टि से समान हैं किन्तु दोनों के अर्थ में भेद होते हुए भी दोनों युक्तार्थ वाले है।

(महायमकविवेचनम्)

एकाकार[1]चतुष्पादं तन्महायमकाह्वयम्।
तत्रापि[2] दृश्यतेऽभ्यासः सा परा यमकक्रिया ।।७०।।

अन्वय— एकाकारचतुष्पादं तत् महायमकाह्वयम्। तत्र अपि अभ्यासः दृश्यते। (एवं) परा यमकक्रिया (वर्तते)।

शब्दार्थ— एकाकारचतुष्पादं = समान आकार वाले चार पादों से युक्त। तत् = वह (यमक)। महायमकाह्वयं = महायमक नामक (यमक) (कहलाता है)। तत्र अपि = वहाँ भी, उस (यमक) में भी। अभ्यासः = आवृत्ति। दृश्यते = दृष्टिगोचर होती है। परा = सर्वोत्कृष्ट। यमकक्रिया = यमक का प्रयोग (अथवा यमक का प्रभेद) है।

---

(१) एकाकारं, एकाक्षर-।

(२) तस्यापि।

अनुवाद— समान आकार वाले चार पादों से युक्त वह (यमक) महायमक नामक (यमक कहलाता है); उस (यमक) में भी कहीं कहीं (पादों के मध्य में) आवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। (यह) सर्वोत्कृष्ट यमक का प्रयोग (अथवा प्रभेद) है।

संस्कृतव्याख्या— महायमकं विवेचयत्यत्र- **एकाकारेति**। **एकाकारचतुष्पादम्** एकाकाराः समानरूपाः चत्वारः पादाः यस्य तादृशं समानपादचतुष्टयं **तत्** यमकं **महायमकाह्वयं** तन्नाम यमकं उच्यते। **तत्र अपि** तस्मिन्नपि महायमके क्वचिद् **अभ्यासः** वर्णसमूहावृत्तिः **दृश्यते** दृष्टिगोचरः भवति। तद् महायमकं **परा** सर्वोत्कृष्टः **यमकक्रिया** यमकस्य प्रयोगः भेदः वा अस्ति।

विशेष—

(१) जिस श्लोक के चारों पाद समान होते हैं, वह महायमक कहलाता है। इस प्रकार प्रथम पाद की तीन बार आवृत्ति से पूरा श्लोक बन जाता है। चारों पाद वर्णसमूह की दृष्टि से समान आकार वाले होते हैं।

(२) महायमक के समान रूप वाले पादों के आदि, मध्य इत्यादि स्थानों में वर्ण-समुदाय की आवृत्ति करके महायमक को सर्वोत्कृष्ट बनाया जा सकता है। इस प्रकार महायमक के दो प्रभेद होते हैं- (क) प्रथमपाद की तीन बार आवृत्ति करके बना सादा महायमक और (ख) आवृत्त होने वाले पाद के भी आदि मध्य इत्यादि में वर्णसमूह की आवृत्ति करके बना महायमक। यह द्वितीय प्रकार का महायमक सर्वोत्कृष्ट यमक होता है।

(३) प्रथम प्रकार के यमक का निदर्शन चतुष्पादाभ्यास का दिया गया उदाहरण ३.६६ है। द्वितीय प्रकार के महायमक का उदाहरण दिया जा रहा है।

(आवृत्तिगर्भितमहायमकनिदर्शनम्)

समानयास माऽनया समानयासमानया।
समानया समानया समान या समानया ।।७१।।

पदच्छेद— समानयास, मा, अनया, समानय असमानया। समानया समानया समान या स-मा-नया।

अन्वय— समानयास समान मा असमानया समानया समानया अनया समानय या स-मा-नया।

शब्दार्थ— समानयास = हे (सभी कार्यों में) समान रूप से प्रयत्न करने वाले। समान = हे समान (सम) प्राण (आन) वाले। मा = मुझको। असमानया = असमानता वाली, अद्वितीय, अनुपम। समानया = प्रणयकोप-युक्त। समानया =

सम्मानयोग्य। अनया = इस (प्रेयसी) से। समानय = मिला दो, संयोग करवा दो। या = जो। स-मा-नया = शोभा (लक्ष्मी, मा) और नीति (नय) से युक्त है।

अनुवाद— (सभी कार्यों) में समान रूप से प्रयत्न करने वाले और समान (अभिन्न) प्राण वाले (हे मित्र)! मुझको असमानता वाली (अनुपम), प्रणयकोपयुक्त और सम्माननीय इस (प्रेयसी) से मिला दो, जो शोभा (सुन्दरता) और नीति से सम्पन्न है।

संस्कृतव्याख्या— आवृत्तिगर्भितं महायमकं निदर्शयत्यत्र– **समानेति**। **समानयास** हे मम सर्वेषु कार्येषु समानरूपेण प्रयत्नशील **समान** समः तुल्यः आनः प्राणः यस्य तादृशः तत्सम्बुद्धौ हे समप्राण अभिन्नप्राणमित्र, **मा** माम् **असमानया** निरुपमया अद्वितीयया **सगानया** प्रणयकोपयुक्तया **समानया** सम्मानयोग्यया **अनया** मम प्रेयस्या **समानय** सङ्गमय, **या** मम प्रेयसी **समानया** मा लक्ष्मी शोभा नयः नीतिः ताभ्यां मानयाभ्यां सह वर्तते इति तादृशी शोभासम्पन्न नीतिमति च विद्यते। अत्र पादचतुष्टयस्य तत्खण्डानां च समानरूपेण आवृत्तिः अत एव आवृत्तिगर्भितं महायमयकम्।

विशेष—

(१) इस उदाहरण में प्रथमपाद की अव्यवहित आवृत्ति पद्य के अवशिष्ट तीनों पादों में हुई है अतः त्रिपादगतं प्रथमपादाभ्यास अव्यपेतयमक है। आवृत्त पाद के आठ अक्षरों में भी चार अक्षरों 'समानया' की अव्यवहित आवृत्ति हुई है। इस आवृत्ति के कारण यह साधारण महायमक से उत्कृष्ट आवृतिगर्भित महायमक है।

(२) पाद के आदि में स्थित 'समा' इस वर्णसमूह की पाद के मध्य में व्यवहित आवृत्ति हुई है तथा पाद के मध्य में स्थित 'नया' इस वर्णसमूह की पादान्त में अव्यवहित आवृत्ति हुई है। इस प्रकार सम्पूर्ण पद्य में व्यपेताव्यपेतयमक विद्यमान है। यह व्यपेताव्यपेतावृत्तिगर्भित यमक अत्युत्कृष्ट महायमक है।

(३) इस प्रकार के महायमक की रचना शब्दशिल्पी कवि के लिए एक दुष्कर चुनौती है। इस चुनौती का सरस उत्तर दण्डी ने इस पद्य द्वारा सफलता के साथ दिया है।

(४) इस पद्य में किसी नायक की मानकुपित नायिका के प्रति विप्रलम्भरति का चित्रण किया गया है। नायक ने उसे अत्यधिक प्रेम करने वाली अत एव विरह के कारण कृश किन्तु नायक के किसी अपराध से मान करके बैठी हुई प्रिया को मनाकर उससे मिलाने के लिए अपने किसी नर्मसचिव मित्र से प्रार्थना करता है।

(विजातीयमिश्रयमकनिदर्शनम्)

धराधराकारधरा धराभुजां भुजा महीं पातुमहीनविक्रमाः[१] ।
क्रमात्सहन्ते सहसा हतारयो रयोद्धुरा मानधुरावलम्बिनः ॥७२॥

अन्वय— धराधराकारधराः अहीनविक्रमाः सहसा हतारयः रयोद्धुराः मानधुरावलम्बिनः धराभुजां भुजाः क्रमात् महीं पातुं सहन्ते ।

शब्दार्थ— धराधराकारधराः = पृथ्वी को धारण करने वाले (शेषनाग, धराधर) के (समान अतिदीर्घ) आकार (स्वरूप) को धारण करने वाले)। अहीनविक्रमाः = पराक्रम (विक्रम) से अविहीन (अहीन) (अर्थात् अत्यधिक पराक्रम वाले)। सहसा = अचानक (अथवा आत्मशक्ति से)। हतारयः = शत्रुओं को मार डालने वाले, शत्रुओं को विनष्ट कर देने वाले। रयोद्धुरा = अत्यधिक वेगवान् (गतिमान्)। मानधुरावलबिनः = स्वाभिमान (अथवा सम्मान, मान) की धुरी (केन्द्रबिन्दु, धुरी) को धारण करने वाले (अर्थात् अत्यधिक स्वाभिमानी अथवा सम्मानित)। धराभुजां = पृथ्वी पालकों की, राजाओं की। भुजाः = भुजाएँ, बाहुयुगल। क्रमात् = क्रमानुसार। महीं = पृथ्वी की। पातुं = रक्षा करने के लिए। सहन्ते = समर्थ होती हैं।

अनुवाद— पृथ्वी को धारण करने वाले (शेषनाग) के (समान अतिदीर्घ) स्वरूप को धारण करने वाले, पराक्रम से अविहीन (अर्थात् अत्यधिक पराक्रम वाले), अचानक (अथवा अत्मशक्ति से) शत्रुओं को मार डालने (विनष्ट कर देने) वाले, अत्यधिक वेगवान् और स्वाभिमान (अथवा सम्मान) की धुरी को धारण करने वाले (अत्यधिकस्वाभिमानी अथवा सम्मानित) राजाओं की भुजाएँ (बाहुयुगल) क्रमानुसार पृथ्वी की रक्षा (पालन) करने के लिए समर्थ होती हैं।

संस्कृतव्याख्या— विजातीयं मिश्रयमकं निदर्शयत्यत्र- **धराधरेति** । **धराधराकारधराः** धरां पृथ्वीं धरयतीति धराधरः शेषनागः तस्य आकारं सादृश्यं धारयन्तीति धराधराकारधराः शेषाकृतिधारिणः **अहीनविक्रमाः** अहीनः अत्यधिकः विक्रमः पराक्रमः येषां तादृशाः अत्यधिकपराक्रमयुक्ताः, **सहसा** अकस्मात् आत्मबलेन वा **हतारयः** हताः विनष्टाः अरयः शत्रवः यैः तादृशाः विनष्टशत्रवः **रयोद्धुराः** अतिवेगवन्तः **मानधुरावलम्बिनः** स्वाभिमानभारधारिणः **धराभुजां** पृथ्वीपालकानां राज्ञां **भुजाः** बाहवः **क्रमात्** क्रमानुसारं **महीं** पृथ्वीं **पातुं** रक्षितुं **सहन्ते** समर्थाः भवन्ति । अत्र 'धरा' इत्यस्य वर्णसमूहस्य अव्यवधानेन आवृतिः प्रथमपादस्य आदौ मध्ये च द्विबारं विद्यते । प्रथमपादादौ विद्य-

---

(१) -विक्रमात् ।

मानस्य धराधरा इत्यस्य वर्णसमूहस्यापि व्यवहिता आवृत्तिः प्रथमपादस्य अन्ते च भवति। प्रथमपादान्तस्य 'भुजा' इत्यस्य वर्णसमूहस्य द्वितीयपादादौ, द्वितीयपादान्तस्य च 'क्रमा' इत्यस्य वर्णसमूहस्य तृतीयपादस्यादौ तथा च तृतीयपादान्तस्य 'रयो' इत्यस्य वर्णसमूहस्य अव्यवहितेनावृत्तिः विद्यते। एवमत्र सन्दष्टयमकम्। एवमेव तृतीयपादे 'सह' इत्यस्य चतुर्थेपादे च 'धुरा' इत्यस्य व्यवहितावृत्तिः एवं सम्पूर्णे पद्ये विजातीय-मिश्रयमकम् अस्ति।

विशेष—

(१) यहाँ 'धरा' इस वर्णसमूह की प्रथमपाद के आदि में और मध्य में दो बार अव्यवहित आवृत्ति हुई है तथा प्रथमपाद के आदि वाले 'धराधरा' इस वर्णसमूह की व्यवहित आवृत्ति प्रथमपाद के अन्त में हुई है। प्रथम पाद के अन्त में विद्यमान 'भुजा' इस वर्णसमूह की द्वितीय पाद के आदि में, द्वितीय पाद के आदि में विद्यमान 'क्रमा' की तृतीयपाद के आदि में तथा तृतीय पाद के अन्त में विद्यमान 'रयो' की चतुर्थपाद के आदि में अव्यहित आवृत्ति हुई है। इस प्रकार यहाँ सन्दष्टयमक है। इसी प्रकार तृतीयपाद में 'सह' की तथा चतुर्थपाद में 'धुरा' की व्यवहित आवृत्ति हुई है। पूरे पद्य में हुई आवृत्तियों के सजातीय न होने के कारण यहाँ विजातीयमिश्रयमक है।

(प्रतिलोमयमकविवेचनम्)

आवृतिः प्रतिलोम्येन पादार्धश्लोकगोचरा।
यमकं[1] प्रतिलोमत्वात् प्रतिलोममिति[2] स्मृतम् ॥७३॥

अन्वय— प्रतिलोम्येन पादार्धश्लोकगोचरा आवृतिः प्रतिलोमत्वात् प्रतिलोमम् इति यमकं स्मृतम्।

शब्दार्थ— प्रतिलोम्येन = विपरीत क्रम से। पादार्धश्लोकगोचरा = पाद, श्लोकार्ध अथवा श्लोक में दिखलायी पड़ने वाली (दृष्टिगोचर होने वाली)। आवृति = अभ्यास। प्रतिलोमत्वात् = प्रतिलोम (विपरीत) क्रमता के कारण। प्रतिलोमम् इति = प्रतिलोम नामक। यमकं = यमक। स्मृतं = कहलाता है।

अनुवाद— प्रतिलोम-क्रम (विपरीत-क्रम) से पाद, श्लोकार्ध अथवा श्लोक में दिखलायी पड़ने वाली आवृति (अभ्यास) विपरीत क्रमता के कारण प्रतिलोम नामक यमक कहलाता है।

---

(१) यमक-।

(२) -लोम्यमिदं।

संस्कृतव्याख्या— प्रतिलोमयमकं विवेचयत्यत्र– **आवृत्तिरिति** । **प्रतिलोम्येन** विपरीतक्रमेण **पादार्धश्लोकगोचरा** पादे श्लोकार्धे श्लोके वा गोचरा दृश्यमाना **आवृत्तिः** अभ्यासः **प्रतिलोमक्रमात्** विपरीतताक्रमेण अभ्यासेन **प्रतिलोमम् इति** प्रतिलोम-नामकं **यमकं स्मृतम्** कथितम् । एवं विपरीतयमकं त्रिधा– पादविषयं श्लोकार्धविषयं श्लोकविषयं चेति ।

विशेष—

(१) पूर्व में प्रतिपादित यमकों में वर्णोंसमूह की आवृत्ति अनुलोम क्रम से होती है, इस दृष्टि से पूर्वविवेचित सभी यमक के प्रभेद अनुलोमयमक हैं ।

(२) जब पद्य में वर्णसमुदाय की विपरीत क्रम से आवृत्ति की जाती है तो ऐसा यमक प्रतिलोमयमक कहलाता है ।

(३) प्रतिलोम क्रम से आवृत्ति पद्य के एक पाद, श्लोकार्ध (दो पादों) तथा सम्पूर्ण श्लोक अर्थात् चारों पादों में व्याप्त होती है । इस प्रकार प्रतिलोमयमक तीन प्रकार का होता है– पादप्रतिलोम, श्लोकार्धप्रतिलोम तथा श्लोकप्रतिलोम ।

(४) वस्तुतः यमक के भेद प्रतिलोमयमक में पूर्वानुभवसंस्कारबोधिनी सरूपता का अभाव होता है । अतः इसे यमक न मानकर चित्रालङ्कार तथा भोज (सरस्वती ०२.१०९ उदाहरण २९९-३०२) ने भी इसे गतिनियममूलक चित्र-काव्य के रूप में चित्रकाव्य के अन्तर्गत समाहित किया है ।

(५) जिस प्रतिलोम आवृत्ति से किसी प्रकार का चित्रबन्ध बन जाता है उसे चित्र कहा जाता है । दण्डी ने प्रतिलोमपठित काव्य को चित्राकार-बन्ध में निष्पन्न न होने के कारण इसे चित्रबन्ध के अन्तर्गत नहीं समाहित किया है प्रत्युत प्रतिलोम आवृत्ति के कारण यमक ही कहा है ।

(पादप्रतिलोमयमकनिदर्शनम्)

याऽमताश कृतायासा सायाता कृशता मया ।
रमणारक्तता तेऽस्तु स्तुतेताकरणामर ।।७४।।

अन्वय— अमताश, या कृशता कृतायासा सा मया याता, स्तुतेत अकरणामर रमण, ते आरकता अस्तु ।

शब्दार्थ— अमताश = हे अनुचित अभिलाषा रखने वाले (प्रिय) । या = जो । कृशता = क्षीणता । कृतायासा = उत्पन्न (कृत) क्लेश (कृशता, अयास) वाली, क्लेश (कृशता) उत्पन्न करने वाली (है) । सा = वह । मया = मेरे द्वारा । याता = प्राप्त कर ली गयी है । स्तुतेन = हे स्तुति-परिभ्रष्ट, हे स्तुति (प्रशंसा) न किये जाने

योग्य, हे निन्दित आचरण वाले। अकरणामर = हे अकृत्य (अकरण) करने में देवसदृश (उच्छृङ्खल)। रमण = हे रमण करने वाले (प्रिय)। ते = तुम्हारा। अकारता = गमन, चला जाना। अस्तु = होना चाहिए।

अनुवाद— हे (परस्त्रीगमनविषयक) अनुचित अभिलाषा रखने वाले (प्रिय), जो (विरह के कारण) कृशता क्लेश उत्पन्न करने वाली है, वह (कृशता) मेरे द्वारा प्राप्त कर ली गयी है। निन्दित आचरण वाले तथा (परस्त्रीगमनरूप) अकृत्य करने में देवसदृश (उच्छृङ्खल) हे रमण करने वाले (प्रिय), अब तुम्हारा (यहाँ से) गमन होना चाहिए (अर्थात् यहाँ से चले जाओ)।

संस्कृतव्याख्या— पादप्रतिलोमयमकं निदर्शयत्यत्र- **याऽमताशेति**। अमताशा अमते अकृत्ये परस्त्रीगमने आशा अभिलाषः यस्य तादृशः तत्सम्बुद्धौ हे अनुचितकामेच्छुक, **या कृशता** क्षीणता **कृतायासा** कृतः जनितः आयासः दुःख यया तादृशी समुत्पादितक्लेशा क्लेशप्रदायिनी वर्तते **सा** कृशता **मया** विरहिण्या **याता** गता प्राप्ता वा। **स्तुतेत** स्तुतात् प्रशंसातः इतः प्रतिभ्रष्टः अप्रशंसायोग्यः तत्सम्बुद्धौ हे निन्दिताचरित, **अकरणामर** अकरणे परस्त्रीगमनरूपे दुष्कृत्ये अमरः देवसदृशः उच्छृङ्खल तत्सम्बुद्धौ हे दुष्कर्मदेव, **रमण** हे प्रिय, **ते** तव इतः **आकरता** गमनम् **अस्तु** भवतु त्वमितः गच्छ इत्यर्थः। अत्र प्रथमपादे क्रमेण पठितानां वर्णानां द्वितीयपादे तथा च तृतीयपादे क्रमेण पठितानां वर्णानां चतुर्थपादे च विपरीतक्रमेण आवृत्तिः अत एव पादप्रयुक्तवर्णानाम् उत्तरे पादे प्रतिलोमक्रमेण पठनात् पादप्रतिलोमयमकम्।

विशेष—

(१) इस श्लोक के प्रथमपाद में क्रम से पठित वर्णों की द्वितीयपाद में तथा तृतीयपाद में क्रम से पठित वर्णों की चतुर्थपाद में विपरीत क्रम से आवृत्ति हुई है अतः यहाँ पाद में क्रम से पठित वर्णों की अगलेपाद में विपरीतक्रम से आवृत्ति होने के कारण यहाँ पादप्रतिलोमयमक है।

(२) इस दुष्कर प्रतिलोम यमक में विप्रलम्भ रति का वर्णन किया गया है। विरहिणी नायिका वियोजन्य कष्टकारक कृशता को प्राप्त हो गयी है फिर भी परस्त्रीगमनरूप अपराध करने वाले प्रिय को वहाँ से हट जाने और स्वेच्छानुसार कार्य करने का आग्रह करती है।

(श्लोकार्धप्रतिलोमयमकनिदर्शनम्)

नादिनोऽमदना[१] धीः[२] स्वा न मे काचन कामिता।
तामिका न च कामेन स्वाधीना दमनोदिना[३] ॥७५॥

(१) दमना। (२) मदनाधी। (३) मदनोदिना।

अन्वय— नादिनः मे स्वा धीः अमदना, काचन कामिता न, न च दमनोदिना कामेन स्वाधीना तामिका (अस्ति)।

शब्दार्थ— नादिनः = नाद (नामक ब्रह्म) के ध्यान निमग्न। मे = मेरी। धीः = बुद्धि। अमदना = कामविकाररहित। काचन = कोई। कामिता = कामाभिलाषा विषयाभिलाषा। न = नहीं है। न च = और न तो। दमनोदिना = असंयमित करने वाले। कामेन = कामदेव द्वारा अथवा अभिलाषा द्वारा। स्वाधीना = अपने अधीन करने वाला। तामिका = ग्लानि का भाव है।

अनुवाद— नाद (नामक ब्रह्म) के ध्यान में निमग्न मेरी बुद्धि कामविचार से रहित है, (मेरी) कोई विषयाभिलाषा नहीं है और न तो असंयमित करने वाले कामदेव (अथवा अभिलाषा) द्वारा अपने अधीन करने वाली ग्लानि है।

संस्कृतव्याख्या— श्लोकार्धप्रतिलोमयमकं निदर्शयत्यत्र- **नादिन इति**। **नादिनः** नादाख्यं ब्रह्म अस्यास्तीति नादी तस्य नादाख्यब्रह्मणि ध्याननिमग्नस्य **मे** मम **स्वा** स्वकीया **धीः** बुद्धिः **अमदना** कामविकाररहिता **काचन कामिता** विषयेच्छा न विद्यते; **न च** मम **दमनोदिना** असंयमितकारिणा **कामेन** मदनेन **स्वाधीना** स्वः आत्मा अधीनः आयतः यस्याः तादृशी स्ववशकृतात्मा **तामिका** ग्लानिः विद्यते। नादब्रह्मध्याननिरतोऽहं कामबुद्धिना विषयाभिलाषेण कामजनितग्लान्या विहीनोऽस्मीति भावः। अत्र श्लोकस्य पूर्वार्धस्य परार्धे वैपरीत्येनावृत्या श्लोकार्धप्रतिलोमयमकम्।

विशेष—

(१) यहाँ श्लोक के पूवार्ध के वर्णसमूह की परार्ध में विपरीतक्रम से आवृत्ति होने के कारण श्लोकार्ध प्रतिलोमयमक है। श्लोक के पूर्वार्ध को विपरीत क्रम से पढ़ने पर श्लोक का परार्ध बन जाता है।

(२) इस श्लोक में प्रणवनादोयासी शैवयोगी के आत्मतोष का वर्णन किया गया है।

(३) नाड़ियों के प्राणायाम द्वारा शोधित हो जाने पर अनाहत कमल से उठने वाला स्वात्मानुभूतिविषयक नाद नादब्रह्म कहलाता है।

(श्लोकप्रतिलोमयमकनिदर्शनम्)

यानमानय माराविकशोनानजनासना[1] ।
यामुदारशताधीनामायामायमनादि सा ॥७६॥
सा दिनामयमायामा नाधीता शरदामुया ।
नासना[2]जनना शोकविरामायनमानया ॥७७॥

(१) -नाशना।　(२) नाशना-।

पदच्छेद— यानम् आनय, माराविकशा ऊनानजनानसा। याम् उदारशताधीनाम् आयाम् आयम् अनादि सा ॥ सा दिनामयमायाना न आधीता शरदा अमुया। ना (न, आ) सनाजनना शोकविरामा अयनमानया।

अन्वय— यानम् आनय, उदारशताधीनां याम् आयाम् सा माराविकशा ऊनानजनासना आयम् अनादि। अमुया शरदा आधीता दिनामयमायामा ना सनाजनना अयनमानया सा शोकविरामा न (अस्ति)।

शब्दार्थ— यानं = वाहन को। आनय = ले आओ। उदारशताधीनां = सैकड़ों उदार लोगों को (अपने) वश में करने वाली। यां = जिस (गणिका) को। आयाम् = प्राप्त किया है, अपने वश में किया है। सा = वह (गणिका)। माराविकशा = कामदेव (मार) रूपी भेड़ (अवि) के लिए चाबुक (कश) के समान अर्थात् कामी लोगों के कामभाव को प्रेरित (उद्दीप्त, प्रोत्साहित) करने वाली। ऊनानजनासना = (धन से) विहीन (ऊन) प्राण (आन) वाले लोगों (जन) को (धनविहीन लोगों को) निरास (बहिष्कृत, असन) करने वाली। आयम् = आगमन को, आने को। अनादि = कह दी गयी है। अमुया = इस (उपस्थित)। शरदा = शरद ऋतु के द्वारा। आधीता = मनोव्याथा (मनोपीड़ा, आदि) को प्राप्त (गयी हुई, इत)। दिनामयमायामा = दिन में रोग (आमय) के बहाने (माया) को प्राप्त, दिन में रोग का बहाना बनाये हुई। नासनाजनना = (एक) स्थान (आसन) पर न रहने वाली। अयनमानया = (मेरे) जाने (अयन) का सम्मान (मान) करने वाली। सा = वह (गणिका)। शोकविरामा = (मेरे विरह के) दुःख (शोक) के अवसान (विराम) वाली। न = नहीं है।

अनुवाद— (हे मित्र), तुम वाहन (गाड़ी) ले आओ (क्योंकि) (धन व्यय करने में) सैकड़ों उदार (धनी) लोगों को अपने वश में करने वाली जिस (गणिका) को (मैंने) प्राप्त किया गया है (वश में किया गया है) वह कामदेव रूपी भेंड़ के लिए चाबुक के समान (अर्थात् कामी लोगों के कामभाव को उद्दीप्त करने वाली) और धन से विहीन (निर्धन) लोगों को निरास (बहिष्कृत) करने वाली (मेरे द्वारा) आने को कह दी गयी है तथा इस (उपस्थित) शरद् ऋतु के द्वारा मनोव्यथा (कामपीड़ा) को प्राप्त, दिन में रोग के बहाने को प्राप्त (अर्थात् दिन में रोगी होने का बहाना बनाये हुई), एक स्थान पर (स्थिर) न रहने वाली और मेरे जाने का सम्मान करने वाली वह (गणिका) (मेरे विरह के दुःख के अवसान वाली नहीं है (अर्थात् वह मेरे विरहपीड़ा से सन्तप्त है)।

संस्कृव्याख्या— श्लोकप्रतिलोमयमकं निदर्शयत्यत्र– **यानमिति**। हे मित्र, यानं वाहनम् **आनय**, (यतो हि) **उदारशताधीनां** धनव्यये उदाराणाम् उदारमनसां शतं जनं

आधीनं परतन्त्रं यस्याः तादृशीं स्ववशीकृतधनसम्पन्नपुरुषशतां **यां** गणिकां अहं **आयाम्** प्राप्तवान् स्ववशीकृतवान् वा **सा** गणिका **माराविकशा** मारः कामदेवः एव अविः मेषः तस्य कशा ताडिनी प्रेरिका कामिजनोन्मादिनी तथा च **ऊनानजनासना** ऊनः धनेन हीनः आनः प्राणः येषां तादृशान् जनान् पुरुषान् अस्यति निरस्यति बहिष्करोति वा तादृशी निर्धनजनपरित्यागिनी मया **आयम्** आगमनम् **अनादि** सूचिता। तथा च **अमुया** आगतया **शरदा** शरत्कालेन **आधीता** मम विरहाद् आधिं मनोव्यथाम् इता प्राप्ता अस्मात्कारणाद् **दिनामयमायाना** दिने आमयस्य रोगस्य मायां व्याजं अमति यातीति तादृशी दिने रोगव्याजमुपेता **नासनाजनना** न आसनायाः स्थितेः जननं विधानं यस्याः तादृशी निरन्तरचञ्चलायमाना **अयनमानया** अयनस्य मद्गमनस्य मानं सम्मानं यातीति तादृशी मम गमनमार्गं दृश्यमाना **सा** गणिका अपि **शोकविरामा** शोकस्य मम विरहव्यथायाः विरामः अवसानं यस्याः तादृशी विरहदुःखविहीना **न** विद्यते। सापि मम विरहदुःखेन पीडिता एव वर्तते। श्लोकयुग्मकेऽस्मिन् पूर्वस्य श्लोकस्य क्रमेण प्रयुक्तस्य वर्णसमूहस्य द्वितीये श्लोके वैपरीत्येनावृत्तिः अत एव श्लोकप्रतिलोमयमकम्।

विशेष—

(१) इस श्लोकयुग्म में प्रथम श्लोक की जिस अनुलोम क्रम से रचना हुई है उन सम्पूर्ण वर्णसमूह को द्वितीय श्लोक में विपरीत क्रम से ग्रहण किया गया है अतः यह श्लोकप्रतिलोमयमक है। प्रथम श्लोक को विपरीत क्रम से पढ़ने पर द्वितीय श्लोक बन जाता है।

(चित्रालङ्कारनिरूपणम्)

(तत्र गोमूत्रिकाविधानम्)

वर्णानामेकरूपत्वं यत्त्वेका[१]न्तरमर्धयोः।
गोमूत्रिकेति तत्[२] प्राहुर्दुष्करं तद्विदो यथा ॥७८॥

अन्वय— अर्धयोः वर्णानाम् यत् तु एकान्तरम् एकरूपत्वं तत् तद्विदः दुष्करं गोमूत्रिका इति प्राहुः।

शब्दार्थ— अर्धयोः = (श्लोक के) पूर्वार्ध तथा परार्ध में। वर्णानां = वर्णों की। यत् तु = जो कि। एकान्तरं = एकवर्ण के व्यवधान से। एकरूपत्वं = एकरूपता, समानता है। तत् = उस। दुष्करं = दुष्कर (पद्यबन्ध) को। तद्विदः = उस

---

(१) यद्येका-।

(२) तं।

(चित्रकाव्य) के ज्ञाता। गोमूत्रिका इति = गोमूत्रिका इस नाम से। प्राहुः = अभिहित करते हैं।

अनुवाद— (श्लोक के) पूर्वार्ध तथा परार्थ में वर्णों की जो एकवर्ण के व्यवधान से समानरूपता होती है, उस दुष्कर (पद्यबन्ध) को उस (चित्रकाव्य) के ज्ञाता गोमूत्रिका नाम से अभिहित करते हैं।

संस्कृतव्याख्या— यमकप्रभेदान् निरूप्य चित्रालङ्कारं निरूपयन् तत्र गोमूत्रिकां विवेचयत्यत्र- **वर्णानामिति**। **अर्धयोः** श्लोकस्य पूर्वाधे पराधें च **वर्णानां** यत् **एकान्तरम्** एकवर्णव्यवहितम् **एकरूपत्वं** समानरूपता **तत्** तादृशं **दुष्करं** दुःसाध्यं पद्यविरचनं **तद्विदः** तस्य चित्रकाव्यस्य विदः वेत्तारः **गोमूत्रिका इति** प्राहुः कथयन्ति। गोर्मूत्राकारत्वाद् गोमूत्रिका इति फलितः।

विशेष—

(१) आकार वैचित्र्य वाली पद्यरचना को चित्रबन्ध या चित्रालङ्कार कहा जाता है। गोमूत्रिका, अर्धभ्रम, सर्वतोभद्र तथा स्वरस्थानवर्णनियम को चित्रबन्ध या चित्रालङ्कार माना जाता है किन्तु दण्डी ने इस विषय में कोई निर्देश नहीं दिया है।

(२) श्लोक के पूर्वार्ध और परार्ध में आये वर्णों की एक-एक वर्ण के व्यवधान से जो समान-रूपता है वह गोमूत्रिका कहलाती है अर्थात् इस बन्ध के पूर्वार्ध तथा परार्ध के विषम प्रथम, तृतीय, पञ्चम, सप्तम इत्यादि वर्ण समान होते हैं। इस प्रकार श्लोक के पूर्वार्ध तथा परार्ध को ऊपर-नीचे लिखने पर दोनों में आये एक-एक वर्ण के व्यवधान से होने वाली समानता गोमूत्रिका है। चित्ररूप में लिखित यह बन्ध बैल के मूत्र की धारा के समान आकृति वाला बन जाने के कारण यह गोमूत्रिका कहलाता है।

(गोमूत्रिकानिदर्शनम्)

मदनो मदिराक्षीणामपाङ्गास्त्रो[१] जयेदयम्।
मदेनो यदि तत्[२] क्षीणमनङ्गायाञ्जलिं दधे[३] ॥७९॥

अन्वय— यदि मदिराक्षीणाम् अपाङ्गास्त्रः अयम् मदनः जयेत् तत् मदेनः क्षीणं (भवेत्) अनङ्गाय अञ्जलिं दधे।

---

(१) -स्त्रं।

(२) च।

(३) ददे।

शब्दार्थ— मदिराक्षीणां = मादक नयनों वाली (रमणियों) के। अपाङ्गास्त्रः = कटाक्षपात्-रूप अस्त्रों से युक्त, कटाक्षणतरूपी अस्त्र हैं जिसके ऐसा। अयम् = यह। मदनः = कामदेव। यदि = यदि। जयेत् = जीत ले। तत् = तो। मदेनः = मेरा पाप (एन)। क्षीणं = समाप्त, विनष्ट। अनङ्गाय = कामदेव के लिए। अञ्जलिं = प्रणामाञ्जलि। दधे = धारण करूँ, जोड़ लूँ, बना हूँ।

अनुवाद— यदि मादक नयनों वाली (रमणियों) के कटाक्षपातरूपी अस्त्र वाला यह कामदेव (मुझे) जीत ले तो (मेरा) पाप समाप्त हो जाय (अर्थात् मैं कृतकृत्य हो जाऊँ और 'कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए) मैं (अपनी) कामदेव के लिए प्रणामाञ्जलि को धारण करूँ।

संस्कृतव्याख्या— गोमूत्रिकाबन्धं निदर्शयत्यत्र- **मदन इति**। **यदि** चेत् **मदिराक्षीणां** मादकनयनीनां **अपाङ्गास्त्रः** अपाङ्गः कटाक्षपात् एव अस्त्रं यस्य तादृशः **अयम्** एषः **मदनः** कामदेवः **जयेत्** मां प्रहरेत् **तत्** तेन कारणेन **मदेनः** मम एनः पापं **क्षीणं** विनष्टं भवेत्। ततः पूर्णकामोऽहं कामदेवं प्रति कृतज्ञताज्ञापनाय **अञ्जलिं** प्रणामाञ्जलिं **दधे** करोमि। अत्र ऊर्ध्वाधः क्रमेण द्वाभ्यां श्लोकार्धाभ्यां लिखितयोः पूर्वार्धपरार्धयोः वर्णानाम् एकवर्णव्यवहितं समानत्वं विद्यते अत एवायं गोमूत्रिकाबन्धः।

विशेष—

(१) प्रस्तुत श्लोक के पूवार्ध और परार्ध में एक वर्ण से व्यवहित वर्ण में समानता है अतः यह गोमूत्रिकाबन्ध है। इस श्लोक को इस चित्र द्वारा सरलता से समझा जा सकता है—

(२) इस श्लोक में मादकनयनों वाली किसी रमणी के कक्षपात् रूपी बाणों से आहत किसी युवा के विप्रलम्भरति का वर्णन किया गया है। वह युवा रमणीं के कटाक्ष को कामदेव का अस्त्र समझता है और उस अलौकिक अस्त्र से अपने उस पाप को नष्ट करने के लिए कामदेव से प्रार्थना कर रहा है जिसके कारण उसका उस रमणी के समागम नहीं हो पा रहा है।

(अर्धभ्रमसर्वतोभद्रबन्धयोर्निरूपणम्)

प्राहुरर्धभ्रमं नाम श्लोकार्धभ्रमणं यदि ।
तदिष्टं सर्वतोभद्रं भ्रमणं यदि सर्वतः ।।८०।।

अन्वय— यदि श्लोकार्धभ्रमणं (तत्) अर्धभ्रमं नाम प्राहुः यदि सर्वतः भ्रमणं तत् सर्वतोभद्रम् इष्टम् ।

शब्दार्थ— यदि = यदि । श्लोकार्धभ्रमणं = श्लोक का आधे (अनुलोम मार्ग से भ्रमण (द्वारा पादनिष्पादन) हो । अर्धभ्रमं नाम = अर्धभ्रम नामक (चित्रबन्ध) प्राहुः = कहा जाता है । यदि = यदि । सर्वतः = सम्पूर्ण (श्लोक) का । भ्रमणं = (अनुलोम प्रतिलोम मार्ग से) भ्रमण हो । तत् = वह । सर्वतोभद्रं = सर्वतोभद्र (नामक चित्रबन्ध) । इष्टं = अभीष्ट है, होता है, कहलाता है ।

अनुवाद— यदि श्लोक का आधे (अनुलोममार्ग) से भ्रमण (होता है) तो (वह) अर्धभ्रम (बन्ध) कहलाता है और यदि सम्पूर्ण (श्लोक) का (अनुलोमप्रतिलोम मार्ग से) भ्रमण (होता है) तो सर्वतोभद्र (बन्ध) कहलाता है ।

संस्कृतव्याख्या— अर्धभ्रमकाव्यबन्धं सर्वतोभद्रकात्यबन्धं च निरूपयत्यत्र-**प्राहुरिति** । **यदि** चेत् **श्लोकार्धभ्रमणं** श्लोकस्य पद्यस्य अर्धेन अर्धमार्गेण अनुलोमेन भ्रमणं, भ्रमणेन च पादनिष्पत्ति भवतीत्यर्थः तद् **अर्धभ्रमं** अर्धभ्रमचित्रबन्धम् उच्यते। यदि श्लोकस्य सर्वतः अनुलोमप्रतिलोमाभ्यां मार्गाभ्यां भ्रमणं तत् **सर्वतोभद्रं** सर्वतोभद्रचित्रबन्धम् **इष्टम्** अभीष्टम् अभिहितं वा । बन्धद्वयमिदं प्रायेण अष्टवर्णवृत्तपाद-घटितम् । अनयोः बन्धयोः भ्रमविधिस्तु तयोः चित्राभ्यामेव ज्ञातव्यः ।

विशेष—

(१) यदि पद्य के आधे भाग का अनुलोममार्ग से भ्रमण द्वारा पादनिष्पादन किया जाता है तो वह अर्धभ्रम कहलाता है ।
(२) पद्य का सब ओर से अनुलोम तथा प्रतिलोम मार्ग से निष्पन्न पाद वाला भ्रमण सर्वतोभद्र कहलाता है ।
(३) इस अर्धभ्रम और सर्वतोभद्र का बोध उनके उदाहरणों के रेखाचित्र द्वारा सुगमता से हो जाएगा ।

(अर्धभ्रमनिदर्शनम्)

मनोभव तवानीकं नोदयाय न मानिनी ।
भयादमेयामा मा वा वयमेनोमया नत ।।८१।।

अन्वय— नत मनोभव, तव अनीकं मानिनी न उदयाय न, वयम् एनोमयाः मा वा, भयात् अमेयामाः (स्मः)।

शब्दार्थ— नत = हे कामिजनों को झुकाने वाले, हे (कामिजनों द्वारा) नमस्कार (अभिवादन) किये जाने वाले। मनोभवः = हे कामदेव। तव = तुम्हारी। अनीकं = सैन्यभूता। मानिनी = मान करने वाली (रमणी)। उदयाय = (विजयरूपी) अभ्युदय के लिए, कामवृद्धि के लिए। न = (समर्थ) नहीं है। न = (ऐसी बात) नहीं है। वयम् = हम। एनोमयाः = पापयुक्त, अपराधयुक्त। मा वा = नहीं हैं। भयात् = भय के कारण। अमेयामाः = अपरिमित (अत्यधिक, अमेय) पीड़ा (व्यथा, याम) से सम्पन्न है।

अनुवाद— हे (कामीजनों को) झुकाने वाले कामदेव, तुम्हारी सैन्यभूता यह मान करने वाली (रमणी) तुम्हारे (विजयरूपी) अभ्युदय (कामवृद्धि) के लिए (समर्थ) नहीं है (ऐसी बात) नहीं है (अर्थात् अवश्य ही समर्थ है)। हम (अन्य स्त्रीगमन-रूप) अपराध से युक्त नहीं है किन्तु (आप के सैन्यभूत रमणी से) भय के कारण अपरिमित पीड़ा (व्यथा) से सम्पन्न (अवश्य) है।

संस्कृतव्याख्या— अर्धभ्रमबन्धं निदर्शयत्यत्र— **मनोभवेति**। **नत** हे कामिजनैः नमस्कृत **मनोभव** कामदेव, **तव** कामदेवस्य **अनीकं** सैन्यभूतम् एषा **मानिनी** प्रणय-कुपिता रमणी तव **उदयाय** विजयरूपाय अभ्युदयाय कामवर्द्धनाय इत्यर्थः **न** समर्था इति न अर्थात् निश्चितरूपेण समर्था अस्ति। **वयम् एनोमयाः** परस्त्रीगमनरूपापराधयुक्ताः मा वा भवामः परञ्च **भयात्** तव सैन्यभूतायाः मानिन्याः प्रणयकोपस्य भयेन **अमेयायाः** अमेयः अपरिमितः यामः पीड़ा येषां तादृशाः अपरिमेयव्यथासम्पन्नाः स्मः। अत्र श्लोकस्यार्धमार्गेणानुलोमेन भ्रमणात्पादनिष्पत्तिः अत एव अर्धभ्रमो नामचित्रबन्धः।

विशेष—

(१) यहाँ किसी प्रेमी की विप्रलम्भ रति का वर्णन उसके द्वारा कामदेव को उलाहना दिलाकर किया गया है। कामदेव की मानिनी सुन्दरी रूपी सेना बड़ी हठीली है। वह जिसे पराजित करना चाहे उसे पराजित किये विना नहीं रह सकती। हमेशा इस कार्य में सफल होने के कारण उसे अत्यधिक गर्व है। इस प्रकार यह सेना कामदेव की वृद्धि न करे यह असम्भव है। वह मुझसे रूठी हुई है। यह हमारा अपराध ही है कि हम उस सेना के भय से प्रणय-व्यथा से जकड़े हुए है।

(२) यहाँ श्लोक की आधे अनुलोम मार्ग से भ्रमण द्वारा पादनिष्पादन होने के कारण अर्धभ्रम है। इस अर्धभ्रमचित्रबन्ध को इस रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा रहा है—

म	नो	भ	व	त	वा	नी	कं
नो	द	या	य	न	मा	नि	नी
भ	या	द	मे	या	मा	मा	वा
व	य	मे	नो	म	यः	न	त
त	न	यः	म	नो	मे	य	व
वा	मा	मा	या	मे	द	या	भ
नी	नि	मा	न	य	या	द	नो
कं	नी	वा	त	व	भ	नो	म

(३) यह पादनिष्पादन वस्तुतः वर्णविन्यास के क्रमविशेष से होता है। इसमें वर्ण-सन्निवेश इस प्रकार किया जाता है कि पाद के आठ अक्षरों के लिए आठ कोष्ठ वाली आठ पंक्तियाँ बनाकर उसमें चारो चरण सीधे लिखा जाता है और अन्तिम चार में वे ही चरण विपरीत चतुर्थ तृतीय द्वितीय और प्रथम– इस क्रम से लिखे जाते हैं। इसमें पादोद्धार करने के लिए बाँये से दाहिने अथवा ऊपर से नीचे की ओर पढ़ा जाता है किन्तु दोनों स्थितियों में इसके केवल आधे पाद निष्पन्न होते हैं। सम्पूर्ण चित्र को भी उल्टा करके उसी क्रम में पढ़ने पर पादोद्धार किया जा सकता है।

(४) किरातार्जुनीय १५.२७ और शिशुपालवध १९.७२ भी अर्धभ्रम चित्रबन्ध का उदाहरण है।

(सर्वतोभद्रनिदर्शनम्)

सामायामामाया मासा मारानायायाना रामा ।
यानावारारावानाया मायारामा मारायामा ॥८२॥

पदच्छेद— सा अमायामा अमा अया मासा मारानायायाना रामा। यानावारारावानाया मायारामा माराय अमा।

अन्वय— अमायामा मारानायायाना यानावारारावानाया मायारामा सा अमा रामा अया मासा अमा अया माराय (अस्ति)।

शब्दार्थ— अमायामा = निर्व्याज (व्याजरहित, अमाय) कामपीडा (आम) से सन्तप्त। मारानायायाना = काम (मार) को लाने (उत्पन्न करने) वाले आगमन (आयान) से युक्त, कामोत्पादक (रागोत्पादक) आगमन वाली, काम को उत्पन्न करने

वाला है, आगमन जिसका ऐसी। यानावारारावानाया = गमन के साधन (पैर, यान) को आवृत्त करने (लपेटने) वाले (आवार) अर्थात् नुपूर की ध्वनि (आराव) रूपी जाल (आनाय) से युक्त, गमन के साधन (पैर) को लपेटने वाले (नूपुर) की ध्वनिरूपी पाश है जिसके ऐसी अर्थात् गमन के साधन (पैरों) को आवृत्त करने वाले (नुपूरों) की ध्वनि रूपी पाश से युक्त (बाध लेने वाली)। मायारामा = व्यामोह (माया) है क्रीडास्थान (आराम) जिसका ऐसी, व्यामोहित करने में आनन्द प्राप्त करने वाली। सा = वह। अमा = अनुपम। रामा = रमणी। अया = निरन्तर विद्यमान। अमा = माप (म) से रहित, विस्तृत। मासा = चन्द्रमा (राजा, मा) के साथ। माराय = वध (कामपीडित) करने के लिए (तत्पर है)।

अनुवाद— निर्व्याज (व्याजरहित) कामपीड़ा से सन्तप्त, काम को उत्पन्न करने वाले आगमन वाली (कामोत्पादक), गमन के साधन पैर को आवृत्त करने वाले (नुपूर) का ध्वनि रूपी पाश वाली (अर्थात् बाँध लेने वाली) और व्यामोहित करने में आनन्द प्राप्त करने वाली वह अनुपम रमणी निरन्तर विद्यमान और विस्तृत चन्द्रमा के साथ वध (कामपीड़ित) करने के लिए (तत्पर है)।

संस्कृतव्याख्या— सर्वतोभद्रचित्रकाव्यं निदर्शयत्यत्र- **सेति**। **अमायामा** अमायः व्याजरहितः आमः कामपीडारूपों रोगो यस्याः सा निर्व्याजपीडासन्तप्ता, **मारानाया-याना** मारं कामम् आनयति उत्पादयतीति मारानायं तादृशम् आयानम् आगमनं अस्याः तादृशी कामोत्पादकागमनयुक्ता, **यानावारारावानाया** यानं गमनसाधनं पादः तम् आवृणोति आवृत्तं करोतीति यानावारः नुपूरः तस्य आरावः ध्वनिः एव आनायः पाशवत् बन्धनसाधनं यस्याः तादृशी, **मायारामा** मायाः व्यामोहः आरामः क्रीडास्थलं यस्याः तादृशी परव्यामोहनयुक्ता **सा** काचित् **अमा** अनुपमा **रामा** रमणी **अया** न याति गच्छतीति अया तेन, निरन्तरं विद्यमानेन **अमा** अमापनीयेन विस्तृतेन **मासा** माः चन्द्रः तेन चन्द्रमसा सह **माराय** वधाय कामपीडनाय वा तत्परा विद्यते इति योजनीयम्।

विशेष—

(१) इस श्लोक के पादों का निर्माण अनुलोम और विलोम दोनों मार्गों के भ्रमण द्वारा किया गया है अतः यह सर्वतोभद्रचित्रबन्ध है।

(२) यह चित्रबन्ध अर्धपादगोचर प्रतिलोमयमक का विकसित रूप है। इसमें प्रत्येकपाद का पूर्वार्ध परार्ध में विपरीत क्रम से आवृत्त होता है। इस सर्वतोभद्रबन्ध को रेखाचित्र द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है—

सा	मा	या	मा	मा	या	मा	सा
मा	रा	ना	या	या	ना	रा	मा
या	ना	वा	रा	रा	वा	ना	या
मा	या	रा	मा	मा	रा	या	मा
मा	या	रा	मा	मा	रा	या	मा
या	ना	वा	रा	रा	वा	ना	या
मा	रा	ना	या	या	ना	रा	मा
सा	मा	या	मा	मा	या	मा	सा

(३) इस चित्रबन्ध के वर्ण-विन्यास के समझने के लिए चित्र के अनुसार आठ प्रकोष्ठों वाली आठ पंक्तियाँ बनाकर उनमें पहली चार पंक्तियों में श्लोक के चारों पादों के वर्णों को क्रमशः अनुलोम क्रम से लिखा जाता है और परवर्ती चार पंक्तियों में विपरीत क्रम से चतुर्थ तृतीय द्वितीय और प्रथम पाद के वर्णों को लिखा जाता है। इससे पादोद्धार करने के लिए इसे बाँये से दाहिने या दाहिने से बाँये और ऊपर से नीचे या नीचे से ऊपर सभी ओर से पढ़ा जा सकता है।

(४) किरातार्जुनीय १५.२५ और शिशुपालवध १९.२६ भी इस चित्रबन्ध का उदाहरण है।

(स्वरस्थानवर्णनियमचित्रबन्धनिरूपणम्)

यः स्वरस्थानवर्णानां नियमो दुष्करेष्वसौ ।
इष्टश्चतुःप्रभृत्येषः[१] दर्श्यते[२] सुकरः परः ।।८३।।

अन्वय— दुष्करेषु स्वरस्थानवर्णानां यः असौ नियमः इष्टः एषः चतुःप्रभृति दर्श्यते, परः सुकरः विद्यते।

शब्दार्थ— दुष्करेषु = दुष्कर (बन्धों) में। स्वरस्थानवर्णानां = (अकारादि) स्वर, (कण्ठ इत्यादि) स्थान और (ककारादि व्यञ्जन) वर्णों का। यः = जो। असौ = यह। नियमः = नियम। इष्टः = (चित्रालङ्कार के रूप में) अभीष्ट है। एषः = यह।

(१) -ष्प्रभृत्येष, -त्येषु।

(२) दृश्यते।

चतुःप्रभृति = चार, तीन, दो, एक स्वर) इत्यादि (से निर्मित भेद)। दर्श्यते = निर्दिष्ट (निरूपित) किया जा रहा है। परः (इससे) अन्य (पाँच या इससे अधिक स्वरों से निर्मित भेद)। सुकरः = सुगम, सरल (है)।

अनुवाद— दुष्कर (बन्धों) में (अकारादि) स्वर, (कण्ठ इत्यादि) स्थान और (ककारादि व्यञ्जन) वर्णों का जो यह नियम (= नियमन) (चित्रालङ्कार के रूप में) अभीष्ट है, यह चार (तीन, दो, एक स्वर) इत्यादि (से निर्मित भेद) निर्दिष्ट (निरूपित) किया जा रहा है। (इनसे) अन्य (पाँच या पाँच से अधिक स्वर इत्यादि से निर्मित भेद) सुगम है (अतः उनका निरूपण यहाँ अभीष्ट नहीं है)।

संस्कृतव्याख्या— स्वरस्थानवर्णानां नियमलक्षणं चित्रबन्धं निरूपयत्यत्र- **य** इति। **दुष्करेषु** दुष्करबन्धेषु **स्वरस्थानवर्णानाम्** अकारादिस्वराणां कण्ठादिस्थानां ककारादिव्यञ्जनवर्णानां **यः असौ** एषः **नियमः** नियमनम् अन्यव्यावृत्या उपादानं तेन च काव्यबन्धः **इष्टः** प्राचीनाचार्यैरलङ्कारत्वेन अभिमतः एषः सः **चतुःप्रभृति** चतुस्त्रि-द्व्येकरूपत्वाद् चतुर्भिः त्रिभिः स्वरैः द्वाभ्यां स्वराभ्याम् एकेन वा स्वरेण इति रूपः काव्यबन्धः **दर्श्यते** निरूप्यते। **परः** अन्य पञ्चस्वरैः पञ्चाधिकैः वा स्वरैः य काव्यबन्धः सः तु **सुकरः** सुगमः विद्यते अत एव एषः न निदर्श्यते। दुष्करचित्रकाव्यबन्धसाधनाय एवात्र प्रयासः क्रियते इति भावः।

विशेष—

(१) वर्णों की व्यवस्था से निष्पन्न यह अलङ्काररूप चित्रबन्धकाव्य वर्णों के दो भेदों स्वर और व्यञ्जन तथा उन दोनों के भी आधार उच्चारण स्थान का नियतस्वरूप तथा उनकी संख्या के प्रयोग पर आधारित है।

(२) केवल एक, दो तीन या चार स्वरों, व्यञ्जनों अथवा उनके उच्चारण स्थानों के प्रयोग द्वारा निर्मित काव्यबन्ध को नियम कहा गया है।

(३) यदि श्लोक के एक-एक पाद में एक-एक स्वर का प्रयोग होता है तो काव्य के चारों चरणों में कुल चार स्वरों का प्रयोग होगा- इस प्रकार दह बन्ध चार स्वरों के नियम वाला होगा। जिस श्लोक के चारों पादों के केवल तीन स्वरों का प्रयोग होता है वह बन्ध त्रिस्वरनियम वाला होता है। जब श्लोक के पूर्वार्ध में एक तथा परार्ध में एक स्वर का प्रयोग होता है तो वह द्विस्वरनियम वाला बन्ध होता है तथा जब पूरे बन्ध में एक ही स्वर का प्रयोग होता है तो वह बन्ध एक स्वरनियम वाला होता है।

(३) स्वर नियम के ही समान चार, तीन, दो और एक स्थान वाले वर्णों के प्रयोग

से निर्मित बन्ध क्रमशः चतुःस्थाननियम, त्रिस्थाननियम, द्विस्थाननियम और एक स्थाननियम वाले होते हैं।

(४) व्यञ्जन नियम में चार, तीन, दो और एक व्यञ्जजन के प्रयोग से निर्मित बन्ध क्रमशः चतुर्व्यञ्जननियम, त्रिव्यञ्जननियम, द्विव्यञ्जननियम और एकव्यञ्जननियम वाले होते हैं इन बन्धों को उदाहरण द्वारा आगे स्पष्ट किया जा रहा है।

(चतुःस्वरनियमनिदर्शनम्)

आम्नायानामान्त्या वाग् गीतीरीतिः प्रीतीर्भीतीः ।
भोगो रोगो मोदो मोहो ध्येये[1] वेच्छेद्देशे[2] क्षेमे[3] ।।८४।।

अन्वय— आम्नायानाम् अन्त्या वाग्, गीतीः ईतीः प्रीतीः भीतीः भोगः रोगः मोदः मोहः क्षेमे देशे ध्येये वा इच्छेत् ।

शब्दार्थ— आम्नायानाम् = वेदों की। अन्त्या = अन्त वाली, अन्तिम। वाक् = वाणी। गीतीः = गीतों को। ईतीः = उपद्रवों को। प्रीतीः = अनुराग को, आसक्ति को। भीतीः = भयों, भय का कारण। भोगः = भोग को। रोगः = रोग। मोदः = (विषयभोग के) आनन्द को। मोहः = मोह। आह = कहा है। क्षेमे = कल्याणप्रद, निरुपद्रव। देशे = स्थान में। ध्येये = ध्यान-योग्य (वस्तु) में। वा = ही। इच्छेत् = इच्छा (अभिलाषा) करनी चाहिए।

अनुवाद— वेदों की अन्त वाली (वेदान्तरूप = उपनिषद्रूप) वाणी गीतों को (इन्द्रियों के विषयों के अन्ततः दुःखात्मकरूप) उपद्रवों, (स्त्री, पुत्र इत्यादि विषयक) अनुराग को, भय (विषय) भोग को रोग और (विषय भोग के) आनन्द को, (अज्ञानरूप) मोह कहा है, अतः (मनुष्य को) किसी (तीर्थादि) कल्याणप्रद-स्थान में ध्यान करने योग्य (परमात्मा को प्राप्त करने) की इच्छा करनी चाहिए।

संस्कृतव्याख्या— चतुःस्वरनियमं निदर्शयत्यत्र– **आम्नायानामिति**। आम्नायानां वेदानां **अन्त्या** अन्ते जायमाना वेदान्तरूपा उपनिषद्रूपा वा **वाक्** वाणी **गीतीः** गीतीः **इतीः** उपद्रवान्, सुखप्रदानत्वेनाभिमता इन्द्रियविषया दुःखकारणानीति, **प्रीतीः** अनुरागान् **भीतीः** भयानि, भयकारणमिति **भोगः** विषयभोगः **रोगः** रोगरूपः दुःखावसान **मोदः** विषयानन्दाः च **मोहः** अज्ञानरूपः इति **आह** वक्ति उपदिशतीत्यर्थः। अस्माकारणा

(१) धेये।

(२) द्येच्छे, ध्येच्छे, चेच्छे, वेच्छे।

(३) क्षेमे, देशे।

क्षेमे तीर्थादिरूपे पुण्यक्षेत्रे निरुपद्रवे विविक्ते देशे स्थाने **ध्येये** ध्यानयोग्ये परमब्रह्मणी **इच्छेद्** अभिलदेत्। अत्र आईओए इति चतुर्भिरिव स्वरैः क्रमेण श्लोकस्य पादः निर्मितः अत एव चतुःस्वरनियमः चित्रबन्धः।

विशेष—

(१) इस श्लोक के चारों पाद क्रमशः आ, ई, ए और ओ– इन चार स्वर वर्णों के प्रयोग से निर्मित किये गये हैं– इन चार स्वरों के प्रयोग से सम्पूर्ण श्लोक की रचना होने के कारण यहाँ चतुःस्वरनियम वाला चित्रबन्ध (चित्रालङ्कार) है।

(२) उपनिषदों में गाना, बजाना आदि इन्द्रिय-सुखों को अन्ततः दुःखकारी उपद्रव, स्त्री-पुत्रादि विषयक आसक्ति को भय का कारण, विषयभोगों को रोग का कारण और विषयभोगों से प्राप्त आनन्द को अज्ञानरूपी मोह कहा गया है। ये सभी व्यक्ति को दुःखरूप पतन के गर्त में ले जाने वाले हैं अतः नित्य परमात्मारूप (आनन्दरूप) की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

(३) भारवि के किरातार्जुनीय १५.७, २९ की भी रचना इसी प्रकार की गयी है।

(त्रिस्वरनियमनिदर्शनम्)

क्षितिविजितिस्थितिविहितिव्रतरतयः परगतयः[१]।
उरु रुरुधुर्गुरु दुधुवुर्युधि कुरवः स्वमरिकुलम्॥८५॥

अन्वय— क्षितिविजितिस्थितिविहितिव्रतरतयः परगतयः कुरवः युधि स्वम् अरि-कुलम् उरु रुरुधुः गुरु दुधुवुः।

शब्दार्थ— क्षितिविजितिस्थितिविहितिव्रतरतयः = पृथ्वी (क्षिति) की विजय (विजिति) और मर्यादा (स्थिति) के विधान (विहिति) रूपी व्रत (नियम) में अनुरक्त (अनुराग युक्त। परगतयः = उत्कृष्ट (पर) दशा (अवस्था, गति, ज्ञान) से सम्पन्न। कुरवः = कुरुवंशीय (राजा) लोग। युधि = युद्ध में। स्वम् = अपने। अरिकुलम् = शत्रु-समूह को। उरु = अच्छी प्रकार से, भली-भाँति। रुरुधुः = घेर लिया, रोक लिया। गुरु = अत्यधिक। दुधुवुः = प्रकम्पित कर दिया, हिला दिया।

अनुवाद— पृथ्वी की विजय और मर्यादा के विधानरूपी व्रत में अनुरक्त (प्रसन्न रहने वाले) तथा श्रेष्ठ दशा (अवस्था, ज्ञान) से सम्पन्न कुरुवंशीय (राजा) लोग युद्ध में शत्रुसमूह को अच्छी प्रकार से रोक लिया और अत्यधिक प्रकम्पित कर दिया।

संस्कृतव्याख्या— त्रिस्वरनियमं चित्रबन्धं निदर्शयत्यत्र– **क्षितीति। क्षितिविजि-**

---

(१) –मतयः।

तिस्थितिविहितिव्रतरतयः क्षितेः पृथिव्याः विजितिः विजयः स्थितेः मर्यादायाः च विहितिः विधानं सम्पादनं तद्रूपं यद् व्रतं नियमं तस्मिन् रतिः अनुरागः येषां तादृशाः **परगतयः** परा अत्युत्कृष्टा गतिः दशा ज्ञानं वा येषां तादृशाः **कुरवः** कुरुवंशीयाः राजानः **युधि** समरे **स्वम्** स्वकीयम् **अरिकुलं** शत्रुसमूहं **उरु** भृशम् **रुरुधुः** अवरुन्धे, **गुरुः** अत्यधिकञ्च **दुधुवुः** प्रकम्पितमकुर्वन् । अत्र 'अ इ उ' इति त्रिभिरेव स्वरैः प्रयोगेण पद्यं विरचितम् अत एव त्रिस्वरनियमं चित्रबन्धं चित्रालङ्कारं वा विद्यते।

विशेष—

(१) अ इ तथा उ इन तीन स्वरों के प्रयोग से इस पद्य की रचना की गयी है अतः यहाँ त्रिस्वरनियम चित्रबन्ध है ।

(द्विस्वरनियमनिदर्शनम्)

श्रीदीप्ती ह्रीकीर्त्ती धीनीती गीःप्रीती ।
एधेते[1] द्वे द्वे ते ये नेमे देवेशे ।।८६।।

अन्वय— श्रीदीप्ती ह्रीकीर्त्ती धीनीती गीःप्रीती ये द्वे द्वे देवेशे न, ते एधेते।

शब्दार्थ— श्रीदीप्ती = लक्ष्मी और कान्ति । ह्रीकीर्त्ती = लज्जा और यश। धीनीती = बुद्धि और नीति । गीःप्रीती = (मधुर) वाणी और प्रीति । ये = ये । द्वे द्वे = दो दो (गुण) (एक साथ) । देवेशे = इन्द्र में । न = नहीं हैं । ते = तुम्हारा, तुमको। एधेते = (साथ-साथ) बढ़ा रहे हैं, अभ्युदय कर रहे हैं ।

अनुवाद— लक्ष्मी और कान्ति, लज्जा और यश, बुद्धि और नीति तथा (मधुर) वाणी और प्रीति– ये दो-दो (गुण) एक साथ इन्द्र में (भी) नहीं है, (केवल) तुमको (ही साथ-साथ रहकर) बढ़ा रहे हैं (तुम्हारा ही अभ्युदय कर रहे हैं)।

संस्कृतव्याख्या— द्विस्वरनियमं काव्यबन्धं निदर्शयत्यत्र– **श्रीदीप्तीति** । **श्रीदीप्ती** श्रीः लक्ष्मीः दीप्तिः कान्तिश्च **ह्रीकीर्त्ती** ह्री लज्जा कीर्त्तिः यशश्च, **धीनीती** धीः बुद्धिः नीतिः नयश्च **गीःप्रीती** गीः मधुरं गानं प्रीतिः अनुरागश्च **ये** एते **द्वे द्वे** गुणरूपे वस्तुनी सहैव **देवेशे** इन्द्रे अपि **न** विद्यते । इन्द्रेऽप्यप्राप्तं श्रीदीप्त्यादिकं गुणाः त्वयि राजनि निरन्तरं विद्यमानाः सन्तः **ते** तव राज्ञः **एधेते** वर्धेते । अत्र कश्चिद् राजा एवं प्रशस्यते। अत्र 'ई ए' इत्येतयोः द्वयोः स्वरयोः प्रयोगेण श्लोकस्य निर्माणं विद्यते अत एव द्विस्वरनियमं चित्रबन्धं वर्तते ।

(१) एवैते ।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरित श्लोक की रचना ई और ए- इन दो स्वरों के प्रयोग से हुई है अतः यहाँ द्विस्वरनियम वाला चित्रबन्ध है।

(एकस्वरनियमचित्रबन्धनिदर्शनम्)

सामामायामाया मासा मारानायायाना रामा ।
यानावारारावानाया मायारामा मारायामा ।।८७।।

संस्कृतव्याख्या— एकस्वरनियमं चित्रबन्धं निदर्शयत्यत्र- **समामायेति**। श्लोकोऽयं सर्वतोभद्रचित्रकाव्यस्य निदर्शनरूपेण तत्रैव प्राग् व्याख्यातः। अस्य व्याख्या तत्रैव द्रष्टव्या। श्लोकेऽस्मिन् 'आ' इत्यस्य एकस्यैव स्वरस्य प्रयोगः विद्यते अत एव एकस्वरनियमं चित्रबन्धमिदम्।

विशेष—

(१) यह पद्य सर्वतोभद्र चित्रकाव्य का भी उदाहरण है जो इससे पूर्व (३.८२) में आया है। वहाँ इसकी व्याख्या कर दी गयी है। इसकी व्याख्या को वहीं देख लेना चाहिए।

(२) इस श्लोक में केवल एक ही स्वर 'आ' के प्रयोग द्वारा इसकी रचना की गयी है अतः यह एकस्वरनियम वाला चित्रबन्ध है।

(चतुःस्थाननियमचित्रबन्धनिदर्शनम्)

नयनानन्दजनने नक्षत्रगणशालिनि ।
अघने गगने दृष्टिरङ्गने दीयतां सकृत् ।।८८।।

अन्वय— अङ्गने, नक्षत्रगणशालिनि अघने नयनानन्दजनने गगने सकृत् दृष्टिः दीयताम्।

शब्दार्थ— अङ्गने = हे सुन्दर अङ्गों वाली, हे सुन्दरि! नक्षत्रगणशालिनि = नक्षत्रों (ताराओं) के समूह से भरे हुए। अघने = बादलरहित, मेघविहीन। नयनानन्दजनने = नेत्रों के लिए आनन्द उत्पन्न करने वाले, नेत्रों को आनन्द देने वाले। गगने = आकाश में, आकाश की ओर। सकृत् = एक बार। दृष्टिः = दृष्टि को। दीयतां = दो, डालो।

अनुवाद— हे सुन्दरि, नेत्रों को आनन्द देने वाले, नक्षत्रों (ताराओं) के समूह से भरे हुए और मेघविहीन आकाश की ओर एक बार तो दृष्टि डालो (देखो)।

संस्कृतव्याख्या— चतुःस्थाननियमं चित्रबन्धं निदर्शयत्यत्र- **नयनेति**। अङ्गने

हे सुन्दरि, **नक्षत्रगणशालिनि** तारकासमूहविभूषिते **अघने** मेघशून्ये अत एव **नयना-नन्दजनने** नेत्रानन्ददायके अस्मिन् पुरोदृश्यमाने **गगने** आकाशे **सकृत्** एकं बारमपि **दृष्टिः दीयतां** विलोक्यताम्। स्वच्छे शारदीये आकाशे क्षणमात्रमेव दृष्टिपातं क्रियता-मिति भावः। अत्र कण्ठतालुमूर्धादन्तस्थानोच्चार्यमाणां वर्णानां स्वराणां च प्रयोगेण पद्यस्य रचना कृता अत एव चतुःस्थाननियमं चित्रबन्धम्।

विशेष—

(१) इस श्लोक में कण्ठ, तालु, मूर्धा तथा दन्त स्थानों से उच्चारित होने वाले व्यञ्जन और स्वर वर्णों का प्रयोग हुआ है, अतः चतुःस्थाननियम वाला चित्र-बन्ध है।

(त्रिस्थाननियमचित्रबन्धनिदर्शनम्)

अलिनीलालकलतं[1] कं न हन्ति घनस्तनि।
आननं नलिनच्छायनयनं शशिकान्ति ते ।।८९।।

अन्वय— घनस्तनि, ते अलिनीलालकलतं नलिनच्छायनयनं शशिकान्ति आननं कं न हन्ति।

शब्दार्थ— घनस्तनि = हे पीनपयोधरों वाली (सुन्दरि)। ते = तुम्हारा। अलिनीलालकलतं = भ्रमर (अलि) के समान (नीले) केश (बाल, अलक) रूपी लता से सम्पन्न। नलिनच्छायनयनं = नीलकमल (नलिन) के समान आभा (छाया) से युक्त आँखों वाला। शशिकन्ति = चन्द्रमा के समान कान्ति वाला। आननं = मुख। कं = किस (व्यक्ति) को। न हन्ति = नहीं मारता, व्यथित नहीं करता, कामपीड़ित नहीं करता।

अनुवाद— हे पीनपयोधरों वाली (सुन्दरि), तुम्हारा भ्रमर के समान (काले) केशरूपी लता से युक्त, कमल के समान आभा से युक्त आँखों वाला और चन्द्रमा के समान कान्ति वाला मुख किस (व्यक्ति) को कामपीड़ित नहीं करता (अर्थात् सभी लोगों को कामव्यथित कर देता है।

संस्कृतव्याख्या— त्रिस्थाननियमं चित्रबन्धं निदर्शयत्यत्र- **अलिनीलेति**। **घनस्तनि** हे पीनपयोधरे, **ते** तव **अलिनीलालकलतं** अलिनीला भ्रमरवत्कृष्णा अलकलता केशकलापरूपा लता यस्मिन्तत्तादृशं भ्रमरसमूहवद्नीलकेशपाशयुक्तं **नलिनच्छायनयनं** नलिनस्य नीलकमलस्य छाया प्रभा इव प्रभा ययोः तादृशे नयने यस्मिन् तत् **शशिकान्ति**

(१) -युतं।

शशिनः चन्द्रस्य कान्ति इव कान्तिः शोभा यस्य तादृशम् **आननं** मुखं **कं** पुरुषं **न हन्ति** कामपीड़या न व्यथयति, सर्वं जनं कामपीडितं करोतीति भावः । अत्र कण्ठतालु-दन्तैरेवोच्चारितैः वर्णैः पद्यस्य रचना कृता अत एव त्रिस्थाननियमं चित्रबन्धं विद्यते ।

विशेष—

(१) इस श्लोक में कण्ठ, तालु और दन्त- इन स्थानों से उच्चरित होने वाले वर्णों का प्रयोग किया गया है अतः त्रिस्थाननियम वाला चित्रबन्ध है ।

(द्विस्थाननियमनिदर्शनम्)

अनङ्गलङ्घनालग्ननानातङ्का सदङ्गना ।
सदानघ सदानन्द नताङ्गी[१] सङ्गसङ्गत[२] ।।९०।।

अन्वय— सदानघ सदानन्द नताङ्गीसङ्गसङ्गत, सदङ्गना अनङ्गलङ्घनालग्नना-नातङ्का (विद्यते) ।

शब्दार्थ— सदानघ = हे सर्वथा अनवद्यरूप (अथवा निश्चिन्त) । सदानन्द = हे सदा (नृत्यगीतादि) आनन्द में रहने वाले । नताङ्गीसङ्गसङ्गत = हे (स्तनभार से) विनत अङ्गों वाली (परस्त्री) के साथ सङ्गत (अनुरक्त) रहने वाले । तव = तुम्हारी । सदङ्गना = साध्वी पत्नी, पतिव्रता पत्नी, सती पत्नी । अनङ्गलङ्घनालग्ननातङ्का = काम (अनङ्ग) द्वारा अभिभूत (लङ्घित) होने के कारण अनेकविध पीड़ित (व्यथित, आतङ्कयुक्त) है, काम के आक्रमण से अनेक प्रकार से काम-पीड़ित है ।

अनुवाद— हे सर्वथा अनवद्यरूप (अथवा निश्चिन्त), (स्तनभार से) विनत अङ्गों वाली (परस्त्री) साथ सङ्गत (अनुरक्त) रहने वाले, हे (कामी) ! तुम्हारी साध्वी पत्नी काम के द्वारा अभिभूत होने के कारण अनेक प्रकार से व्यथित (काम-पीड़ित) है ।

संस्कृतव्याख्या—द्विस्थाननियमं चित्रबन्धं निदर्शयत्यत्र- **अनङ्गेति** । **सदानघ** हे सर्वथा अनवद्यरूप चिन्तारहित वा **सदानन्द** हे सदैव नृत्यगीतादिना आनन्दसम्पन्न **नताङ्गीसङ्गसङ्गत** हे स्तनभारेण नताङ्गीनाम् अन्यासां परस्त्रीणां सङ्गे सम्भोगरूपे सङ्गत प्रसक्त हे कामिन् ! **तव** कामिनः **सदङ्गना** साध्वी पत्नी **अनङ्गलङ्घनालग्ननानातङ्का** अनङ्गस्य कामस्य लङ्घनेन आक्रमणेन नाना विविधरूपेण आतङ्का पीड़िता विद्यते, कामाभिभूता विद्यते इति भावः । अत्र कण्ठदन्तयोः उच्चार्यमाणयोः वर्णयोः प्रयोगेण पद्यस्य रचना कृता अत एव द्विस्थाननियमं चित्रबन्धम् ।

---

(१) -नन्दितताङ्ग-, नताङ्ग- ।

(२) -सङ्गत ।

विशेष—

(१) इस पद्य की रचना कण्ठ और दन्त- इन दो स्थानों से उच्चारित वर्णों के प्रयोग से हुई है, अतः द्विस्थाननियम वाला चित्रबन्ध है।

(एकस्थाननियमचित्रबन्धनिदर्शनम्)

अगा गां गाङ्गकाका[१]काकगाहकाघककाकहा ।
अहाहाङ्ग[२] खगाङ्कागा[३]कङ्कागखगकाकक[४] ।।९९।।

पदच्छेद— अगाः गाम् गाङ्गकाकाकगाहक अघककाकहा । अहाहाङ्ग खगाङ्कागकङ्क अगखगकाकक ।

अन्वय— गाङ्गकाकाकगाहक अहाहाङ्ग खगाङ्काकाङ्क अगखगकाकक अघककाकहा गाम् अगाः ।

शब्दार्थ— गाङ्गकाकाकगाहक = हे गङ्गा के जल (गाङ्गक) की शब्दायमान (आक) तिरछी लहरों (अक) में अवगाहन करने वाले (गाहक)। अहाहाङ्ग = हे शोकप्रलाप (हा हा) से रहित, शोकरहित । खगाङ्कागकङ्क = सूर्य (खग) रूपी चिह्न (अङ्क) वाले पर्वत (अग) (अर्थात् सुमेरुपर्वत) तक (कीर्त्ति द्वारा) प्रसरित (जाने वाले, कङ्क), सुमेरु तक प्रसरित (कीर्ति वाले)। अगखागकाकक = कुटिल (अग) इन्द्रियों (ख) को प्राप्त (जाने वाले, ग) सुख (क) के अलोभी (आसक्ति से रहित, अकक), इन्द्रिय के विषय-सुखों में अनासक्त । अघककागहा = पाप (अघक) रूपी कौओं (काक) को विनष्ट कर देते हुए (मार देते हुए)। गाम् = स्वर्ग लोक को। अगाः = जाओगे, प्राप्त होओगे।

अनुवाद— हे गङ्गा के जल की शब्दायमान तिरछी लहरों में अवगाहन करने वाले, शोकभाव से रहित, सूर्यरूपी चिह्न वाले पर्वत (सुमेरुपर्वत) तक (अपनी कीर्ति से) प्रसरित (व्याप्त) और कुटिल इन्द्रियों को प्राप्त (विषय) सुख में अनासक्त (हे राजन्), पापरूपी कौओं को विनष्ट कर देते हुए (विनष्ट करके) तुम स्वर्गलोक को (अवश्य) प्राप्त करोगे।

संस्कृतव्याख्या— एकस्थाननियमं चित्रबन्धं निदर्शयत्यत्र- **अगा इति**। **गाङ्गकाकाकगाहक** गाङ्गस्य गङ्गासम्बन्धिनः कस्य जलस्य आकं शब्दायमानम् अकं

---

(१) -काकाङ्ग- ।
(२) अहाहाङ्क ।
(३) -खकाङ्कागा ।
(४) -काककः, -काकुकः, -गकङ्कागखगाङ्कग ।

तिर्यक्प्रवाहं तरङ्गं गाहते अवगाहनं कुरुते इति तादृशः तत्सम्बुद्धौ हे गङ्गजलध्वनित-तिर्यक्प्रवाहावगाहक, अहाहाङ्ग = हाहा इत्यनेन लक्षितः शोकः तं अङ्गति गच्छति इति हाहाङ्गः तेन रहितः अहाहाङ्गः तादृशः तत्सम्बुद्धौ हे अशोक **खगाङ्कागकङ्क** खगः सूर्यः स एव अङ्कः चिह्नं यस्य सः खगाङ्कः सः चासौ अगः पर्वतः सुमेरुपर्वतः तं कङ्कति कीर्तिभिः याति तादृशः तत्सम्बुद्धौ हे सुमेरुगिरिपर्यन्तव्याप्तयशोसम्पन्न, **अग-खगकाकक** अगन्ति कुटिलं यान्तीति अगानि तादृशानि खानि इन्द्रियाणि तानि गच्छन्तीति अगखगाः कुटिलेन्द्रिविषयाः तेषां कं सुखं तत्र अककः अलोलः अनासक्तः तत्सम्बुद्धौ हे कुटिलेन्द्रिय विषयभोगानासक्त राजन् **अघककाकहा** अघकं पापमेव काकः तं हन्ति विनश्यतीति तादृशः सन् त्वं **गां** स्वर्गलोकम् अवश्यमेव **अगाः** अगमः गमिष्यसि इत्यर्थः। अत्र कण्ठे एवोच्चार्यमाणैः वर्णैः पद्यस्य रचना कृता अत एव एकस्थाननियमं चित्रबन्धमेतत्।

(चतुर्वर्णनियमचित्रबन्धनिदर्शनम्)

रे रे रोरू[1]रुरूरोरुगागोगोऽगाङ्गगो[2]ऽगगुः ।
किं केकाकाकुकः काको मा मा मामम[3] मामम ॥९२॥

अन्वय— रे रे मामम रोरूरुरूरोरुगागोगः अगाङ्गगः अगगुः, किं काकः केकाकाकुकः मां मा मा अम।

शब्दार्थ— रे रे = अरे अरे (अनादरसूचक अव्यय)। मामम = हे ममता-रहित, हे निष्करुण। रोरूरुरूरोरूगागोगः = चींखते (विलखते) हुए (रोरु) रुरु (नामक मृग) के वक्षस्थल (उरु) पर चोट करने वाले (रुक्) पाप (आग) को प्राप्त। अगाङ्गगः = पर्वत (अग) के अङ्गो में गमन (विचरण) करने वाले। अगगुः = असम्बद्ध (अग) वाणी (गौः) वाले, असम्बद्ध बोलने वाले (हो)। काकः = कौआ। किं = क्या। केका-काकुकः = मयूर (केका) की (मदोत्पादक मधुर) ध्वनि को करने वाला (काकुक) (होता है)। मां = मेरे पास। मा मा = मत मत। अम = आओ।

अनुवाद— अरे अरे हे निष्करुण ! तुम चीखने हुए रुरु (नामक मृग) के वक्षस्थल पर चोट करने वाले पाप को प्राप्त (रुरु मृग को मारने के कारण पापी), पर्वत के अङ्गों (कन्दरा, खोह इत्यादि) में विचरण करने वाले और असम्बद्ध बोलने वाले हो (क्योंकि) कौआ क्या मयूर की (मदोत्पादक) मधुर ध्वनि करने वाला होता

---

(१) रोरु-।
(२) -ऽगाङ्गगा-।
(३) मामाम-, गामा ममामम।

है (अर्थात् मधुर ध्वनि नहीं करता)। अतः मेरे पास मत मत आओ।

संस्कृतव्याख्या— चतुर्वर्णनियमं चित्रबन्धं निदर्शयत्यत्र– **रे रे इति**। रे रे इति अनादरसूचकमव्ययम्। **मामम** हे ममत्वरहित, निष्करुण व्याघपुत्र ! **रोरूरुरूरोरुगागोगः** रोरूप्यते त्रासेन भृशं रौति इति रोरू तादृशः यः रुरुः मृगविशेषः तस्य उरसः वक्षसः या रुक् भेदनं विदारणं वा तेन यद् आगः पापं तं गच्छति प्राप्नोतीति तादृशः विराविरुरुमृगवक्षभेदनपापयुक्तः **अगाङ्गमः** अगस्य पर्वतस्य अङ्गे एकप्रदेशे गच्छति विचरतीति तादृशः पर्वतप्रदेशविचरणशीलः, **अगगुः** अगाः असम्बद्धा गौः वाणी यस्य तादृशः असम्बद्धवाणीयुतः असि। एतादृशः त्वं ममादरणीयः न इति भावः। यतो हि **काकः किं केकाकाकुकः** केकायाः मयूरस्य काकुं मदोत्पादकं मधुरं कायति ध्वनयतीति तादृशः भवति, अतः **मां** मत्सपीमं **मा मा अम** उपसर्प। कामपि रमणीमभिलषमाणं व्याधपुत्रं प्रति तस्याः निषेधकथनम्। अत्र 'र ग क म' इत्येतैः चतुर्भिः वर्णैः पद्यस्य रचना कृता इति चतुर्वर्णनियमं चित्रबन्धम्।

विशेष—

(१) इस पद्य की रचना र, ग, क और म– इन चार वर्णों के प्रयोग द्वारा की गयी है अतः चतुर्वर्णनियम वाला चित्रबन्ध है।

(त्रिवर्णनियमचित्रबन्धनिदर्शनम्)

देवानां नन्दनो देवो नोदनो देवनिन्दिनः[१]।
दिवं दुदाव[२] नादेन दाने दानवनन्दिनः[३] ॥९२॥

अन्वय— देवानां नन्दनः देवनिन्दिनः देवः दानवनन्दिनः दाने नादेन दिवं दुदाव।

शब्दार्थ— देवानां = देवताओं को। नन्दनः = आनन्दित करने करने वाले। देवनिन्दिनः = देवताओं के निन्दकों को। नोदनः = निरास (पराभूत) करने वाले। देवः = भगवान् (विष्णु)। दानवनन्दिनः = दानवों के आनन्द देने वाले (हिरण्यकश्यप) के। दाने = विदीर्ण करते समय। नादेन = सिंहनाद से, सिंहगर्जन से। दिवं = द्युलोक को, आकाश को। दुदाव = प्रकम्पित कर दिया, कँपा दिया।

अनुवाद— देवताओं को आनन्द देने वाले और देवताओं के निन्दक (राक्षसों)

(१) वेद-; - निन्दिनाम्।
(२) दानव-।
(३) -दन्तिनः।

को निरास (पराभूत) करने वाले (नृसिंहरूपधारी) भगवान् विष्णु ने दानवों को आनन्द देने वाले (हिरण्यकश्यप) के (वक्षःस्थल को) विदीर्ण करते (चीरते) समय (अपने किये गये) सिंहगर्जन से द्युलोक (आकाश) को प्रकम्पित कर दिया।

संस्कृतव्याख्या— त्रिवर्णनियमं काव्यबन्धं निदर्शयत्यत्र- **देवानामिति**। **देवानां** सुराणां **नन्दनः** आनन्दजननः **देवनिन्दिनः** देवनिन्दकस्य राक्षसस्य **नोदनः** पराभवकर्ता **देवः** नृसिंहरूपधारी भगवान् विष्णुः **दानवनन्दिनः** दानवानां राक्षसानां नन्दिनः आनन्दजननस्य हिरण्यकश्यपस्य **दाने** वक्षोभेदने कृतेन **नादेन** द्युलोकमाकाशम् **दुदाव** प्रकम्पितमकरोत्। अत्र 'दवन' इत्येतेषां वर्णत्रयाणां प्रयोगेणैव पद्यस्य रचना कृता अत एव त्रिवर्णनियमं चित्रकाव्यम्।

विशेष—

(१) यहाँ द, व, और न- इन तीन वर्णों के प्रयोग से पद्य की रचना की गयी है अतः यह त्रिवर्णनियम वाला चित्रबन्ध है।

(द्विवर्णनियमचित्रबन्धनिदर्शनम्)

सूरिः सुरासुरासारिसारः सारस[१]सारसाः।
ससार सरसीः सीरी[२] ससूरुः[३] स सुरारसी ।।९४।।

अन्वय— सः सूरिः सुरासुरासारिसारः सुरारसी ससूरुः सीरी सारससारसाः सरसीः ससार।

शब्दार्थ— सः = वे। सूरिः = विद्वान्। सुरासुरासारिसारः = देवताओं और राक्षसों को अभिभूत करने वाली शक्ति से युक्त, देवताओं और दानवों को पराभूत करने वाली है शक्ति जिसकी ऐसे। सुरारसी = मदिरापान के रसिक। ससूरुः = शोभन जङ्घाओं से युक्त। सीरी = हल को धारण करने वाले (बलराम)। सारससारसाः = सरस (मधुर ध्वनि करने वाले) सारस (नामक पक्षियों) से युक्त। सरसीः = सरोवरों को। ससार = चले गये।

अनुवाद— वे विद्वान्, देवताओं और दानवों को पराभूत करने वाली शक्ति से युक्त, मदिरा के रसिक और हल को धारण करने वाले (बलराम) (अपनी यात्रा के समय) सरस (मधुर) ध्वनि करने वाले सारसों से सम्पन्न सरोवरों को चले गये।

---

(१) सारास-, सारसि-।

(२) सीरो।

(३) सासूरुः।

संस्कृतव्याख्या— द्विवर्णनियमं चित्रबन्धं निदर्शयत्यत्र- **सूरिरिति** । **सः** प्रसिद्धः **सूरिः** विद्वान् **सुरासुरसारिसारः** सुरान् देवान् असुरान् राक्षासान् च आसरति अभिभूतं करोतीति तादृशः सारः बलं यस्य सः **सुरारसी** मदिरापानसिकः **ससूरुः** शोभनौ ऊरुः सूरू ताभ्यां सम्पन्नः, **सीरी** हलधरः बलरामः स्वतीर्थयात्रासङ्गे **सारससारसाः** सारसाः मधुरा ध्वनिः येषां तादृशाः सारसाः पक्षिविशेषाः यत्र ताः **सरसीः** सरांसि **ससार** अगच्छत् । अत्र 'सर' इत्येतयोः द्वयोः वर्णानां प्रयोगेण पद्यस्य रचना विहिता अत एव द्विवर्णनियमं चित्रबन्धम् ।

विशेष—

(१) यहाँ स और र इन दो वर्णों के प्रयोग से पद्य की रचना की गयी है, अतः यह द्विवर्णनियम वाला चित्रबन्ध है ।

(एकवर्णनियमचित्रबन्धनिदर्शनम्)

नूनं नुन्नानि नानेन नाननेनानेनानि नः ।
नानेना ननु नानूनेनैनेनानानिनो[१] निनीः ।।९५।।

पदच्छेद— नूनं नुन्नानि न अनेन न आननेन अननानि नः । न अनेनाः ननु ना अनूनेन एनेन आनान् इनः निनीः ।

अन्वय— अनेन आननेन नः अननानि न नुन्नानि (इति) न । अनूनेन एनेन नः आनान् निनीः ना इनः ननु आनेनाः न ।

शब्दार्थ— अनेन = इस (शत्रुसैनिक) के द्वारा । आननेन = (अपने) मुख से । नः = हमारे । अननानि = प्राणों को । न = नहीं । नुन्नानि = ले लिया गया, हर लिया गया । न = (ऐसी बात) नहीं है । अनूनेन = अन्यून, अत्यधिक । एनेन = (शत्रु की) सेना द्वारा । नः = हम लोगों के । आनान् = प्राणों को । निनीः = लेने का इच्छुक । ना = पुरुष । इनः = प्रभु, स्वामी । ननु = निश्चित रूप से । अनेनाः = निरपराध का इच्छुक । ना = पुरुष । इनः = प्रभु, स्वामी । ननु = निश्चित रूप से । अनेनाः निरपराध है । न = (ऐसी बात) नहीं है ।

अनुवाद— इस (शत्रुसैनिक) द्वारा (अपने तेजस्वी) मुख से हमारे प्राणों को नहीं हरा गया, (ऐसी बात) नहीं है (अर्थात् अवश्य ही हरण कर लिया गया) । (अतः) अत्यधिक (शक्तिशाली) शत्रुसैनिक के द्वारा हमारे प्राणों को लेने का इच्छुक (यह) पुरुष (हमारा) स्वामी निश्चित रूप से निरपराध है (ऐसी बात) नहीं है (अर्थात् अवश्य ही अपराधी है) ।

---

(१) -नाननिनां ।

संस्कृतव्याख्या— एकवर्णनियमं चित्रबन्धं निदर्शयत्यत्र- **नूनमिति**। **अनेन** पुरोविद्यमानेन शत्रुसैनिकेन **आननेन** स्वकीयेन तेजस्विना मुखेन **नः** अस्माकम् **अननानि** प्राणाः **न नुन्नानि** न अपहृतानि व्यथितानि एतद् **न,** अनेनास्माकं प्राणाः अवश्यमेव व्यथिताः जाताः । अतः **अनूनेन** अन्यूनबलेन अत्यधिकपराक्रमेण **एनेन** अनेन शत्रुसैनिकेन नः अस्माकम् **आनान्** प्राणान् **निनीः** हर्तुमभिलाषी **ना** पुरुषः **इनः** स्वामी **ननु** निश्चितरूपेण **अनेनाः** निश्चितरूपेण निरपराधः इति **न** विद्यते, अवश्यमेव सापराधोऽस्तीत्यर्थः । अत्र 'न' इत्येकेनैव वर्णेन पद्यस्य रचना कृता अत एव एकवर्णनियमं चित्रबन्धं विद्यते ।

विशेष—

(१) इस पद्य की रचना केवल एक वर्ण 'न' के प्रयोग द्वारा की गयी है, अतः यहाँ एकवर्णनियम चित्रबन्ध है ।

(२) इसी प्रकार का एकवर्णनियम वाला एक चित्रबन्ध किरातार्जुनीय में आया है, जिसका अन्तिम वर्ण 'त' इस नियम को शिथिल कर देता है—

न नोननुन्नो नाना नानानना ननु ।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत् ॥
(किरात०- १५.१४)

(प्रहेलिकानिरूपणोपक्रमम्)

इति दुष्करमार्गेऽपि[1] कश्चिदादर्शितः क्रमः[2] ।
प्रहेलिकाप्रकाराणां पुनरुद्दिश्यते गतिः ॥९६॥

अन्वय— इति दुष्कारमार्गे अपि कश्चित् क्रमः आदर्शितः । पुनः प्रहेलिकाप्रकाराणां गतिः उद्दिश्यते ।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार । दुष्करमार्गे = दुष्कर (काव्यबन्ध की रचना विधा का । कश्चित् = कुछ । क्रमः = क्रम (प्रकार) । आदर्शितः = निदर्शित किया गया । पुनः = फिर । प्रहेलिकाप्रकाराणां = प्रहेलिका (नामक काव्यबन्ध के विभिन्न) प्रकारों की । गतिः = क्रम (रचनाविधा) । उद्दिश्यते = निरूपित की जा रही है ।

अनुवाद— इस प्रकार दुष्कर (कठिन) काव्यबन्ध (की रचनाविधा) का कुछ क्रम (प्रकार) निदर्शित किया गया । पुनः प्रहेलिका (नामक काव्यबन्ध के विभिन्न) प्रकारों की रचनाविधा निरूपित की जा रही है ।

---

(१) -मार्गस्य, -मार्गोऽपि ।
(२) किञ्चिदादर्शितक्रमः ।

संस्कृतव्याख्या— प्रहेलिकायाः निरूपणमुपक्रमत्यत्र- **इतीति** । **इति** अनेन प्रकारेण **दुष्करमार्गे** दुष्करे दुःसम्पाद्यमाने चित्रकाव्यक्रमे **अपि** कश्चित् **क्रमः** रचनाविधा प्रकारो वा **आदर्शितः** निदर्शितः । **पुनः** अथ च **प्रहेलिकाप्रकाराणां** प्रहेलिकाख्यबन्ध-विशेषस्य भेदानां **गतिः** क्रमः रचनाविधा वा **उद्दिश्यते** निरूप्यते ।

विशेष—

(१) चित्रयमक के कठिन प्रभेदों, गोमूत्रिका, अर्धभ्रम, सर्वतोभद्र, स्वरनियम, स्थान-नियम तथा वर्णनियम वाले बन्धों की रचना करना दुष्कर होता है । उनका निदर्शन कर दिया गया है । भामह ने प्रहेलिका को भी दुष्कर यमक जातीय काव्य में ग्रहण किया है—

नानाधात्वर्थगम्भीरा यमकव्यपदेशिनी ।
प्रहेलिका सा ह्युदिता रामशर्माच्युतोत्तरे ।।
काव्यान्यपि यदीमानि व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत् ।
उत्सवः सुधियामेव हन्त दुर्मेधसो हताः ।।

भामह ने जिस रामशर्मा के अच्युतोत्तर नामक प्रहेलिका ग्रन्थ को यहाँ निर्दिष्ट किया है सम्प्रति वह अनुपलब्ध है ।

(२) दण्डी ने प्रहेलिका को अलग काव्यबन्ध के रूप में माना है । प्रहेलिका की भी रचना दुष्कर ही है । दण्डी दुष्कर काव्यबन्ध को निरूपित करने के लिए कृत-सङ्कल्प हैं । इसीलिए इन्होंने प्रहेलिका के पन्द्रह शुद्ध और एक सङ्कीर्ण- इस प्रकार प्रहेलिका के सोलह प्रभेदों नाम सलक्षण दिया है । वे प्रहेलियाँ ये हैं- (१) समाहिता (२) वञ्चिता (३) व्युत्क्रान्ता (४) प्रमुषिता (५) समानरूपा (६) परुषा (७) सङ्ख्याता (८) प्रकल्पिता (९) नामान्तरिता (१०) निभृता (११) समानशब्दा (१२) सम्मूढा (१३) परिहारिका (१४) एकच्छन्ना (१५) उभयच्छन्ना (१६) सङ्कीर्णा ।

(प्रहेलिकोपयोगनिरूपणम्)

क्रीडागोष्ठीविनोदेषु तज्ज्ञैराकीर्णमन्त्रणे ।
परव्यामोहने चापि[१] सोपयोगाः प्रहेलिकाः ।।९७।।

अन्वय— क्रीडागोष्ठीविनोदेषु तज्ज्ञैः आकीर्णमन्त्रणे परव्यामोहने च अपि प्रहेलिकाः सोपयोगाः ।

---

(१) चैव ।

शब्दार्थ— क्रीडागोष्ठीविनोदेषु = क्रीडारूपी गोष्ठियों (सभाओं) के मनो-विनोदों (प्रमोदों, मन बहलाव) में। तज्ज्ञैः = इस (प्रहेलिका) के ज्ञाताओं (समझने वाले लोगों) के साथ। आकीर्णमन्त्रणे = भरे हुए (समाज में) गुप्तसम्भाषण करने में। परव्यामोहने = दूसरे लोगों को व्यामोहित करने (भुलावा देने) में। अपि = भी। प्रहे-लिकाः = प्रहेलिकाएँ, पहेलियाँ। सोपयोगाः = उपयोगी (लाभकारी) होती है।

अनुवाद— क्रीड़ारूपी गोष्ठियों (सभाओं) के मनोविनोदों (मनबहलाव) में, उस (प्रहेलिका) के ज्ञाताओं (समझने वाले लोगों के) साथ भरे हुए (समाज में) गुप्तसम्भा-षण (करने के माध्यम के रूप) में और दूसरे लोगों को व्यामोहित करने (भुलावा देने) में भी प्रहेलिकाएँ उपयोगी (लाभकारी) होती हैं।

संस्कृतव्याख्या— प्रहेलिकानामुपयोगित्वं निरूपयत्यत्र– **क्रीडेति**। **क्रीडागोष्ठी-विनोदेषु** क्रीडारूपा या गोष्ठी सभा तत्र ये विनोदाः विचित्रवाग्प्रयोगरूपाः मनोविनोदाः तेषु **तज्ज्ञैः** ताषां प्रहेलिकानां ज्ञैः ज्ञातृभिः जनैः **आकीर्णमन्त्रणे** आकीर्णे जनसङ्कीर्णे मन्त्रणे गुप्तवार्तालापे **अपि च** तथा च **परव्यामोहने** परेषाम् अन्येषां प्रहेलिकानभि-ज्ञानां व्यामोहने व्याकुलीकरणे **प्रहेलिकाः** तन्नाम चित्रकाव्यबन्धाः **सोपयोगाः** उप-योगिनः सप्रयोजनाः वा भवन्ति।

विशेष—

(१) वात्स्यायन के अनुसार नागरक की दिनचर्या में अपराह्न का समय गोष्ठीविहार के लिए नियत था। इसके अतिरिक्त किसी निमित्त से पर्वों पर अथवा महीने इत्यादि में निश्चित किन्ही तिथियों पर समान विद्या, बुद्धि, शील, आर्थिक स्थिति और अवस्था में समान लोगों का जुमावड़ा किसी स्थान-विशेष पर होता था। इसका उद्देश्य नागरकों के काव्यव्यासङ्ग अथवा अन्य गीत, वाद्य इत्यादि के प्रदर्शन द्वारा बुद्धिविलास करना होता था। इस प्रकार के अवसर के लिए प्रहेलिका, अन्त्याक्षरी, समस्यापूर्ति इत्यादि कलाविशेषों का प्रयोग होता था। गोष्ठियों के समापन के समय इनके विशेषज्ञों को पुरस्कार वितरण भी किया जाता था। इस प्रकार के अवसर-विशेष पर आयोजित गोष्ठियों का निर्देश दण्डी ने यहाँ किया है।

(२) आचार्य दण्डी ने प्रहेलिका के तीन प्रयोजनों को यहाँ बतलाया है– (क) गोष्ठियों में सुनाकर प्रशंसा लूटना, ईर्ष्यालुओं को हतप्रद करना तथा मनोविनोद करते हुए समय बिताना (ख) जनसङ्कुल स्थानों में पहेलियों द्वारा स्वमन्तव्य को प्रेषित करना और (ग) अन्य लोगों को गूढशब्द अथवा गूढार्थ द्वारा आश्चर्यचकित करना।

(प्रहेलिकाभेदनिरूपणम्)

आहुः समाहितां[१]नाम गूढार्थं पदसन्धिना ।
वञ्चितान्यत्र रूढेन यत्र शब्देन वञ्चना[२] ।।९८।।

अन्वय— पदसन्धिना गूढार्थां समाहितां नाम आहुः । रुढेन शब्देन अन्यत्र यत्र वञ्चना (सा) वञ्चिता (नाम) ।

शब्दार्थ— पदसन्धिना = (दो या अधिक) पदों की सन्धि के कारण । गूढार्थां = गूढ (छिपे हुए) अर्थ वाली (रचना) । समाहितां नाम = समाहिता नामक (प्रहेलिका) । आहुः = कहीं जाती है । रुढेन = रूढ़ (अर्थ-विशेष में प्रसिद्ध) । शब्देन = शब्द के द्वारा । अन्यत्र = अन्य (अर्थ) में । यत्र = जहाँ । वञ्चना = (दूसरे व्यक्ति की) प्रवञ्चना (होती है) । वञ्चिता = (वह) वञ्चिता (नामक प्रहेलिका होती है) ।

अनुवाद— (दो या अधिक) पदों की सन्धि के कारण गूढ (छिपे हुए) अर्थ वाली (रचना) समाहिता नामक (प्रहेलिका) है और रुढ (अर्थ-विशेष में प्रसिद्ध) शब्द के द्वारा (विवक्षित अर्थ से) अन्य अर्थ में (प्रयोग करके) जहाँ (दूसरे व्यक्ति की) प्रवञ्चना की जाती है (अर्थात् दूसरे को छला जाता है) वह वञ्चिता नामक (प्रहेलिका) (होती है) ।

संस्कृतव्याख्या— समाहिता वञ्चिता नाम प्रहोलिकाद्वयं लक्षयत्यत्र– **आहुरिति** । **पदसन्धिना** द्वयोः पदयोः द्व्यधिकानां पदानां वा परस्परसन्धिना **गूढार्थां** निगूढार्थां दुर्बोधतया ज्ञेयार्थां प्रहेलिकां **समाहितां नाम** तन्नामा प्रहेलिका उच्यते **रुढेन** प्रसिद्धार्थेन **शब्देन** पदेन **अन्यत्र** विवक्षितादर्थाद् अन्यस्मिन्नर्थे प्रयेगेण **वञ्चना** परछलनं भवति तत्र **वञ्चिता** तन्नामा प्रहेलिका भवति ।

विशेष—

(१) यहाँ प्रहेलिका के समाहिता और वञ्चिता नामक भेद का लक्षण दिया गया है।

(२) **समाहिता प्रहेलिका**— यह पहेली विशुद्धरूप से शब्दगूढ़ होती है । जब दो या दो से अधिक पदों की सन्धि से भिन्न प्रकार का शब्द निष्पन्न हो जाता है तब पद के स्वरूप के विषय में श्रोता की बुद्धि भ्रमित हो जाती है । उस उक्ति का वास्तविक अर्थ छिप जाता है । इस प्रकार की पहेली पदों के सन्धान (पदों के एक में समाहित) होने के कारण समाहिता कहलाती है । ३.१०८ में इसका उदाहरण दिया गया है ।

---

(१) समागतां ।

(२) वञ्चनम् ।

(३) **वञ्चिता प्रहेलिका**— विवक्षित अर्थ से अन्य अर्थ में प्रसिद्ध शब्द का प्रयोग करके उससे जहाँ विवक्षित अर्थ का गोपन किया जाता है, वह प्रहेलिका वञ्चिता कहलाती है। इस प्रकार रुढ़ार्थक शब्द से श्रोता को यथार्थ का बोध नहीं हो पाता तो वह भ्रमित हो जाता है। इस प्रकार प्रवञ्चना (छल) के कारण यह पहेली वंचिता कहलाती है। यहाँ छलन शब्द द्वारा नहीं प्रत्युत अन्य अर्थ में प्रसिद्ध रूढ शब्द के माध्यम से निगूढ अर्थ द्वारा किया जाता है। अर्थ में भ्रान्ति होने से यह अर्थगूढा पहेली है। ३.१०९ में इसका उदाहरण दिया गया है।

(व्युत्क्रान्ताप्रमुषितयोःलक्षणम्)

व्युत्क्रान्तातिव्यवहितप्रयोगान्मोहकारिणी ।
सा स्यात्प्रमुषिता यस्यां दुर्बोधार्था पदावली[१] ॥९९॥

अन्वय— अतिव्यवहितप्रयोगात् मोहकारिणी व्युत्क्रान्ता, यस्यां दुर्बोधार्था पदावली सा प्रमुषिता स्यात्।

शब्दार्थ— अतिव्यवहितप्रयोगात् = अत्यधिक व्यवधान से युक्त (पदों) के प्रयोग के कारण। **मोहकारिणी** = व्यामोह उत्पन्न करने वाली, भ्रमित कर देने वाली। व्युत्क्रान्ता = व्युत्क्रान्ता (नामक पहेली होती है) यस्यां = जिस (पहेली) में। दुर्बोधार्था = दुर्बोध अर्थ वाली। पदावली = पदमाला, पदसमुदाय। सा = वह। प्रमुषिता = प्रमुषिता (नामक पहेली)। स्यात् = होती है।

अनुवाद— अत्यधिक व्यवधान से युक्त (पदों के) प्रयोग के कारण व्यामोह उत्पन्न करने वाली (भ्रमित कर देने वाली) व्युत्क्रान्ता (नामक पहेली होती है और) जिस (पहेली) में दुर्बोध अर्थ वाले पदों का समुदाय (प्रयुक्त होता है) वह प्रमुषिता (नामक पहेली) होती है।

संस्कृतव्याख्या— व्युत्कान्ताप्रमुषितयोः प्रहेलिकयोः लक्षणं निर्दिशत्यत्र– **व्युत्क्रा-न्तेति**। **अतिव्यवहितप्रयोगात्** अतिव्यवहितानाम् अत्यधिकव्यवधानयुक्तानां पदानां प्रयोगात् सन्निवेशात् **मोहकारिणी** व्यामोहोत्पादिका प्रहेलिका **व्युत्क्रान्ता** तन्नामाख्याता भवति। **यस्यां** प्रहेलिकायां **दुर्बोधार्था** दुर्ग्राह्यार्था **पदावली** पदसमूहः भवति सा **प्रमु-षिता** तन्नामाभिधेया प्रहेलिका स्यात्।

विशेष—

(१) **व्युत्क्रान्ता**— पदों के अत्यधिक व्यवहित होने से अन्वय में कठिनता हो जाती

(१) पदावलिः।

है जिससे श्रोता को अर्थ के विषय में व्यामोह हो जाता है। व्युत्क्रमण से विन्यास शब्द का धर्म है जिससे पदों का परस्पर सम्बन्ध प्रभावित होता है। सम्बन्ध अर्थगत होता है अतः यह पहेली भी अर्थगूढ़ा होती है। पदों का सम्बन्ध निश्चित न होने से या तो अर्थ का निश्चय होगा ही नहीं या विपरीत अर्थ का भी अवबोध हो सकता है। व्यामोह का मूलकारण व्युत्क्रम होने के कारण यह पहेली व्युत्कान्ता कहलाती है। (द्रष्टव्यः उदाहरण ३.११०)।

(२) **प्रमुषिता**— जिस पहेली में पदसमुदाय का अर्थ स्वरूपतः दुर्बोध होता है। वहां अर्थ का अपहरण (प्रमोषण) होने के कारण यह प्रमुषिता कहलाती है। (द्रष्टव्यः उदाहरण ३.१११)।

(समानरूपापरुषयोः लक्षणम्)

समानरूपा[१] गौणार्थारोपितैर्ग्रथिता[२] पदैः ।
परुषा लक्षणास्तित्वमात्रव्युत्पादितश्रुतिः ॥१००॥

अन्वय— गौणार्थारोपितैः पदैः ग्रथिता समानरूपा, लक्षणास्तित्वमात्रव्युत्पादितश्रुतिः परुषा (विद्यते)।

शब्दार्थ— गौणार्थारोपितैः = गौण (अर्थात् लाक्षणिक) अर्थ के आरोप से युक्त। पदैः = पदों द्वारा। ग्रथिता = विरचित (पहेली)। समानरूपा = समानरूपा (कहलाती है)। लक्षणास्तित्वमात्रव्युत्पादितश्रुतिः = (पदों के) लक्षण (व्याकरणशास्त्र) के अस्तित्वमात्र से सिद्ध (व्युत्पन्न) शब्दों (श्रुति) वाली (पहेली)। परुषा = परुषा (कहलाती है)।

अनुवाद— गौण (अर्थात् लाक्षणिक) अर्थ के आरोप से युक्त पदों द्वारा विरचित (पहेली) समानरूपा (कहलाती है) और पदों के लक्षण (व्याकरण) के अस्तित्वमात्र से सिद्ध (व्युत्पन्न) शब्दों वाली (पहेली) परुषा कहलाती है।

संस्कृतव्याख्या— समानरूपापरुषयोः प्रहेलिकयोः लक्षणं निर्दिशत्यत्र- **समानरूपेति**। **गौणार्थारोपितैः** गौणेन लाक्षणिकेन अर्थेन आरोपितैः उपचारितैः **पदैः** शब्दैः **ग्रथिता** विरचिता प्रहेलिका **समानरूपा** सामान्यरूपेत्यभिधीयते। **लक्षणास्तित्वमात्रव्युत्पादितश्रुतिः** लक्षणस्य शब्दानुशासनस्य व्याकरणस्य अस्तित्वमात्रेण सद्भावमात्रेण व्युत्पादिता साधिता श्रुतिः पदः यस्यां तादृशी व्याकरणशास्त्रीयसूत्रवृत्तिमात्रसिद्धपदयुक्ता प्रहेलिका **परुषा** इत्यभिधीयते।

---

(१) –रूप–।

(२) ग्रथित।

विशेष—

(१) **समानरूपा प्रहेलिका**— जिस प्रहेलिका में प्रयुक्त पद अपने प्रसिद्ध मुख्यार्थ के वाचक न होकर उसके वाच्य पदार्थों के गुणों से समानता के कारण उन गुणों से युक्त किसी अन्य पदार्थ को लक्षित करते हों, तो ऐसी पहली समान पदार्थ के आरोप के कारण समानरूपा कहलाती है। शब्दों से किसी वस्तु का वर्णन प्राप्त होते हुए भी अन्य किसी सदृश पदार्थ की विवक्षा दुर्बोध होती है। अतः यह दुष्कर चित्रालङ्कार है। (द्रष्टव्यः उदाहरण ३.११२)।

(२) **परुषा प्रहेलिका**— जिस पहेली में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिसका लोक में प्रयोग नहीं होता किन्तु व्याकरणशास्त्र के नियमों से व्युत्पत्ति अवश्य सिद्ध होती है। ऐसे शब्द सहृदय व्यक्ति के लिए कठोर प्रतीत होते हैं। जब ऐसे प्रयोग विनोदार्थ किये जाते हैं तो उसे परुषा पहेली कहा जाता है। ऐसी पहेलियाँ सामान्यजन को व्यामूढ़ कर देती हैं। (द्रष्टव्य उदाहरण ३.११३)।

(सङ्ख्यातप्रकल्पितयोः लक्षणम्)

सङ्ख्याता नाम सङ्ख्यानं यत्र व्यामोहकारणम् ।
अन्यथा भासते यत्र वाक्यार्थः सा प्रकल्पिता ।।१०१।।

अन्वय— यत्र सङ्ख्यानं व्यामोहकारणं (तत्र) सङ्ख्याता नाम, वाक्यार्थः अन्यथा भासते सा प्रकल्पिता (नाम)।

शब्दार्थ— यत्र = जहाँ, जिस (पहेली) में। सङ्ख्यानं = (वर्णों की) गणना। व्यामोहकारणं = व्यामोह (भ्रम) का कारण (होती है)। सङ्ख्याता नाम = सङ्ख्याता नाम वाली (पहेली होती है)। वाक्यार्थः = वाक्य का अर्थ। अन्यथा = अन्य प्रकार से। भासते = आभासित होता है। सा = वह। प्रकल्पिता = प्रकल्पिता (पहेली कहलाती है)।

अनुवाद— जिस (पहेली) में (वर्णों की) गणना (अथवा सङ्ख्यावाचक शब्द) व्यामोह का कारण होते हैं, वह सङ्ख्याता नामक (पहेली होती है) और जहाँ वाक्य का अर्थ (अपने वास्तविक अर्थ से) अन्य प्रकार से आभासित होता है, वह प्रकल्पित (नामक पहेली कहलाती है)

संस्कृतव्याख्या— सङ्ख्यातप्रकल्पितयोः प्रहेलिकयोः लक्षणं निरूपयत्यत्र-सङ्ख्यातेति। **यत्र** यस्यां प्रहेलिकायां **सङ्ख्यानं** वर्णानां गणनं सङ्ख्यावाचकः शब्दो वा **व्यामोहकारणं** व्यामोहस्य भ्रमस्य कारणं हेतुः भवति सा **सङ्ख्याता नाम** सङ्ख्याता नाम प्रहेलिका तथा च **यत्र** यस्यां प्रहेलिकायां **वाक्यार्थः** प्रयुक्तस्य वाक्यस्य पदसमु-

दायस्य अर्थः **अन्यथा** अन्यरूपेण **भासते** प्रतिभाति सा एतादृशी प्रहेलिका **प्रक-ल्पिता** इत्यभिधीयते।

विशेष—

(१) **सङ्ख्याता प्रहेलिका—** जिस पहेली में गिनती उलझने वाली होती है, वह सङ्ख्याता पहेली कहलाती है। यह पहेली भी अर्थगूढ पहेली है (द्रष्टव्य उदाहरण ३.११४)।

(२) **प्रकल्पिता प्रहेलिका—** जिस पहेली में वाक्यार्थ विवक्षित अर्थ से अन्य रूप में आभासित होता है, यह वास्तविक नहीं होता। कल्पना द्वारा अर्थान्तर का आभास कराने के कारण वह प्रकल्पिता पहेली कहलाती है (द्रष्टव्य उदाहरण ३.११५)।

(नामान्तरितानिभृतयोः लक्षणम्)

सा नामान्तरिता यस्यां[१] नाम्नि नानार्थकल्पना।
निभृता निभृतान्यार्था तुल्यधर्मस्पृशा गिरा ।।१०२।।

अन्वय— यस्यां नाम्नि नानार्थकल्पना सा नामान्तरिता, तुल्यधर्मस्पृशा गिरा निभृतान्यार्था निभृता (भवति)।

शब्दार्थ— यस्यां = जिस (पहेली) में। नाम्नि = नाम विशेष में। नानार्थकल्पना = अनेक पदार्थों की कल्पना (होती है)। सा = वह। नामान्तरिता = नामान्तरिता (कहलाती है)। तुल्यधर्मस्पृशा = समान धर्म का प्रतिपादन करने वाली। गिरा = वाणी के द्वारा। निभृतान्यार्था = गूढ़ (छिपे हुए) अन्य अर्थ वाली (पहेली)। निभृता = निभृता (होती है)।

अनुवाद— जिस (पहेली) में नाम (संज्ञा) विशेष (को प्रकट करने) में अनेक पदार्थों की कल्पना की जाती है, वह नामान्तरिता (कहलाती है) और (अप्रकृत तथा प्रकृत के) समान धर्म का प्रतिपादन करने वाली वाणी द्वारा गूढ (छिपे हुए) अन्य अर्थ वाली (पहेली) निभृता (कहलाती है)।

संस्कृतव्याख्या— नामान्तरितानिभृतयोः प्रहेलिकयोः लक्षणं निरूपयत्यत्र- सेति। **यस्यां** प्रहेलिकायां **नाम्नि** संज्ञायां विषये तत्प्रकटनाय **नानार्थकल्पना** विविधानाम् अर्थानां कल्पना विभावना भवति सा एतादृशी प्रहेलिका नाम्नोऽन्तरित्वाद् **नामान्त-रिता** तन्नामा प्रहेलिका कथ्यते। तथा च **तुल्यधर्मस्पृशा** अप्रकृतप्रकृतयोः तुल्य

(१) यस्या।

समानं धर्मं **स्पृशन्त्या** प्रतिपादयन्त्या **गिरा** वाण्या **निभृतान्यार्था** निभृतः गोपितः अन्यः प्रकृतः अर्थः यस्यां तादृशी प्रहेलिका प्रकृतार्थगोपनाद् **निभृता** तन्नामा प्रहेलिका विद्यते।

विशेष—

(१) **नामान्तरिता प्रहेलिका**— प्रकल्पिता पहेली में अर्थान्तर की कल्पना श्रोता को हो जाती है, वह कवि द्वारा विवक्षित नहीं होती। कवि द्वारा अवर्णित अर्थों का आभास श्रोता को होता है किन्तु नामान्तरिता में वे विविध अर्थ कवि को विवक्षित होते हैं। वह भी पहेली अर्थगूढ़ा होती है। (द्रष्टव्य उदाहरण ३.११६)।

(२) **निभृता प्रहेलिका**— विवक्षित और अविवक्षित पदार्थों के समान धर्म को प्रतिपादित करने वाली पदावली के प्रयोग से अन्य अर्थ को छिपाकर प्रस्तुत करने वाले कथन के छिपाने कारण ऐसी पहेली निभृता कहलाती है। (द्रष्टव्य उदाहरण ३.११७)

(समानशब्दासम्मूढयोः लक्षणम्)

समानशब्दोपन्यस्तशब्दपर्यायसाधिता ।
सम्मूढा नाम या साक्षान्निर्दिष्टार्थापि मूढये[1] ।।१०३।।

अन्वय— उपन्यस्तशब्दपर्यायसाधिता समानशब्दा (उच्यते), या साक्षात् निर्दिष्टार्था अपि मूढये (कल्पते सा) सम्मूढा नाम (भवति)।

शब्दार्थ— उपन्यस्तशब्दपर्यायसाधिता = प्रयुक्त पर्यायवाची शब्दों (के प्रयोग) से विरचित (पहेली)। समानशब्दा = समानशब्दा (कहलाती है)। या = जो। साक्षात् = प्रत्यक्ष रूप से। निर्दिष्टार्था = निर्दिष्ट अर्थों वाली (पहेली)। मूढये = व्यामोह (उत्पन्न करने) के लिए (प्रयुक्त होती है, वह)। सम्मूढा नाम = सम्मूढा कहलाती है।

अनुवाद— (अभीष्ट शब्दों के स्थान पर) प्रयुक्त पर्यायवाची शब्दों (के प्रयोग) से विरचित (पहेली समानार्थक शब्दों वाली होने के कारण) समानशब्दा (कहलाती है) और जो प्रत्यक्ष रूप से (वाचक शब्दों द्वारा) निर्दिष्ट अर्थ वाली (पहेली) व्यामोह (उत्पन्न करने) के लिए (प्रयुक्त होती है वह) सम्मूढा (कहलाती है)।

संस्कृतव्याख्या— समानशब्दासम्मूढयोः प्रहेलिकयोः लक्षणं निरूपयत्यत्र– **समा-नेति**। **उपन्यस्तशब्दपर्यायसाधिता** अभीष्टशब्दस्थाने उपन्यस्तेन प्रयुक्तेन शब्दपर्यायेन पर्यायवाचिना शब्देन साधिता विरचिता या प्रहेलिका सा **समानशब्दा** तन्नामा भवति।

---

(१) मूढयोः।

या प्रहेलिका **साक्षात्** प्रत्यक्षरूपेण **निर्दिष्टार्था** वाचकपदैः उक्तार्था **अपि मूढये** व्यामोहाय भवति सा **सम्मूढा** तन्नामाख्याता भवति ।

विशेष—

(१) **समानशब्दा प्रहेलिका**— जो विवक्षित शब्द के स्थान पर उसके समानार्थक शब्द के प्रयोग द्वारा विरचित होती है, वह समानशब्दा कहलाती है। (द्रष्टव्य उदाहरण ३.११८)।

(२) **सम्मूढा प्रहेलिका**—प्रत्यक्षरूप से अभिधा द्वारा वाचक शब्दों के प्रयोग से विरचित कथन (अभिव्यक्ति) की अस्पष्टता के कारण व्यामोह को उत्पन्न कर देती है, ऐसी पहेली सम्मूढा कहलाती है। (द्रष्टव्य उदाहरण ३.११९)।

(परिहारिकैकच्छन्नयोः लक्षणम्)

योगमालात्मिका[1] नाम या स्यात्[2] सा परिहारिका[3] ।
एकच्छन्नाश्रितं व्यज्य[4] यस्यामाश्रयगोपनम् ।।१०४।।

अन्वय— या योगमालात्मिका सा परिहारिका नाम स्यात्। यस्याम् आश्रितं व्यज्य आश्रयगोपनं (सा) एकच्छन्ना ।

शब्दार्थ— या = जो । योगमालात्मिका = यौगिक (व्युत्पत्तिलभ्य, योग शब्दों की) परम्परा (माला) के स्वरूप वाली (होती है) । सा = वह । परिहारिका = परिहारिका नामक (पहेली) । स्यात् = होती है । यस्यां = जिस (पहेली) में । आश्रितं = आश्रित (पदार्थ) को । व्यज्य = व्यञ्जित करके, प्रदर्शित करके । आश्रयगोपनं = आश्रय (पदार्थ) का गोपन (किया जाता है) । एकच्छन्ना = एकछन्ना (कहलाती है) ।

अनुवाद— जो यौगिक (व्युत्पत्तिलभ्य) (शब्दों) की परम्परा के स्वरूप वाली (पहेली होती है) वह (योग अथवा योगरूढ़ शब्दों का परिहार होने के कारण) परिहारिका नामक (पहेली होती है) और जिसमें आश्रित (पदार्थ) को प्रदर्शित करके आश्रय (पदार्थ) का गोपन (किया जाता है) (वह पहेली) (एक अर्थात् आश्रय के निगूढ़ होने के कारण) एकच्छन्ना (कहलाती है) ।

संस्कृतव्याख्या— परिहारिकैकच्छन्नयोः प्रहेलिकयोः लक्षणं निरूपयति— **योगमालेति** । **या** प्रहेलिका **योगमालात्मिका** योगानां व्युत्पत्तिनिष्पन्नानां यौगिकानां

(१) - त्मकं ।
(२) यस्याः ।
(३) -हारिणी, परिहारिकी ।
(४) व्यक्तं ।

शब्दानां माला परम्परा एव आत्मा स्वरूपं यस्याः तादृशी यौगिकशब्दपरम्पराविरचिता भवति **सा** प्रहेलिका **परिहारिका** तन्नामा प्रहेलिका स्यात्। **यस्यां** च प्रहेलिकायां **आश्रितम्** आधेयं पदार्थं **व्यज्य** प्रदर्श्य साक्षाद्रूपेण उक्त्वा **आश्रयगोपनम्** आश्रयस्य आधारस्य गोपनं गूहनं भवति **सा** एकाश्रयगोपनाद् **एकच्छन्ना** तन्नामा प्रहेलिका उच्यते।

विशेष—

(१) **परिहारिका प्रहेलिका—** जिस पहेली में संज्ञा शब्द सम्बन्धों की परम्परा के रूप में विद्यमान होते हैं, वह प्रहेलिका संज्ञाशब्द का परिहार करने के कारण परिहारिका पहेली कहलाती है। इस पहेली में वस्तु का अभिधान स्पष्ट वाचक शब्दों के द्वारा न करके वाचकों के प्रयोग से बचते हुए सम्बन्धों के अभिधान-परम्परा से किया जाता है अतः यह अर्थगूढा पहेली है। (द्रष्टव्य उदाहरण ३.१२०)।

(२) **एकच्छन्ना प्रहेलिका—** जिस पहेली में आश्रित पदार्थ के द्रव्य, गुण, क्रिया, रूप, धर्म का तो अभिधान किया जाता है किन्तु आश्रय पदार्थ (धर्मी) को छिपा दिया जाता है, वह एक (आश्रय) को छिपा देने के कारण एकच्छन्ना पहेली कहलाती है। आश्रय को कह देने से धर्म स्वतः उक्त हो जाते हैं। अतः व्यामोहकता आश्रयगोपन में ही होती है। आश्रितगोपन से नहीं। यह आश्रयरूप अर्थ के निगूहन के कारण अर्थगूढा पहेली है। धर्मी के कथन से धर्मी की कल्पना में कुछ चमत्कार होता है। (द्रष्टव्य उदाहरण ३.१२१)।

(उभयच्छन्नासङ्कीर्णयोः लक्षणम्)

सा भवेदुभयच्छन्ना यस्यामुभयगोपनम्।
सङ्कीर्णा नाम सा यस्यां नानालक्षणसङ्करः ॥१०५॥

अन्वय— यस्याम् उभयगोपनं सा उभयच्छन्ना भवेत्, यस्यां नानालक्षणसङ्करः सा सङ्कीर्णा नाम (भवेत्)।

शब्दार्थ— यस्याम् = जिस (पहेली) में। उभयगोपनं = आश्रित (= धर्म) और आश्रय (= धर्मी) दोनों का गोपन (होता है)। सा = वह (पहेली)। उभयच्छन्ना = उभयच्छन्ना (होती है)। यस्यां = जिस (पहेली) में। नानालक्षणसङ्करः = विविध (पहेलियों) के लक्षणों का समिश्रण (होता है)। सा = वह (पहेली)। सङ्कीर्णा नाम = सङ्कीर्णा (कहलाती है)।

अनुवाद— जिस (पहेली) में (धर्म और धर्मी) दोनों का गोपन (होता है) वह (पहेली, दोनों का गोपन होने के कारण) उभयच्छन्ना (होती है) तथा जिस (पहेली) में

विविध (पहेलियों) के लक्षण का सम्मिश्रण (होता है), वह सङ्कीर्णा (कहलाती है)।

संस्कृतव्याख्या— उभयच्छन्नासङ्कीर्णयोः प्रहेलिकयोः लक्षणं निरूपयत्यत्र- **सा भवेदिति**। **यस्यां** प्रहेलिकायाम् **उभयगोपनं** धर्मीधर्मयोः उभयोः द्वयोः गोपनं निगूहनं भवति **सा** प्रहेलिका **उभयच्छन्ना** तन्नामा प्रहेलिका **भवेत्**। **यस्यां** प्रहेलिकायां **नानालक्षणसङ्करः** विविधानां प्रहेलिकानां लक्षणानां सङ्करः मिश्रणः भवति **सा** प्रहेलिका **सङ्कीर्णा** तन्नामा प्रहेलिका उच्यते।

विशेष—

(१) **उभयच्छन्ना प्रहेलिका**— जिस पहेली में द्रव्य, गुण और क्रिया रूप धर्म तथा उसके धर्मी दोनों का गोपन किया जाता है, वह दोनों का गोपन होने के कारण उभयछन्ना पहेली कहलाती है। यह भी अर्थगूढा पहेली है। (द्रष्टव्य उदाहरण ३.१२२)।

(२) **सङ्कीर्णा प्रहेलिका**— जिस पहेली में विविधलक्षणों वाले तत्वों का मिश्रण (सङ्कर) होता है, वह सङ्कीर्णा पहेली होती है। (द्रष्टव्य उदाहरण ३.१२३)।

(प्रहेलिकाप्रभेदलक्षणोपसंहारः)

एताः षोडश निर्दिष्टाः पूर्वाचार्यैः प्रहेलिकाः।
दुष्टप्रहेलिकाश्चान्यास्तैरधीताश्चतुर्दश ॥१०६॥

अन्वय— पूर्वाचार्यैः एताः षोडश प्रहेलिकाः निर्दिष्टाः, तैः च अन्याः चतुर्दश दुष्टप्रहेलिकाः अधीताः।

शब्दार्थ— पूर्वाचार्यैः = पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा। एताः = ये (पूर्वलक्षित)। षोडश = सोलह। प्रहेलिकाः = पहेलियाँ। निर्दिष्टाः = निर्दिष्ट (की गयीं हैं)। तैः च = और उन (आचार्यों) के द्वारा। अन्याः = (इनसे अतिरिक्त) दूसरी। चतुर्दश = चौदह। दुष्टप्रहेलिकाः = दोषयुक्त पहेलियाँ। अधीताः = पढ़ी गयी हैं, विवेचित की गयी हैं।

अनुवाद— पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा ये (ऊपर लक्षित) सोलह पहेलियाँ निर्दिष्ट की गयी हैं और उन (आचार्यों) के द्वारा (इनसे अतिरिक्त) चौदह अन्य दोषयुक्त पहेलियाँ पढ़ी गयी (विवेचित की गयी) हैं।

संस्कृतव्याख्या— प्रहेलिकायाः प्रभेदानुपसंहरत्यत्र- **एता इति**। **पूर्वाचार्यैः** पूर्ववर्तिभिराचार्यैः **एताः** पूर्वलक्षिताः **षोडश** सङ्ख्याकाः **प्रहेलिकाः** निर्दिष्टाः निरू-

पिताः विद्यन्ते **तैः** पूर्वाचार्यैः **च** एताभ्यः प्रहेलिकाभ्यः **अन्याः** अपरा **चतुर्दश** सङ्ख्याकाः **दुष्टप्रहेलिकाः** दुष्टाः सदोषाः याः प्रहेलिकाः ताः प्रहेलिकाप्रभेदाः **अधीताः** पठिताः निरूपिताः वा।

विशेष—

(१) दण्डी ने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट सोलह प्रकार की पहेलियों का लक्षण किया है। भामह ने पूर्वाचार्य रामशर्मा तथा उनके द्वारा विरचित पहेली-विषयक ग्रन्थ 'अच्युतोत्तर' का नाम निर्दिष्ट किया है। दण्डी ने भी अवन्तीसुन्दरीकथा में अपने समय के आचार्यों में रामशर्मा का नाम निर्दिष्ट किया है। यदि यही रामशर्मा 'अच्युतोत्तर' पहेली ग्रन्थ के लेखक हैं तो सम्भव है कि काव्यादर्श के लेखन के समय तक इस पहेली ग्रन्थ का प्रणयन नहीं हो सका था इसीलिए दण्डी ने रामशर्मा के पहेलीविषयक चिन्तन का उल्लेख नहीं किया है।

(२) दण्डी के अनुसार जिन पहेलियों में उनके लक्षण पूर्णतः घटित नहीं होते वे पहेलियाँ सदोष पहेलियाँ कहलाती हैं। इस तथ्य का उद्घाटन इससे बाद वाली कारिका में किया जा रहा है।

(साधुप्रहेलिकानिरूपणहेतुः)

दोषानपरिसङ्ख्येयान् मन्यमानाः वयं पुनः।
साध्वीरेवाभिधास्यामस्ता दुष्टा यास्त्वलक्षणा ।।१०७।।

अन्वय— दोषान् अपरिसङ्ख्येयान् मन्यमानाः वयं पुनः साध्वीः एव अभिधास्यामः। याः तु अलक्षणाः ताः दुष्टाः।

शब्दार्थ— दोषान् = दोषों को। अपरिसङ्ख्येयान् = असङ्ख्य, अपरिमित, अगणित अथवा व्याख्यान के अयोग्य। **मन्यमानाः** = मानते हुए, समझते हुए। वयं = पुनः हम तो। साध्वीः = शिष्ट (पहेलियों) को। एव = ही। अभिधास्यामः = अभिहित करेंगे, कहेंगे, निरूपित करेंगे। याः तु = जो। अलक्षणा = (पूर्वोक्त समाहिता इत्यादि पहेलियों के) लक्षणों से रहित हैं, ताः = वे। दुष्टाः = दोषयुक्त (सदोष हैं)।

अनुवाद— दोषों (दोषयुक्त पहेलियों) को अपरिमित (असङ्ख्य) (अथवा व्याख्यान के अयोग्य) समझते हुए हम शिष्ट (पहेलियों) को ही निरूपित करेंगे। जो (पूर्वोक्त समाहिता इत्यादि पहेलियों के) लक्षणों से रहित हैं, वे दोषयुक्त (सदोष) (पहेलियाँ हैं)।

संस्कृतव्याख्या— साधुप्रहेलिकानां निरूपणस्य कारणं दुष्टप्रहेलिकास्वरूपं च विवेचयत्यत्र- **दोषानिति**। **दोषान् अपरिसङ्ख्येयान्** अगणितान् व्याख्यानस्य अयो-

ग्यान् वा **मन्यमानाः** अवबोधयन्तः **वयं** पुनः **साध्वीः** शिष्टाः **एव** प्रहेलिकाः **अभिधा-स्यामः** व्याख्यास्यामः । **याः तु** प्रहेलिकाः **अलक्षणाः** पूर्वोक्तानां समाहितादीनां प्रहे-लिकानां लक्षणेन विहीनाः भवन्ति **ताः** तादृश्यः प्रहेलिकाः **दुष्टाः** सदोषाः भवन्ति

विशेष—

(१) दोषों की संख्या अपरिमित होने के कारण दोषयुक्त पहेलियों की सङ्ख्या भी असीमित हो जाती है अतः सभी का निरूपण करना असम्भव है।

(२) समाहित इत्यादि लक्षणों से रहित होने के कारण प्रहेलिकाओं में प्रहेलिकात्व ही नहीं रहता इसलिए वह व्याख्यान योग्य नहीं है।

(३) सोलह पहेली के प्रभेदों का निरूपण दण्डी ने पूर्ववर्ती आचार्यों के अनुसार किया है जिसमें से पदसन्धि के कारण निष्पन्न समानता नामक पहेली में दोष की सम्भावना नहीं है अतः वह सर्वथा शुद्ध रहेगी। सङ्कीर्णा पहेली से अन्य चौदह पहेलियों की प्रस्तुति में किसी लक्षण की त्रुटि के कारण ये ही चौदह पहेलियां दोषयुक्त हो सकती हैं।

(४) दण्डी के अनुसार सदोषा पहेलियों की सङ्ख्या अगणित हैं, इस लिए उनके प्रपञ्च में पड़ना अनावश्यक है।

(समाहिताप्रहेलिकानिदर्शनम्)

न मयागोरसाभिज्ञं चेतः कस्मात् प्रकुप्यसि ।
अस्थानरुषितै[1]रेभि[2]रलमालोहितेक्षणे[3] ॥१०८॥

अन्वय— आलोहितेक्षणे, मयागोरसाभिज्ञं चेतः न, कस्मात् प्रकुप्यसि, एभिः अस्थानरुषितैः अलम्।

शब्दार्थ— आलोहितेक्षणे = हे लाल आखों वाली (सुन्दरि)। मया = मेरे द्वारा। गोरसाभिज्ञं = गोरस (दूध, दही इत्यादि) के आस्वाद (रस) के प्रति परिचित। चित्तं = मन को। न = नहीं (धारण किया गया है)। कस्मात् = किस कारण से। प्रकुप्यसि = क्रोधित होती हो। एभिः = इन। अस्थानरुषितैः = विना स्थान वाले क्रोध सें, विना कारण क्रोध से। अलम् = क्या लाभ ?

---

(१) -रुदितैर्।

(२) एतैर्।

(३) -तेक्षणैः।

अनुवाद— हे लाल आखों वाली सुन्दरि, मेरे द्वारा गोरस (दूध, दही इत्यादि) के आस्वाद के प्रति परिचित मन को नहीं धारण किया गया है (अर्थात् मैंने तुम्हारा गोरस नहीं चुराया है), तुम किस कारण से क्रोधित हो रही हो। इस अकारण क्रोध से क्या लाभ ? (अर्थात् कोई लाभ नहीं है)।

संस्कृतव्याख्या— समाहितां प्रहेलिकां निदर्शयत्यत्र- **न मयेति**। **आलोहितेक्षणे** हे ईर्ष्यद्रक्तनेत्रे सुन्दरि, **मया गोरसाभिज्ञं** दधिदुग्धास्वादविज्ञं **चेतः** चित्तं **न** धार्यते इति शेषः, न तव गोरसमपहृतम् इत्यर्थः। तत् **कस्मात्** कारणात् मह्यं त्वं **प्रकुप्यसि** क्रुध्यसि। **एभिः** त्वत्कृतैः **अस्थानरुषितैः** अकारणक्रोधैः **अलं** को लाभः, मा क्रुध इत्यर्थः। अयं तावर्थः अविवक्षितार्थः लोके गोप्यवृत्तान्तसंवरकः, अनेन जनेन अस्याः सुन्दर्याः गोरसंमपहृतम् अत एव अस्मै क्रुध्यतीति सर्वैः अबोधनीयम् परञ्च विवक्षितार्थस्तु पदसन्धिना निगूढः विद्यते। स च 'मयागोरसाभिज्ञः' इत्यस्य पदस्य सन्धिविच्छेदेन ज्ञायते। **मे** मम **आगोरसाभिज्ञः** आगसः परस्त्रीगमनरूपस्य अपराधस्य रसे आस्वादे अभिज्ञम् परिचितं चित्तं मनः **न** धार्यते तत् **कस्मात्** कारणात् निरपराधे मयि प्रकुप्यसि इति सन्धिविच्छेदेन ज्ञायते। एवं पदसन्धिना विवक्षितार्थस्य निगूढत्वादेषा समाहिता नाम प्रहेलिका।

विशेष—

(१) इस पहेली में प्रिय के अपराध न करने पर भी मान करने वाली नायिका को नायक द्वारा मनाने का वर्णन किया गया है।

(२) यहाँ मयागोरसाभिज्ञ पद में 'मे' और 'आगोरसाभिज्ञ' दो पदों की सन्धि हुई है। इस पद को मया गोरसाभिज्ञ पद भ्रमित कर देता है अर्थात् मैंने गोरस को नहीं चुराया है, किन्तु प्रणयमान का गोरस-चोरी से सम्बन्ध होना असङ्गत है। अतः गम्भीर विचार करने पर प्रणयमान से सम्बन्धित निगूढ़ विवक्षित अर्थ सन्धिविच्छेद करने पर 'मे आगोरसाभिज्ञः' = मेरा परस्त्रीगमनरूप अपराध से परिचित मन नहीं है (अर्थात् मैं परस्त्रीगमनरूप अपराध से परिचित नहीं हूँ) स्पष्ट होता है। इस प्रकार यहाँ दो पदों की सन्धि द्वारा विवक्षित अर्थ का गोपन किया गया है, अतः यह समाहिता नामक पहेली है।

(३) इसका अभिप्रेत अर्थ है- मेरा चित्त परस्त्री को सताने रूप अपराध का अभ्यस्त नहीं है, तुम अकारण क्यों क्रोधित होती हो, इस क्रोध से क्या लाभ है।

(वञ्चिताप्रहेलिकानिदर्शनम्)

कुब्जामासेवमानस्य यथा ते वर्धते रतिः ।
नैवं निर्विशतो नारीरमरस्त्रीविडम्बिनीः ।।१०९।।

अन्वय— कुब्जाम् आसेवमानस्य ते यथा रतिः वर्धते एवम् अमरस्त्रीविडम्बिनीः नारीः निर्विशतः न ।

शब्दार्थ— कुब्जाम् = कुब्जा को । आसेवमानस्य = सेवित करते हुए, रमण करते हुए । ते = तुम्हारा । यथा = जैसा, जिस प्रकार का, जितना । रतिः = अनुराग, आनन्द । वर्धते = बढ़ता है । एवं = वैसा, उतना । अमरस्त्रीविडम्बिनीः = देवास्त्रियों के समान । नारीः = स्त्री को । निर्विशतः = सेवित करते हुए, रमण करते हुए । न = नहीं बढ़ता है ।

अनुवाद— कुब्जा के साथ रमण करते हुए तुम्हारा जितना अनुराग बढ़ता है उतना (अन्य) देवस्त्रियों के समान स्त्री के साथ रमण करते हुए नहीं (बढ़ता है)।

संस्कृतव्याख्या— वञ्चितां प्रहेलिकां निदर्शयत्यत्र– **कुब्जामिति** । **कुब्जां** न्युब्ज-पृष्ठाम् एताम् स्त्रीम् **आसेवमानस्य** रममाणस्य **ते** तव **यथा** यादृशी **रतिः** अनुरागः आनन्दः वा **वर्धते** वृद्धिं प्राप्यते **तथा** तादृशी रतिः **अमरस्त्रीविडम्बिनीः** देवस्त्री-सदृशीः **नारीः** अन्याः स्त्रीः **निर्विशतः** रममाणस्य तव **न** वृद्धिं प्राप्यते । विवक्षितो-ऽर्थोऽत्र कुब्जाम् कुब्जाख्यं स्थानविशेषं आसेवमानस्य तव इति कुब्जाख्यं बाद्यविशेष-मासेवमानस्य तव वा इति रूपः । सः चार्थः कुब्जेति न्युब्जपृष्ठास्त्रीकृते रूढार्थेन पदेन प्रवञ्चार्थं निगूहितं इत्यत्र वञ्चिता नाम प्रहेलिका ।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में कुबडी के अर्थ में प्रसिद्ध कुब्जा पद के प्रयोग से उसके विवक्षित अर्थ से भिन्न अन्य अर्थ में ग्रहण करके अभिप्रेत अर्थ 'कान्यकुब्ज नामक स्थान-विशेष में निवास करने से अथवा कुब्जा नामक वाद्य-विशेष के वादन करने से' को छिपाया गया है, अतः यहाँ वञ्चिता प्रहेलिका है ।

(२) इस पद्य का अभिप्रेत अर्थ है– (कान्य) कुब्ज (नामक स्थान-विशेष) में निवास करते हुए (आसेवमान) अथवा कुब्जा नामक वाद्य-विशेष को बजाते हुए तुम्हारा जितना आनन्द बढ़ता है उतना देवस्त्रीसदृश रमणियों के साथ रमण करने से भी नहीं बढ़ता ।

(व्युत्क्रान्ताप्रहेलिकानिदर्शनम्)

दण्डे चुम्बति पद्मिन्या हंसः कर्कशकण्टके ।
मुखं वल्गुरवं कुर्वंस्तुण्डेनाङ्गानि घट्टयन् ।।११०।।

अन्वय— कर्कशकण्टके दण्डे अङ्गानि घट्टयन् बल्गुरवं कुर्वन् हंसः तुण्डेन पद्मिन्याः मुखं चुम्बति ।

शब्दार्थ— कर्कशकण्टके = कठोर काँटों वाले । दण्डे = मृणाल में, कमलनाल में । अङ्गानि = अङ्गों को । घट्टयन् = रगड़ता हुआ, खुजलाता हुआ । बल्गुरवं = मधुर कलरव को, मधुर ध्वनि को । कुर्वन् = करता हुआ । हंसः = हंस । तुण्डेन = (अपनी) चोंच से । पद्मिन्या = कमलिनी के । मुखं = मुख को । चुम्बति = चूमता है ।

अनुवाद— कठोर काटों वाले मृणाल (कमल-नाल) में (अपने) अङ्गों को रगड़ता हुआ और मधुर ध्वनि करता हुआ हंस (अपनी) चोंच से कमलिनी के मुख को चूमता है ।

संस्कृतव्याख्या— व्युत्क्रान्तां प्रहेलिकां निदर्शयत्यत्र- **दण्ड इति** । **कर्कश-कण्टके** कठोरकण्टकयुक्ते **दण्डे** कमलिनीमृणालदण्डे **अङ्गानि** स्वशरीराङ्गानि **घट्टयन्** कण्डूयमानः **बल्गुरवं** मधुरकलरवं **कुर्वन्** निस्सारयन् **हंसः** पक्षिविशेषः **तुण्डेन** स्व-चञ्चुना **पद्मिन्याः** कमलिन्याः मुखं **चुम्बति** चुम्बनं करोति । अत्र दण्डे, अङ्गानि, पद्मिन्याः मुखं तुण्डेन चुम्बति इति परस्परासामीप्यसापेक्षाणां पदानां अत्यधिकव्यवधानेन प्रयोगात् सामीप्यस्य व्युत्क्रान्ताद् व्युत्क्रान्ता नाम प्रहेलिका ।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में परस्पर सामीप्य की अपेक्षा वाले 'दण्डे अङ्गानि पद्मिन्याः मुखं तुण्डेन चुम्बति' पदों का अत्यधिक व्यवधान के साथ प्रयोग होने से व्यामोह होने के कारण यह व्युत्कान्ता पहेली हैं ।

(२) व्यामोहनरूप प्रयोजन न होने पर वह वाक्यदोष माना जाएगा क्योंकि इस व्यवधान के कारण विवक्षित अर्थ में बाधा उत्पन्न होती है ।

(प्रमुषिताप्रहेलिकानिदर्शनम्)

खातयः कनि काले ते स्फातयः स्फीत[१]वल्गवः ।
चन्द्रे साक्षाद्भवन्त्यत्र वायवो[२] मम चारिणः[३] ।।१११।।

---

(१) स्फार्ह ।

(२) तायवो ।　(३) धारिणः ।

अन्वय— कनि, ते चन्द्रे काले स्फातयः स्फीतवल्गवः खातयः साक्षात् भवन्ति, मम वायवः चारिणः भवन्ति।

शब्दार्थ— कनि = हे बाले। ते = तुम्हारे। चन्द्रे = आह्लादक। काले = चरणों में, पैरों में। स्फातयः = प्रभूत, अत्यधिक। स्फीतवल्गवः = सान्द्र मधुर ध्वनि करने वाले। खातयः = घुँघरू। साक्षात् भवन्ति = दिखलायी पड़ रहे हैं। मम = मेरे। वायवः = प्राण। चारिणः = सञ्चरण करने वाले, निकलने वाले। भवन्ति = हैं।

अनुवाद— हे बाले, तुम्हारे आह्लादक पैरों में (ये) अत्यधिक सान्द्र मधुर ध्वनि करने वाले घुँघरू दिखलायी पड़ रहें हैं और (ऐसी कामोद्दीपक स्थिति में) मेरे प्राण निकलने वाले हैं।

संस्कृतव्याख्या— प्रमुषितां प्रहेलिकां निदर्शयत्यत्र- **खातय इति**। **कनि** हे बाले **ते** तव बालायाः **चन्द्रे** आह्लादके **काले** चरणे **स्फातयः** प्रभूताः **स्फीतवल्गवः** सान्द्रमधुरध्वनिताः **खातयः** घर्घरिकाः **साक्षात् भवन्ति** प्रत्यक्षं दृश्यन्ते एवं कामोद्दीपकस्थित्यां **मम वायवः** प्राणाः **चारिणः** शरीराद् निर्गमनाय प्रवृताः भवन्ति सन्ति। अत्र अप्रसिद्धार्थानां दुर्बोधगम्यानां खातिकनीकालस्फातिवल्गुचन्द्रवायुपदानां प्रयोगेण प्रहेलिका विरचिता विद्यते, अत एवार्थप्रमोषात् प्रमुषिता प्रहेलिका।

विशेष—

(१) प्रस्तुत पहेली में ते, मम और स्फीत पदों को छोड़कर प्रयुक्त शेष सभी पद लोक में अप्रसिद्ध होने के कारण दुर्बोधगम्य है। ऋग्वेद में प्राप्त कन्यार्थक कनी शब्द का सम्बोधन एकवचन में 'कनि' पद प्रयुक्त है जो लौकिक संस्कृत में प्रयोग में नहीं लाया जाता। इसी प्रकार क्रमशः खोदना, समय, वृद्धि, सुन्दर, चन्द्रमा और हवा के अर्थ में प्रयुक्त ऋग्वेदीय पर खाति, काल, स्फाति, बल्गु, चन्द्र और वायु पदों का अप्रसिद्ध दुर्बोधसाध्य अर्थों क्रमशः घुँघरू, पैर, प्रभूत, ध्वनि, आह्लादकारी और प्राण के लिए प्रयोग किया गया है। अर्थ का प्रमोषत्व होने के कारण यह प्रमुषिता पहेली है।

(२) खस्य आकाशस्यायं खः शब्दः तस्य अतिः प्राप्तिः येषु ते खातयः शब्द करने वाली नूपुर, घँघरू इत्यादि आभूषण। काल्यते प्रेर्यते उत्क्षिप्यते असौ कालः पदम् अर्थात् जिसको उत्क्षिप्त किया जाता है वह काल अर्थात् पैर। स्फायनं स्फा वृद्धिः तस्याः अतिः गतिः यत्र ते स्फातयः अर्थात् (वृद्धि) की गति (अति) है जिसमें ऐसे स्फातयः अर्थात् वृद्धि (प्रभूत) वाले, अधिकता से युक्त। वल्यते उच्चार्यते इति वल्गुः ध्वनिः अर्थात् जो उच्चारित किया जाता है, वह वल्गु

(ध्वनि)। चन्द्रते आह्लादते इति चन्द्रः अर्थात् जिसके द्वारा आह्लादित किया जाता है, वह चन्द्र (आह्लादक)। वान्ति वहन्ति शरीरं ये ते वायवः प्राणाः अर्थात् जो शरीर को वहन करते हैं वे वायवः (प्राण) हैं।

(३) इस पद्य में रूढिच्युतदोष है किन्तु प्रहेलिका होने के कारण यह दोष के गुण रूप में परिवर्तित हो जाता है।

(समानरूपाप्रहेलिकानिदर्शनम्)

अत्रोद्याने मया दृष्टा वल्लरी[१] पञ्चपल्लवाः।
पल्लवे पल्लवे ताम्रा[२] यस्यां[३] कुसुममञ्जरी ।।११२।।

अन्वय— अत्र उद्याने मया पञ्चपल्लवा वल्लरी दृष्टा यस्यां पल्लवे पल्लवे ताम्रा कुसममञ्जरी (अस्ति)।

शब्दार्थ— अत्र = यहाँ, इस। उद्याने = उपवन में। मया = मेरे द्वारा। पञ्चपल्लवा = पाँच कोपलों वाली। वल्लरी = लता। दृष्टा = देखी गयी। यस्यां = जिस (लता) के। पल्लवे पल्लवे = प्रत्येक कोंपल में। ताम्रा = ताम्र वर्ण वाली। कुसुममञ्जरी = पुष्पमञ्जरी (शोभायमान) है।

अनुवाद— इस उपवन में मेरे द्वारा पाँच कोंपलों वाली (एक) लता देखी गयी, जिस (लता) के प्रत्येक कोपल में ताम्र वर्ण वाली पुष्पमञ्जरी (शोभायमान) है।

संस्कृतव्याख्या— समानरूपां प्रहेलिकां निदर्शयत्यत्र– **अत्रेति**। **अत्र** अस्मिन् **उद्याने** उपवने **मया पञ्चपल्लवा** पञ्चकिसलयसम्पन्ना **वल्लरी** लता **दृष्टा** विलोकिता **यस्यां** लतायां **पल्लवे पल्लवे** प्रतिपल्लवं **ताम्रा** ताम्रवर्णा **कुसुममञ्जरी** पुष्पमञ्जरी शोभायमाना विद्यते। अत्र उद्यानादिपदानि गौणार्थयुक्तानि प्रयुक्तानि सन्ति तत्र **उद्याने** उद्यानरूपे नायिकाशरीरे **मया पञ्चपल्लवाः** पञ्चकिसलयरूपा पञ्चाङ्गुलिसम्पन्ना **वल्लरी** लतारूपा तस्या नायिकायाः बाहुः **दृष्टा** विलोकिता यस्यां बाहुलतायां **पल्लवे पल्लवे** प्रतिकिसलयं **ताम्रा** ताम्रवर्णा **कुसुममञ्जरी** पुष्पमञ्जरीरूपा नखदीधितिः शोभायमाना विद्यते इति गौणार्थाः विवक्षितार्थाः वा साध्यवसानम् आरोपिताः। एवं मया नायिका-शरीरे पञ्चाङ्गुलिसम्पन्ना बाहुलता अवलोकिता यत्र तदीयासु अङ्गुलीषु ताम्रवर्णा प्रभा सुशोभिता इति गूढार्थः। अत एव गौणार्थारोपणादत्र समानरूपा प्रहेलिका।

---

(१) मञ्जरी।

(२) चार्द्रा, सान्द्रा।

(३) यस्याः।

विशेष—

(१) प्रस्तुत पद्य में मुख्यार्थ रूप से तो किसी उद्यान की लता का वर्णन हुआ है किन्तु उस पर विवक्षित विरचित यह पहेली समानरूपा पहेली है ।

(२) पद्य का गौणार्थ इस प्रकार है– (नायिका के) उद्यानरूपी शरीर में मेरे द्वारा पाँच पल्लवरूपी अङ्गुलियों से सम्पन्न लतारूपी भुजा को देखा गया जिस लतारूपी भुजा के प्रत्येक पल्लवरूपी अङ्गुलियों में ताम्रवर्ण वाली पुष्पमञ्जरीरूपी नखप्रभा (शोभायमान है) ।

(परुषाप्रहेलिकानिदर्शनम्)

सुराः सुरालये स्वैरं भ्रमन्ति दशनार्चिषा ।
मज्जन्त इव मत्तास्ते सौरे सरसि सम्प्रति ।।११३।।

अन्वय— ते मत्ताः सुराः सम्प्रति सौरे सरसि मज्जन्तः इव दशनार्चिषा सुरालये स्वैरं भ्रमन्ति ।

शब्दार्थ— ते = वे । मत्ताः = उन्मत्त । सुराः = मदिरापान करने वाले । सम्प्रति = इस समय । सौरे = मदिरा वाले । सरसि = तालाब में, कुण्ड में । मज्जन्तः इव = मानो स्नान करते हुए । दशनार्चिषा = (अट्टहास के कारण अपने) दाँतों की प्रभा (को दिखलाने) के साथ । सुरालये = मदिरागृह में । स्वैरं = स्वतन्त्रता-पूर्वक, निर्बाधरूप से । भ्रमन्ति = घूम रहे हैं ।

अनुवाद— वे उन्मत्त मदिरापान करने वाले (शराबी) लोग इस समय मदिरा वाले कुण्ड में मानो स्नान करते हुए तथा (अट्टहास के कारण अपने) दाँतों की प्रभा (को दिखलाने) के साथ मदिरागृह (मधुशाला) में स्वतन्त्रतापूर्वक (निर्बाध) घूम रहे हैं ।

संस्कृतव्याख्या— परुषां प्रहेलिकां निदर्शयत्यत्र– **सुरा इति** । **ते** पुरोदृश्यमानाः **मत्ताः** उन्मत्ताः प्रसन्नाः वा **सुराः** सुरापानकर्त्तारः सुरापायिनः **सम्प्रति** अस्मिन् समये **सौरे** सुरासम्बन्धिनि मदिरायुक्ते **सरसि** कुण्डे **मज्जन्तः इव** अवगाहमानः इव **दशना-र्चिषा** अट्टहासेन प्रकटितया दन्ताभया उपलक्षिता इति शेषः **सुरालये** मदिरागृहे मधुशालायां **स्वैरं** स्वेच्छानुसारं **भ्रमन्ति** पर्यटन्ति । अत्र सुरापानकर्तृकार्थे सामान्यरूपेण देवपर्यायः सुरपदः, सुरायाः इत्यस्मिन्नर्थे सूर्यसम्बन्धि इदमिति सौरपदः सौरशब्दः प्रसिद्धः व्याकरणसूत्रानुसारेणैव निष्पद्येते इत्यर्थावगमपारुष्यादत्र परुषा नाम प्रहेलिका ।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में सुरापान करने वाले के अर्थ में देववाची सुर शब्द और मदिरासम्बन्धी अर्थ में सूर्यवाचक सौर शब्द का प्रयोग हुआ है। उक्त अर्थों में इनका प्रयोग व्याकरण के सूत्रों द्वारा ही निष्पन्न होता है। यहाँ अभिप्रेत अर्थ दुर्बोध है जो व्याकरणशास्त्रीय नियमों से प्राप्त होता है। इस प्रकार विवक्षित अर्थ दुर्बोध होने के कारण परुषा नामक पहेली है। इस पहेली का सामान्य ग्राह्य अर्थ इस प्रकार है- ये प्रसन्न (मत्ता) देवता लोग (सुराः) इस समय (सम्प्रति) देवतासम्बन्धी (सौरे) सरोवर (ह्रद, सरसि) में मानो स्नान करते हुए (मज्जन्तः इव) और हास्यछटा को विखेरते से दन्तप्रभा को दिखलाते हुए (दशनार्चिषा) देवगृह (स्वर्ग, सुरालय) में अपनी इच्छानुसार (स्वैरं) घूम रहे हैं (भ्रमन्ति)।

(सङ्ख्याताप्रहेलिकानिदर्शनम्)

नासिक्यमध्या परितः चतुर्वर्णविभूषिता[१] ।
अस्ति काचित् पुरी यस्यामष्टवर्णाह्वया नृपाः ।।११४।।

अन्वय— नासिक्यमध्या परितः चतुर्वर्णविभूषिता काचित् पुरी अस्ति, यस्याम् अष्टवर्णाह्वयाः नृपाः (विद्यन्ते)।

शब्दार्थ— नासिक्यमध्या = नासिक्य (वर्ण) है मध्य में जिसके ऐसी, मध्य में नासिक्य (वर्ण) से युक्त। परितः = (उस नासिक्य वर्ण के) दोनों ओर। चतुर्वर्णविभूषिता = चार वर्णों (दो वर्ण पहले और दो वर्ण पीछे) से विभूषित। काचित् = कोई। पुरी = नगरी। अस्ति = है। यस्यां = जिस (नगरी) में। अष्टवर्णाह्वयाः = आठ वर्णों से निष्पन्न नाम वाले। नृपाः = राजा लोग (शोभायमान होते हैं)।

अनुवाद— मध्य में नासिक्य (वर्ण) से युक्त और दोनों ओर चार वर्ण (दो वर्ण आगे और दो वर्ण पीछे) से विभूषित कोई नगरी है जिस (नगरी) में आठ वर्णों से निष्पन्न नाम वाले राजा लोग (शोभायमान होते हैं)।

संस्कृतव्याख्या— सङ्ख्यातां प्रहेलिकां निदर्शयत्यत्र- **नासिक्येति**। **नासिक्यमध्येति** नासिक्यः वर्णः मध्ये यस्याः तादृशी **परितः** तं नासिक्यं वर्णम् उभयतः **चतुर्वर्णविभूषिताः** चतुर्भिः वर्णैः विराजिता द्वाभ्यामादौ द्वाभ्यामन्ते च युक्ता **काचित्** कापि **पुरी** नगरी अस्ति **यस्यां** नगर्याम् **अष्टवर्णाह्वयाः** अष्टाभिः वर्णैः निष्पन्नः आह्वयः नामधेयः येषां तादृशाः **नृपाः** राजानः विराजन्ते इति शेषः। अत्र काञ्ची इति विवक्षिता नगरी विद्यते अस्याः मध्ये नासिक्यः वर्णः ञकारः विद्यते। ञकारस्य आदौ

(१) चातुर्वर्ण्य-।

'क्आ' इति अन्ते च च् ई इति एवं चत्वारो वर्णाः विराजन्ते। यस्यां नगर्याम् अष्टवर्णयुताः 'पल्लवाः' इति नामधेयाः राजानः दण्डिसमये अभवन्। इत्यत्र सङ्ख्यावाचिभ्यां चतुरष्टवर्णपदाभ्यां व्यामोहः कृतः, अत एव एषा सङ्ख्याता प्रहेलिका।

विशेष—

(१) इस पद्य में किसी राजधानी तथा उसके शासकों के नाम का निर्देश किया गया है। यह नामनिर्देश सङ्ख्यावाचक पदों के प्रयोग द्वारा हुआ है। यहाँ चार और आठ सङ्ख्यावाचक पदों से व्यामोह उत्पन्न करने से यह सङ्ख्याता नामक पहेली है।

(२) इस पद्य में वर्णित अभिप्रेत नगरी 'काञ्ची' है। इस 'काञ्ची' के मध्य में नासिक्य वर्ण ञकार है तथा ञकार के पहले ककार और आकार तथा बाद में चकार और ईकार– ये दो दो वर्ण हैं। इस प्रकार ञकार के दोनों ओर मिलकर कुल चार वर्ण हैं। इसी प्रकार उसमें राज्य करने वाले राजाओं का नामनिर्देश किया गया है। राजाओं का नाम आठ वर्णों वाला है। दण्डी के समय में शासन करने वाले आठवर्ण युक्त नाम वाले राजा पल्लव थे। पल्लवाः प्रथमा बहुवचन में भी आठवर्ण है– प् अ् ल् ल् अ् व् आ और विसर्ग। यहाँ 'काञ्ची' और 'पल्लवाः' इस अभिप्रेत नाम के लिए सङ्ख्यावाचक पद चारवर्ण और आठवर्ण का प्रयोग हुआ है जो व्यामोहकारक है।

(प्रकल्पिताप्रहेलिकानिदर्शनम्)

गिरा स्खलन्त्या नम्रेण शिरसा दीनया दृशा।
तिष्ठन्तमपि सोत्कम्पं[1] वृद्धे मां नानुकम्पसे ।।११५।।

अन्वय— वृद्धे, स्खलन्त्या गिरा नम्रेण शिरसा दीनया दृशा सोत्कम्पं तिष्ठन्तं माम् अपि न अनुकम्पसे।

शब्दार्थ— वृद्धे = अरी बुढ़िया। स्खलन्त्या = लड़खड़ाती हुई। गिरा = वाणी द्वारा। नम्रेण = विनम्र। शिरसा = सिर द्वारा। दीनया = कातर। दृशा = आखों द्वारा। सोत्कम्पं = कम्पायमान। तिष्ठन्तम् अपि = खड़े हुए भी। मां = मुझको। न अनुकम्पसे = अनुगृहीत नहीं कर रही हो।

अनुवाद— अरी बुढ़िया, (अनुरागवश) लड़खड़ायी हुई वाणी, विनम्रसिर तथा (वासनापूर्ति से) कातर दृष्टि के साथ (तुम्हारे सम्मुख) कापते हुए भी खड़े मुझको अनुगृहीत नहीं कर रही हो।

---

(१) सोत्कण्ठं।

संस्कृतव्याख्या— प्रकल्पितां प्रहेलिकां निदर्शयत्यत्र– **गिरेति**। **वृद्धे** हे जरठे, **स्खलन्त्या** अनुरागवशात् गद्गदस्वरया **गिरा** वाण्या **नम्रेण** प्रणयनिवेदनात् विनम्रेण **शिरसा** मूर्ध्ना **दीनया** अभीष्टरागविषयासिद्धे कातरेण **दृशा** दृष्ट्या च **सोत्कम्पं** तव सम्मुखं कम्पायमानं **तिष्ठन्तं** स्थितम् अपि **मां न अनुकम्पसे** न अनुगृहीतं करोषि। अत्र वृद्धाया कृते एतद् नोचितमिति भावः। एषस्तु सामान्यरूपेण भासमानोऽर्थः किन्तु विवक्षितार्थोऽन्य एव। तदर्थस्त्वेवम्– हे **वृद्धे** पुरातनपुरुषस्य विष्णोः पत्नि लक्ष्मि द्रारिद्रयात् **स्खलन्त्या** गद्गदस्वरया **गिरा** वाचा, भक्त्या नम्रेण विनम्रेण **शिरसा** मूर्ध्ना **दीनया** कातरया च **दृशा** दृष्ट्या कृशत्वात् **सोत्कम्पं** कम्पमानं **तिष्ठन्तं** त्वामभितिष्ठ-मानं मां दरिद्रं **नानुकम्पसे** न अनुगृह्णासि इति। अत्र वाक्यार्थस्य वास्तविकतायाः विपर्ययेण प्रतिभासमानात् कल्पिता प्रहेलिका।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में इस प्रकार से वर्णन किया गया है कि विवक्षित अर्थ से अन्य अर्थ प्रतिभासित है। इस पद्य मे विवक्षित अर्थ से किसी दरिद्र व्यक्ति द्वारा अपनी दीनदशा का वर्णन करते हुए लक्ष्मी से कृपा करने की प्रार्थना की गयी है। वह लक्ष्मी को वृद्धे सम्बोधन से सम्बोधित करता है क्योंकि लक्ष्मी वृद्ध अर्थात् पुरातन पुरुष की पत्नी होने के कारण वृद्धा हैं अथवा वृद्धि स्वभाव वाली होने के कारण वृद्धा है अथवा वृद्धि (समृद्धि) से सम्बोधित करके उनसे अपने पर अनुग्रह न करने की शिकायत करता है। जबकि प्रतिभासित अर्थ इससे पूर्णतः भिन्न है, जिसको अनुवाद में दिखलाया गया है। अतः यह प्रकल्पिता नामक प्रहेली है।

(२) पद्य का विवक्षित अर्थ इस प्रकार है– हे लक्ष्मि, (दरिद्रता के कारण) गद्गदपूर्ण वाणी, (भक्ति के कारण) विनम्र शिर और कातर दृष्टि से तुम्हारे सम्मुख (कृशता से) काँपते हुए मुझ पर अनुग्रह नहीं कर रही हो।

(नामान्तरिताप्रहेलिकानिदर्शनम्)

आदौ राजेत्यधीराक्षि पार्थिवः कोऽपि गीयते।
सनातनश्च नैवासौ राजा नापि सनातनः ।।११६।।

अन्वय— अधीराक्षि, कोऽपि पार्थिवः आदौ राजा इति गीयते, सनातनः च (कथ्यते परञ्च) असौ न राजा, न अपि सनातनः (विद्यते)।

शब्दार्थ— अधीराक्षि = हे चञ्चल नेत्रों वाली! कोऽपि = कोई। पार्थिवः = पृथ्वीपति। आदौ = सर्वप्रथम। राजा इति = राजा इस प्रकार। गीयते = कहा जाता

है। सनातनः च = और सनातन कहा जाता (है)। असौ = वह। न राजा = न तो राजा है। न अपि = न तो। सनातनः = नित्य है।

अनुवाद— हे चञ्चल नेत्रों वाली सुन्दरि, कोई पृथ्वी पति सर्वप्रथम राजा कहा जाता है और सनातन भी (कहा जाता है), किन्तु वह न तो राजा है और न तो नित्य है (बताओ वह क्या है)?

संस्कृतव्याख्या— नामान्तरितां प्रहेलिकां निदर्शयत्यत्र- **आदाविति**। **अधीराक्षि** हे चञ्चलनेत्रे सुन्दरि **कोऽपि पार्थिवः** पृथ्वीपतिः **आदौ** सर्वप्रथमं **राजा इति गीयते** उच्यते **सनातनः** चापि कथ्यते। परञ्च **असौ** पूर्वोक्तः पार्थिवः **न राजा** न तु राजा वर्तते **नापि सनातनः** न च नित्यः विद्यते कथय कस्तावाद् असौ पार्थिवः इति प्रश्नः। प्रहेलिकायाः उत्तरं चाप्यत्रैव विद्यते। असौ **पार्थिवः** पृथ्वीप्रभवः वृक्षविशेषः आदौ स्वाभिधस्य पूर्वं राजा इति **गीयते** कथ्यते **सनातनः** न अतनः तन इति शब्दरहितः न विद्यते। एवं राजातनं नाम असौ पर्थिवः वृक्षविशेषः विद्यते। एवंभूता सः न तु राजा न च सनातनः विद्यते। राजातनं नाम प्रियालवृक्षः। अत्र राजातनेति नाम सुगूढम्। अन्तरितत्वाद् तद्विवरणार्थं चानेकवस्त्वन्तरकल्पनाप्रसङ्गेन नामान्तरिता नाम प्रहेलिका।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में पार्थिव को पहले राजा और सनातन कह कर उसका निषेध किया गया है। इससे श्रोता की बुद्धि भ्रमित हो जाती है किन्तु यहाँ पार्थिव का अर्थ राजा अभिप्रेत नहीं है प्रत्युत पृथ्वी से प्रादुर्भूत वृक्ष अर्थ विवक्षित है। कोई वृक्ष ऐसा है जिसके नाम के आदि में राजा है और वह (स) अतन (तन शब्द से रहित) नहीं है, अर्थात् तन है। इस प्रकार उसका नाम राजातन है। यह राजातन वृक्ष है जो न तो राजा है और न ही सनातन (नित्य) है। इस प्रकार 'राजातन' वृक्ष के नाम में अनेक अर्थों की विधि और निषेध रूप की कल्पना की गयी है। अतः यहाँ नामान्तरिता प्रहेलिका है।

(२) पद्य का विवक्षित अर्थ प्रकार है- कोई पार्थिव (वृक्ष) है (जिसके नाम के) आरम्भ में राजा पद है। वह (नाम) अतन (=तन शब्द से रहित) नहीं है (अर्थात् इस राजा के साथ तन शब्द जुडा हुआ है) वह (राजातन नाम वाला वृक्ष) न तो राजा है और न ही सनातन (नित्य) है। इस प्रकार वह राजातन वृक्षविशेष है।

(निभृताप्रहेलिकानिदर्शनम्)

हतद्रव्यं नरं[1] त्यक्त्वा[2] धनवन्तं व्रजन्ति काः ।
नानाभङ्गिसमाकृष्ट[3]लोका वेश्या न दुर्धराः ।।११७।।

अन्वय— हतद्रव्यं नरं त्यक्त्वा नानाभङ्गिसमाकृष्टलोकाः काः धनवन्तं व्रजन्ति, (परञ्च ताः) दुर्धराः वेश्याः न (विद्यन्ते)।

शब्दार्थ— हतद्रव्यं = अपहृत कर लिया गया है धन जिसका ऐसे, अपहृत कर लिये गये धन वाले। नरं = व्यक्ति को। त्यक्त्वा = छोड़कर। नानाभङ्गिसमाकृष्ट-लोकाः = विविध भावभङ्गिमाओं से सभी लोगों को आकृष्ट करने वाली। काः = कौन। धनवन्तं = धनी (व्यक्ति) के पास। व्रजन्ति = जाती है। दुर्धराः = कठिनता से धारण करने योग्य। वेश्याः = वेश्याएँ। न = नहीं हैं।

अनुवाद— अपहृत कर लिये गये धन वाले व्यक्ति को छोड़कर विविध भाव-भङ्गिमाओं से सभी लोगों को आकृष्ट करने वाली (वे) कौन हैं (यह बताओं जो) धनी (व्यक्ति) के पास जाती हैं (किन्तु) वे कठिनाई से धारण करने योग्य वेश्याएँ नहीं हैं।

संस्कृतव्याख्या— निभृतां प्रहेलिकां निदर्शयत्यत्र- **हतद्रव्यमिति**। **हतद्रव्यं** हृतम् अपहृतं द्रव्यं यस्य तादृशं **नरं** पुरुषं **त्यक्त्वा** परित्यज्य **नानाभङ्गिसमाकृष्ट-लोकाः** नानाभङ्गिभिः विविधाभिः भङ्गिभिः भावभङ्गिभिः कुशलचेष्टाभिः समाकृष्टाः स्ववशीकृताः लोकाः याभिः तादृश्यः **काः धनसम्पन्नं** पुरुषं व्रजन्ति गच्छन्ति परञ्च ताः **दुर्धराः** दुःखेन धारयितुं वशीकर्त्तुं शक्याः **वेश्याः** प्रोक्तगुणविशिष्टाः गणिकाः **न** विद्यन्ते, अयं प्रश्नः। अर्थोऽयं प्रतिभासितः। निगूढार्थस्त्वेवमेव- **नानाभङ्गिसमाकृष्ट-लोकाः** नानाभङ्गिभिः विविधतरङ्गैः समाकृष्टाः सम्यग्रूणेन समीपमानीताः निमज्जिता। अवतरन्तः वा लोकाः जनाः याभिः तादृश्यः **दुर्धराः** दुर्वाराः च **काः** कं जलं धार-यतीति काः नद्यः **हतद्रव्यं** हृतानि अपनीतानि द्रव्याणि वृक्षस्य शाखापत्रादिरूपं विकारो-ऽवयवो यस्य तादृशं अपहृतवृक्षशाखापत्रादिरूपं **नरं** मुनष्यवदाश्रयप्रदं पर्वतम् **त्यक्त्वा** परित्यज्य **धनवन्तं** धनं रत्नं तैः सम्पन्नं रत्नाकरं सागरं **व्रजन्ति** गच्छन्ति। अत्र नदी-वेश्ययोः समानधर्मस्पृश्यन्त्या वाण्या नदीरूपो विवक्षितार्थः निगूढितः अत एव विव-क्षितार्थ निगूढत्वाद् निभृता नाम प्रहेलिका।

---

(१) जनं।

(२) हित्वा।

(३) -शताकृष्ट-।

विशेष—

(१) प्रस्तुत पद्य में आपाततः प्रतीत होने वाले वेश्या के समान धर्म वाले पदार्थ नदी को छिपाकर कथन किया गया है जो श्रोता के लिए व्यामोहकारी है अतः विवक्षित अर्थ के निगूढ (छिपा हुआ) होने के कारण निभृता नामक पहेली है।

(२) इस पद्य का निगूढ़ विवक्षित अर्थ इस प्रकार है– अपनी विविध तरङ्गों से अपनी ओर खीच लेने वाली (नानाभङ्गिसमाकृष्टलोकाः) दुर्निवार (दुर्धराः) नदियों (काः) हतद्रव्य (जिनके वृक्षों की शाखाएँ पत्र इत्यादि बहा दिये गये हैं, ऐसे) पुरुष सदृश (आश्रयदाता पर्वत, नर) को छोड़कर (त्यक्त्वा) रत्नाकर (समुद्र, धनवन्तं) के पास जाती हैं (व्रजन्ति), और वे वेश्याएँ (वेश्याः) नहीं है (न)।

(समानशब्दाप्रहेलिकानिदर्शनम्)

जितप्रकृष्टकेशाख्यो यस्तवाभूमिसाह्वयः[१] ।
असौ मामुत्कमधिकं[२] करोति कलभाषिणि ।।११८।।

अन्वय— कलभाषिणि, यः तव जितप्रकृष्टकेशाख्यः अभूमिसाह्वयः असौ माम् अधिकम् उत्कं करोति।

शब्दार्थ— कलभाषिणी = हे मधुर बोलने वाली (सुन्दरि)। यः = जो। तव = तुम्हारा। जितप्रकृष्टकेशाख्यः = पराजित कर दिया है प्रकृष्ट बाल (केश) अर्थात् प्रवाल नाम (आख्या) वाली मणि (अथवा कोंपल) जिसके द्वारा, प्रवाल नामक (मणि अथवा कोमल कोंपल) को पराजित कर देने वाला। अभूमिसाह्वयः = भूमि नहीं है आश्रय जिसका ऐसा (= अधर) नाम वाला। असौ = यह। माम् = मुझको। अधिकम् = अत्यधिक। उत्कम् = उत्कण्ठित। करोति = कर रहा है।

अनुवाद— हे मधुर बोलने वाली (सुन्दरि), जो तुम्हारा प्रवाल (मूँगा नामक मणि अथवा कोमल कोंपल) को पराजित कर देने वाला अधर है, यह मुझको अत्यधिक उत्कण्ठित कर रहा है।

संस्कृतव्याख्या— समानशब्दां प्रहेलिकां निदर्शयत्यत्र– **जितप्रकृष्टेति**। **कलभाषिणि** हे मृदुभाषिणि, **यः तव** मृदुभाषिण्याः **जितप्रकृष्टकेशाख्यः** केशस्य आख्या अभिधानः वालः, प्रकृष्टः वालः प्रवालः, जितः पराजितः प्रवालः तदभिधानः मणिः नवपल्लवः वा स्वारक्तप्रभया येन तादृशः विजितप्रवालमणिकान्तिः नवपल्लवप्रभा

---

(१) यस्ते ऽभूमिसमाह्वयः।

(२) सा मामद्य प्रभूतोत्कं, सुभूतोत्क।

वा। अभूमिसाह्वयः = न भूमिः धरा यस्येति अभूमिः अधरः वा तत्साह्वयाः अर्थतस्त-त्समानाख्यः अधरः इत्यर्थः, विद्यते इति शेषः, **असौ** तादृशोऽयं अधरः **माम् अधिकं** अत्यन्तम् **उत्कं** उत्कण्ठितम् चुम्बनायोत्सुकं वा **करोति**। प्रवालस्य अधरस्य च सङ्केताय क्रमेण प्रकृष्टकेशः अभूमिः इति चार्थतस्तत्पर्यायशब्दयोः प्रयोगादत्र समान-शब्दा प्रहेलिका।

विशेष—

(१) प्रस्तुत पद्य में प्रसिद्ध प्रबाल = प्रबाल को प्र + बाल में तोड़कर प्रकृष्ट (प्र) बाल केश से कल्पित पर्याय के द्वारा प्रयुक्त किया गया है। इसी प्रकार भूमि शब्द धरा का पर्याय है। अतः अभूमिः = अ-धर नाम वाला अधरोष्ठ के लिए कल्पना की गयी है। सुन्दरी के प्रवाल के समान रक्तवर्ण वाले अधर की प्रशंसा को इस प्रकार कल्पित पर्याय के द्वारा व्यामोहित करने वाले रूप में की गयी है। अतः यह समानशब्दा पहेली है।

(सम्मूढाप्रहेलिकानिदर्शनम्)

शयनीये परावृत्य शयितौ कामिनौ रुषा[१] ।
तथैव शयितौ रागात्स्वैरं मुखमचुम्बताम् ।।११९।।

अन्वय— रुषा शयनीये परावृत्य कामिनौ शयितौ, रागात् तथैव शयितौ, स्वैरं मुखम् अचुम्बताम्।

शब्दार्थ— रुषा = प्रणमकोप से, प्रणयमान के कारण। शयनीये = शय्या पर। परावृत्य = मुँह फेर कर। शयितौ =सोये हुए। कामिनौ = प्रेमी और प्रेमिका ने। रागात् = अनुराग के कारण। तथैव = उसी प्रकार। शयितौ एव = सोये हुए ही। स्वैरं = स्वच्छन्दतापूर्वक। मुखम् = (परस्पर) मुख को। अचुम्बताम् = चूमते रहे।

अनुवाद— प्रणयकोप के कारण शय्या पर मुँह फेर कर सोये हुए प्रेमी और प्रेमिका ने अनुराग के कारण (प्रणयकोप विनष्ट हो जाने पर) उसी प्रकार सोये हुए ही स्वच्छन्दतापूर्वक (परस्पर) मुख का चूमते रहे।

संस्कृतव्याख्या— सम्मूढां प्रहेलिकां निदर्शयत्यत्र- **शयनीये इति। रुषा** प्रणयमानेन **शयनीये** शय्यायां **परावृत्य** विमुखौ भूत्वा **शयितौ** शयमानौ **कामिनौ** कामिनी च कामी च एतौ द्वौ **रागात्** कोपापगमे अनुरागात् **तथैव** तेनेव प्रकारेण **शयानौ** एव शयमानौ एव **स्वैरं** स्वच्छन्दतापूर्वकं परस्परं **मुखम् अचुम्बताम्** चुम्बनम् अकुरुताम्।

---

(१) क्रुधा।

अत्र विवृत्य शयानयोः कामिनयोः परस्परमुखचुम्बनमशक्यमिति व्यामोहः । पूर्वं परावृत्य शयितौ परस्ताच्च कोपशान्तौ तथैव पुनः परावृत्य शयितौ इति एवं तौ सम्मुखभूतौ परस्परं मुखचुम्बनम् अकुरुताम् इति विवक्षितार्थः । एवमत्र साक्षादर्थनिर्देशेऽपि श्रोतुः सम्मोहात् सम्मूढा नाम प्रहेलिका ।

विशेष—

(१) इस पद्य में कहा गया है कि प्रणय-कोप के कारण कामी और कामिनी शय्या पर मुख घुमाकर सो रहे थे। पुनः मानशान्ति होने पर उसी प्रकार सोते हुए परस्पर मुखचुम्बन करते रहे। इस प्रकार यह व्यामोह होता है कि उसी प्रकार मुख घुमाकर सोते हुए उन दोनों का परस्पर मुखचुम्बन होना असम्भव है। किन्तु जिस प्रकार वे मुख घुमाकर सो रहे थे उसी प्रकार पुनः मुख घुमाकर सोने पर वे दोनों सम्मुख (परस्पर आमने-सामने) हो जाते हैं। इस प्रकार होने पर परस्पर मुखचुम्बन सम्भव हो जाता है। यहाँ तथैव के द्वारा साक्षात् निर्देश होते हुए भी अर्थ के द्वारा व्यामोह बना रहता है अतः यह सम्मूढा पहेली है।

(परिहारिकाप्रहेलिकानिदर्शनम्)

विजितात्म[१]भवद्वेषिगुरुपादहतो जनः ।
हिमापहामित्रधरैर्व्याप्तं व्योमाभिनन्दति ।।१२०।।

अन्वय— विजितात्मभवद्वेषिगुरुपादहतः जनः हिमापहामित्रधरैः व्याप्तं व्योम अभिनन्दति।

शब्दार्थ— विजितात्मभवद्वेषिगुरुपादहतः = गरुड़ (वि) के द्वारा जीते गये (जित) अर्थात् इन्द्र के पुत्र (आत्मभव) अर्थात् अर्जुन के शत्रु (द्वेषी) अर्थात् कर्ण के पिता (गुरु) अर्थात् सूर्य की किरणों (पाद) के द्वारा सन्तप्त। जनः = व्यक्ति। हिमापहामित्रधरैः = शीत (हिम) के विनाशक (अपहा) अर्थात् अग्नि के शत्रु (अमित्र) अर्थात् जल को धारण करने वाले (धर) अर्थात् मेघ से। व्याप्तं = व्याप्त। व्योम = आकाश को। अभिनन्दति = अभिनन्दित (समादरित) करता है, समादर देता है।

अनुवाद— गरुड़ के द्वारा जीते गये (इन्द्र) के पुत्र (अर्जुन) के शत्रु (कर्ण) के पिता (सूर्य) की किरणों द्वारा सन्तप्त व्यक्ति शीत (हिम) के विनाशक (अग्नि) के शत्रु (जल) को धारण करने वाले (मेघ) से व्याप्त आकाश को समादर देता है।

संस्कृतव्याख्या— परिहारिकां प्रहेलिका निदर्शयत्यत्र– **विजितेति**। **विजितात्म-**

---

(१) विजितात्र- ।

भवद्वेषिगुरुपादहतः विः गरुडः तेन जितः विजितः इन्द्रः तस्य आत्मभवः पुत्रः अर्जुनः तस्य द्वेषी शत्रुः कर्णः तस्य गुरुः पिता सूर्यः तस्य पादैः किरणैः हतः सन्तप्तः **जनः** व्यक्तिः **हिमापहामित्रधरैः** हिमः शीतः तं अपहन्ति विनाशयन्तीति हिमापहः अग्निः तस्य अमित्रः शत्रुः जलं तस्य धराः धारकाः जलधराः मेघाः तैः **व्याप्तम्** आच्छादितं **व्योम** आकाशम् **अभिनन्दति** समादरति। अत्रायोगरूढानां यौगिकपदानां सम्बन्धः परम्परया एव विवक्षितः निगूढः अर्थः उद्भावितः, अत एव योगमालात्मिकतया योगरूढशब्दप्रयोगपरिहारात् परिहारिका नाम प्रहेलिका।

विशेष—

(१) प्रस्तुत पद्य में 'ग्रीष्म कालीन सूर्य की किरणों से सन्तप्त व्यक्ति मेघाच्छादित आकाश का अभिनन्दन करता है' इस अर्थ को ऐसे पदों के प्रयोग द्वारा कहा गया है जो सम्बन्धों की परम्परा से सूर्य और मेघ का अभिधान (कथन) करते हैं। यहाँ यौगिक पदों की शृङ्खला द्वारा विवक्षित अर्थ की अभिव्यक्ति हुई है। रुढ़ अथवा योगरुढ़ पदों का परिहार हुआ है अतः वास्तविक नाम पद का परिहार करके व्यामोह उत्पन्न करने के कारण यह परिहारिका नामक पहेली है।

(२) प्रहेलिका से भिन्न प्रसङ्ग में ऐसी रचना दण्डी के अनुसार दोषपूर्ण है। भोज ने इस पद्य को क्लिष्ट नामक दोष के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है।

(एकच्छन्नाप्रहेलिकानिदर्शनम्)

न स्पृशत्यायुधं जातु न स्त्रीणां स्तनमण्डलम्।
अमनुष्यस्य कस्यापि हस्तोऽयं न किलाफलः।।१२१।।

अन्वय— कस्यापि अमनुष्यस्य अयं हस्तः जातु न आयुधं, न च स्त्रीणां स्तनमण्डलं स्पृशति तथापि किल न अफलः (भवति)।

शब्दार्थ— कस्यापि = किसी। अमनुष्यस्य = अमनुष्य (कायर पुरुष अथवा पुरुषत्वरहित) का। अयं = यह। हस्तः = हाथ। न जातु = कदाचिद् भी नहीं, कभी भी नहीं। आयुधं = शस्त्र को, हथियार को। न च = और न ही। स्त्रीणां = स्त्रियों के। स्तनमण्डलं = स्तनमण्डल को, उरोजों के घेरे को। स्पृशति = छूता है। किल = निश्चित रूप से। न अफलः = अफल नहीं होता, सफल ही रहता है।

अनुवाद— किसी अमनुष्य (कायरपुरुष अथवा पुरुषत्वरहित) का यह हाथ कभी भी न शस्त्र को और न ही स्त्रियों के स्तनमण्डल को छूता है (फिर भी) अफल नहीं होता (सफल ही रहता है)।

संस्कृव्याख्या— एकच्छन्नां प्रहेलिकां निदर्शयत्यत्र- **न स्पृशतीति**। **कस्यापि**

अमनुष्यस्य कापुरुषस्य पुरुषत्वविहीनस्य वा **अयं हस्तः** भुजः **न जातु** कदाचिदपि न **आयुधं** प्रहरणम् अस्त्रं **न च स्त्रीणां** युवतीनां **स्तनमण्डलं** कुचाभोगं **स्पृशति** स्पर्शं करोति। तथाप्ययं हस्तः **किल** निश्चितरूपेण **अफलः न** फलरहितः न प्रत्युत सफलः भवति। शस्त्रस्पर्शराहित्येन वीरत्वाभावः स्त्रीस्तनस्पर्शाभावेन रसिकत्वाभावः तत्कथमस्य हस्तस्य सफलत्वमिति विरोधे प्रतिभासमाने अमनुष्यः गन्धर्वः तस्य हस्तः गन्धर्व-हस्तः एरण्डवृक्षः इत्यर्थः विवक्षितः भवति। यतो हि गन्धर्वहस्तः एरण्डस्य पर्यायः। एरण्डवृक्षः सुखच्छेद्यत्वाद् न शस्त्रस्पर्शं सहते न चाहृद्यत्वात् स्त्रीस्तनस्पर्शयोग्यं भवति, परञ्चायं वृक्षः फलवान् अपि भवति। अत्राश्रितम् एरण्डफलं व्यक्तम् आश्रयश्च एरण्ड-वृक्षो निगूहितः। आश्रयस्य वृक्षस्य छन्नत्वादत्र एकच्छन्ना प्रहेलिका।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में आश्रित सफल (फलयुक्त) होना व्यक्त है किन्तु आश्रयभूत वृक्ष को छिपाया गया है, अतः यह एकच्छन्ना पहेली है।

(२) इस पद्य में अमनुष्य के हाथ के शस्त्र स्पर्श न करने से उसमें वीरत्व के अभाव तथा स्त्रीस्तन के न छुने से रसिकत्व के अभाव का वर्णन किया गया है। इन अभावों के रहते हुए भी उस अमनुष्य के हाथ को सफल कहा गया है– यह विरोधाभास है। इस विरोध के परिहार के लिए अमनुष्य का अर्थ लक्षणा द्वारा गन्धर्व किया जाता है और अमनुष्यहस्त का अर्थ गन्धर्वहस्त किया जाता है। गन्धर्वहस्त एरण्ड का पर्याय है। इस प्रकार का एरण्ड वृक्ष हाथ से ही टूट जाने के कारण उसे अस्त्र से छूने की आवश्यकता नहीं होती, अतः अस्त्र का स्पर्श नहीं करता और अनुपयोगी होने के कारण स्त्रियाँ उसे अपने स्तनों पर भी नहीं लगाती अतः वह स्त्रीस्तन का भी स्पर्श नहीं करता, फिर भी फलयुक्त होने के कारण सफल भी कहलाता है। इस प्रकार विरोध का परिहार होता है।

(३) एरण्ड गन्धर्वों के हाथ के समान कोमल और आसानी से टूटने वाला होता है अतः वह गन्धर्वहस्त कहलाता है।

(उभयच्छन्नाप्रहेलिकानिदर्शनम्)

केन कः[१] सह सम्भूय सर्वकार्येषु सन्निधिम्।
लब्ध्वा[२] भोजने काले तु[३] यदि दृष्टो निरस्यते ।।१२२।।

(१) केनेशः।

(२) लब्धा (?)।

(३) –वेलायां।

अन्वय— कः केन सह सम्भूय सर्वकार्येषु सन्निधिं लब्ध्वा यदि भोजने काले दृष्टः तु निरस्यते।

शब्दार्थ— (प्रश्नवाचक अर्थ–) कः = कौन। केन सह = किसके साथ। सम्भूय = मिलकर। सर्वकार्येषु = सभी कार्यों में। सन्निधिं = उपस्थिति को। लब्ध्वा = प्राप्त करके। यदि = यदि। भोजने काले = भोजन के समय में। दृष्टः = दिखलायी पड़ता है। तु = तो। निरस्यते = बाहर कर दिया जाता है। (उत्तर अर्थ) कः = बाल, केश। केन सह = सिर के साथ। सम्भूय = मिलकर......।

अनुवाद— (प्रश्नवाचक–) कौन किसके साथ मिलकर सभी कार्यों में उपस्थिति को प्राप्त करता है (उपस्थित रहता है) (किन्तु) यदि भोजन के समय (अन्न में) दिखलायी पड़ता है तो बाहर कर दिया जाता है। (उत्तरवाचक) बाल सिर के साथ मिलकर (अर्थात् सिर पर शोभायमान होरकर) सभी कार्यों में उपस्थिति को प्राप्त करता है किन्तु यदि भोजन के समय (अन्न में) दिखलायी पड़ता है तो बाहर निकाल दिया जाता है।

संस्कृतव्याख्या— उभयच्छन्नां प्रहेलिकां निदर्शयत्यत्र– **केनेति**। **कः** पदार्थः **केन** पदार्थे **सह सम्भूय** मिलित्वा **सर्वकार्येषु** सर्वेषु कार्येषु मनुष्यस्य **सन्निधिं** उपस्थितिं सामीप्यं वा **लब्ध्वा** प्राप्य **यदि** चेत् **भोजने काले** भोजनसमये अन्नगतः **दृष्टः** संलक्षितः **तु** तत् **निरस्यते** दूरीक्रियते इति प्रश्नः। अस्य प्रश्नस्योत्तरमपि अत्रैव निगूढं विद्यते। तद्यथा– **कः** बालः **केन सह** शिरसा सह मिलित्वा सर्वकार्येषु स्नानादिषु सर्वेषु कार्येषु मनुष्यस्य सन्निधिं प्राप्य भोजनकाले अन्नगतः दृष्टः चेत् अशुद्धत्वाद् अन्नाद् बहिः निस्सार्यते। अत्राश्रयाश्रितयोः शिरकेशयोः उभयोः निगूहत्त्वाद् उभयच्छन्ना प्रहेलिका।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में आश्रयभूत सिर और आश्रित बाल– इन दोनों का निगूहन हुआ है अतः यह उभयच्छन्ना पहेली है।

(२) रत्नश्रीज्ञान 'कः केन सह' के स्थान पर 'केनेशः सह' पाठ का ग्रहण किया है। उनके अनुसार प्रकट अर्थ– शिव (ईश) विष्णु के साथ (केन सह) मिलकर.....। और विवक्षित अर्थ– ईशः (पद) क के साथ मिलकर (क + ईशः) केशः होगा।

(सङ्कीर्णाप्रहेलिकानिदर्शनम्)

सहया सगजा सेना सभटेयं न चेज्जिता ।
अमा[१]तृकोऽयं मूढः स्यादक्षरज्ञस्तु[२]नः सुतः ।।१२३।।

अन्वय— सहया सगजा सभटा इयं सेना चेत् न जिता (तर्हि) नः अक्षरज्ञः अयं सुतः अमातृकः मूढः स्यात् ।

शब्दार्थ— (प्रतीयमान अर्थ) सहया = घोड़ों । सगजाः = हाथियों । सभटाः = भटों (पैदल सैनिकों) से युक्त । इयं = यह । सेना = सेना । चेत् = यदि । न जिता = नहीं जीती गयी, पराजित की गयी । नः = हमारा । अक्षरज्ञः = अक्षर (ब्रह्म, वेद) को जानने वाला । अयं = यह । सुतः = पुत्र । अमातृकः = मातृ-रहित, माता से विहीन । मूढः = मूर्ख । स्यात् = हो जाएगा । (विवक्षित अर्थ–) सहया = हकार और यकार के साथ । सगजा = गकार और जकार के साथ । सभटा = भकार और टकार के साथ । सेना = इकार और नकार के साथ । अयं = यह (वर्णमाला) । चेत् = यदि । न जिता = (अभ्यास द्वारा) नहीं जीती गयी, वश में नहीं की गयी । नः = हमारा । अक्षरज्ञः = वेदपाठ मात्र को जानने वाला । अयं सुतः = यह पुत्र । अमातृकः = मातृका (वर्णमाला) से रहित । मूढः = मूर्ख । स्यात् = हो जाएगा, समझा जाएगा ।

अनुवाद— (प्रतीयमान अर्थ–) घोड़ों, हाथियों और पैदल सैनिकों से युक्त यह सेना यदि नहीं जीती गयी (पराजित की गयी) तो हमारा वेद को जानने वाला यह पुत्र माता से विहीन (होकर) मूर्ख ही रह जाएगा । (विवक्षित अर्थ–) हकार, यकार, गकार, जकार, भकार, टकार, इकार और नकार (ह य ग ज भ ट, इ, न) के साथ (वर्णमाला) यदि (अभ्यास द्वारा) वश में नहीं की गयी तो हमारा वेद का पाठमात्र करने वाला यह पुत्र मातृका (वर्णमाला) (के ज्ञान) से रहित (होने के कारण) मूर्ख हो जाएगा (मूर्ख ही समझा जाएगा) ।

संस्कृतव्याख्या— सङ्कीर्णां प्रहेलिकां निदर्शयत्यत्र– **सहयेति** । (प्रतीयमानोऽर्थः) **सहया** हयैः अश्वैः सहिता **सगजा** गजैः सहिता, **सभटा** भटैः पदातिसैनिकैः सहिता **इयं** पुरोदृश्यमाना **सेना** चमूः **चेत्** यदि **न जिता** न पराजिता तत् **नः** अस्माकम् **अक्षरज्ञः** अक्षरब्रह्मवेत्ता वेदवेत्ता वा **अयम्** एषः पुरोविद्यमानः **सुतः** पुत्रः **अमातृकः** मातृविहीनः यथा स्यात् तथा भूत्वा **मूढः** मूर्खः **स्यात्** । (विवक्षितार्थः–) **सहया** हकारयकाराभ्यां सहिता **सगजा** गकारजकाराभ्यां सहिता **सभटा** भकारकाराभ्यां सहिता

(१) अमात्रिको
(२) –श्च ।

सेना इकारनकाराभ्यां सहिता, 'हयगजभटेन' सह **इयं** एषा वर्णमाला **न जिता** अभ्यासेन न गृहीता तत् **नः** अस्माकं **सुतः** पुत्रः **अमातृकः** मातृकाज्ञानरहितः वर्णमालाज्ञानरहितः सन् **अक्षरज्ञः** वेदपाठमात्रमन्त्रज्ञरूपेण **मूढः** मूर्खः इति जनैः उपहासपात्रः भविष्यतीति भावः ।

(सङ्कीर्णाप्रहेलिकानिदर्शनविश्लेषणम्)

सा नामान्तरितामिश्रा वञ्चितारूपयोगिनी ।
एवमेवेतरासामप्युन्नेयः सङ्करक्रमः ।।१२४।।

अन्वय— सा नामान्तरितामिश्रा वञ्चितारूपयोगिनी (विद्यते)। एवम् इतरासाम् अपि सङ्करक्रमः उन्नेयः ।

शब्दार्थ— सा = वह (उदाहरण में निर्दिष्ट पहेली)। नामान्तरितामिश्रा = नामान्तरिता से मिश्रित (संयुक्त)। वञ्चितारूपयोगिनी = वञ्चिता के स्वरूप से मिश्रित (है)। एवम् = इसी प्रकार। इतरासाम् = अन्य (पहेलियों) के। सङ्करक्रमः = सङ्कर का क्रम (भेद)। उन्नेयः = समझ लेना चाहिए।

अनुवाद— वह (उदाहरण में निर्दिष्ट पहेली) नामान्तरिता (पहेली) से मिश्रित और वञ्चिता (पहेली) के स्वरूप से संयुक्त है, इसी प्रकार अन्य पहेलियों के सङ्कर (मिश्रण) का भेद समझ लेना चाहिए।

संस्कृतव्याख्या— सङ्कीर्णाप्रहेलिकायाः निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **सेति। सा** पूर्वस्मिन्नुदाहरणे निदर्शिता प्रहेलिका **नामान्तरितामिश्रा** मातृकेति नाम्नः सुगूढतायाः अन्तरित्वाद् तद्विवरणार्थं च हयगजादिविविधवस्त्वन्तरोद्भावनायोगात् प्राप्तया नामान्तरितया मिश्रा संयुक्ता तथा च **वञ्चितारूपयोगिनी** सेनेति चमूरुपाधेः प्रसिद्धेन पदेन अन्यार्थे प्रयुक्तेन परप्रवञ्चनाप्रसङ्गात् प्राप्तायाः वञ्चितायाः रूपेण योगः मिश्रणं यस्याः तादृशी विद्यते। **एवम्** अनेन प्रकारेण **इतरासाम्** अपि अन्यासां प्रहेलिकानां **सङ्करक्रमः** सङ्करस्य सङ्कीर्णस्य क्रमः भेदः **उन्नेयः** ऊहनीयः ।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में नामान्तरिता और वञ्चिता दो प्रकार की पहेलियों का संमिश्रण है क्योंकि हयादि शब्दों की अनेकार्थकल्पना होने से नामान्तरिता पहेली और सेना इत्यादि का प्रसिद्ध अर्थ में प्रयोग न होने वञ्चिता पहेली का इस उदाहरण में सङ्कर हैं। इस प्रकार यह सङ्कीर्ण पहेली का उदाहरण है।

(२) जिस प्रकार प्रस्तुत उदाहरण में नामान्तरिता और वञ्चिता के सङ्कर होने के कारण सङ्कीर्ण पहेली निष्पन्न हुई है उसी प्रकार अन्य पहेलियों के भी सङ्कर से

सङ्कीर्ण पहेलियाँ निष्पन्न होती हैं। उन पहेलियों को इसी पहेली की भाँति समझ लेना चाहिए।

(दोषनिरूपणम्)

अपार्थं व्यर्थमेकार्थं ससंशयमपक्रमम्।
शब्दहीनं यतिभ्रष्टं भिन्नवृत्तं विसन्धिकम् ।।१२५।।
देशकालकलालोकन्यायागमविरोधि च।
इति दोषा दशैवैते वर्ज्याः काव्येषु सूरिभिः ।।१२६।।

अन्वय—अपार्थं व्यर्थम् एकार्थं ससंशयम् अपक्रमं शब्दहीनं यतिभ्रष्टं भिन्नवृत्तं विसन्धिकं देशकालकलालोकन्यायागमविरोधि च इति एते दश दोषाः एव काव्येषु सूरिभिः वर्ज्याः।

शब्दार्थ— अपार्थं = अपार्थ (अर्थरहित)। व्यर्थं = व्यर्थ (विरुद्ध अर्थ वाला)। एकार्थं = एकार्थ (समानार्थक, पुनरुक्त)। ससंशयं = ससंशय (सन्दिग्ध)। अपक्रमं = अपक्रम (क्रमरहित)। शब्दहीनं = शब्दहीन (अपेक्षित शब्द से हीन)। यतिभ्रष्टं = यतिर्भ्रष्ट (छन्दविरामनियम से रहित)। भिन्नवृत्तं = भिन्नवृत्त (छन्दनियम से रहित)। विसन्धिकं = विसन्धिक (अपेक्षित सन्धि से रहित)। देशकालकलालोकन्यायागम-विरोधि च = तथा देश-काल-कला-लोक-न्याय-आगम-विरोधी (देशविरुद्ध, काल-निरुद्ध, कलाविरुद्ध, लोकविरुद्ध, और आगमविरुद्ध)। इति एते = ये। दश = दस। दोषाः एव = दोष ही (होते हैं)। काव्येषु = काव्यों में। सूरिभिः = कवियों द्वारा। वर्ज्याः = त्याज्य होते हैं।

अनुवाद— अपार्थ, व्यर्थ, एकार्थ, ससंशय, अपक्रम, शब्दहीन, यतिभ्रष्ट, भिन्नवृत्त, विसन्धिक तथा देश-काल-कला-लोक-न्याय-आगमविरोधी– ये दस दोष ही (हैं, जो) काव्यों में कवियों द्वारा त्याज्य होते हैं।

संस्कृतव्याख्या— काव्यशोभाकरान् गुणान् अर्थालङ्कारान् शब्दालङ्कारान् च विवेच्यात्र काव्यशोभापकर्षाधायकान् दोषान् निरूपयति– **अपार्थमिति**। **अपार्थं** पदार्थ-शून्यं **व्यर्थं** विरुद्धार्थम् **एकार्थं** समानार्थं पुनरुक्तं **ससंशयं** सन्दिग्धम् **अपक्रमं** विरुद्धक्रमं क्रमरहितं वा **शब्दहीनं** अपेक्षितशब्दविहीनं **यतिभ्रष्टं** छन्दविरामनियम-रहितं **भिन्नवृत्तं** छन्दोविधानशून्यं **विसन्धिकम्** अपेक्षितसन्धिविहीनं **देशकालकला-लोकन्यायागमविरोधि च** देशविरुद्धं कालविरुद्धं कलाविरुद्धं लोकविरुद्धं न्यायविरुद्धम् आगमविरुद्धं **चेति एते** इमे **दश** दशसङ्ख्याकाः **दोषाः** काव्यापकर्षकाः दोषाः **काव्येषु** काव्यप्रबन्धेषु **सूरिभिः** कविभिः **वर्ज्याः** त्याज्याः, भवन्ति इति शेषः।

विशेष—

(१) यद्यपि दण्डी ने दोष को परिभाषित नहीं किया है तथापि काव्यादर्श के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि उनके अनुसार अनुचित और अशिष्ट अतः सहृदय के हृदय को उद्विग्न करने वाला प्रयोग दोषयुक्त होता है।

(२) दण्डी के अनुसार दोष स्थितिविशेष पर निर्भर करता है। विशेष परिस्थितियों में दोष गुण हो सकते हैं।

(३) दण्डी ने दोषों का निरूपण काव्य के शरीर को दृष्टि में रखकर किया है। आत्मा के सन्दर्भ में नहीं। अतः उनके द्वारा निरूपित दोषों का सम्बन्ध शब्द और अर्थ से है, रस से नहीं।

(४) १.७ में दोषों के परिहार के लिए दण्डी ने विशेष बल दिया है।

(५) दण्डी ने दोषों की सङ्ख्या दश ही माना है। परम्परा से प्राप्त ग्यारवें दोष का उन्होंने निराकरण किया है। परवर्ती आचार्यों ने सभी ग्यारह दोषों को स्वीकार किया है।

(प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तहानिदोषाग्रहणत्वम्)

प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तहानिर्दोषो न वेत्यसौ[१] ।
विचारः कर्कशप्राय[२]स्तेनालीढेन किं फलम् ।।१२७।।

अन्वय— प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तहानिः दोषः, न वा इति असौ विचारः कर्कशप्रायः। तेन आलीढेन किं फलं (विद्यते)।

शब्दार्थ— प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तहानिः = प्रतिज्ञा, हेतु और दृष्टान्त की हानि। दोषः = दोष है। न वा = अथवा नहीं है। इति = इस प्रकार। असौ = यह। विचारः = विचार, चर्चा। कर्कशप्रायः = प्रायः कर्कश (रुक्ष, नीरस) है। तेन = इस (चर्चा) के। आलीढेन = आस्वादन से, चाटने से, ऊहापोह करने। किं = क्या। फलं = परिणाम (प्रयोजन, लाभ) है।

अनुवाद— प्रतिज्ञा, हेतु और दृष्टान्त की हानि (रूप ग्यारहवाँ) दोष है अथवा नहीं है- इस प्रकार यह विचार (चर्चा) कर्कश (नीरस) है, इस (चर्चा) के ऊहापोह करने से क्या लाभ है (अर्थात् कोई लाभ नहीं है)।

संस्कृतव्याख्या— परम्परया प्राप्तेषु एकादशसु दोषेषु दश दोषान् स्वीकृत्य

(१) चेत्ययौ, वेत्ययम्।

(२) कर्कशः प्रायस्।

एकादशं प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तहानिरूपं दोषं निराकरोत्यत्र– **प्रतिज्ञेति** । **प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तहानिः** प्रतिज्ञाहानिः हेतुहानिः दृष्टान्तहानिश्च इति **दोषः** विद्यते **न वा** विद्यते **इति असौ** अयं **विचारः** चर्चा **कर्कशप्रायः** प्रायेण कठिनः नीरसः वा अस्ति, अत एव तेन विचारेण **आलीढेन** ऊहापोहपूर्वकम् आस्वादनेन **किं फलं** कः लाभः, नास्ति कोऽपि लाभ इत्यर्थः ।

विशेष—

(१) पूर्ववर्ती आचार्यों ने दण्डी के द्वारा निरूपित दश दोषों के अतिरिक्त एक और ग्यारहवें प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तहानिरूप दोष को माना है । दण्डी ने इस दोष की उपेक्षा किया है क्योंकि उनके अनुसार इस दोष का काव्य से उतना अधिक सम्बन्ध नहीं है जितना कि अन्य दोषों का होता है । प्रतिज्ञाहीन अर्थात् अप्रतिज्ञात वस्तुओं का भी वर्णन कविजन करते ही हैं, हेतुहीनत्व भी प्रसिद्ध हेतु वाले स्थल पर दोष नहीं होता तथा दृष्टान्तहीन होने से भी काव्य में उतना वैरस्य नहीं होता, अतः इन दोषों का विचार अनपेक्षित है ।

(२) भामह ने दण्डी के इस कथन पर इन शब्दों में कटाक्ष किया है–

प्रायेण दुर्बोधतया शास्त्राद् विभ्यत्यमेधसः ।
तदुपच्छन्नायैष हेतुन्यायलवोच्चयः ॥
स्वादुकाव्यरसोन्मिश्रं शास्त्रमप्युपयुञ्जते ।
प्रथमालीढधवः पिबन्ति कटुभेषजम् ॥ (५.२-३)

उन्होंने इस कटाक्ष के साथ ही पूरे पञ्चम परिच्छेद में इस दोष की व्याख्या किया है ।

(अपार्थदोषनिरूपणम्)

समुदायार्थशून्यं यत्तदपार्थमितीष्यते[1] ।
तन्मत्तोन्मत्त[2] बालानामुक्ते[3]रन्यत्र दुष्यति ॥१२८॥

अन्वय— यत् समुदायार्थशून्यं तत् अपार्थम् इति इष्यते । तत् मत्तोन्मत्तबालानाम् उक्तेः अन्यत्र दुष्यति ।

शब्दार्थ— यत् = जो । समुदायार्थशून्यं = पदसमूह के अर्थ (पदसमूह की सार्थकता) से रहित है । तत् = वह (वाक्य अथवा वाक्यसमूह) । **अपार्थम् इति**

(१) इहे- । -र्थकमिष्यते ।
(२) उन्मत्तमत्त-, प्रमत्तोन्मत्त- ।
(३) उक्तैर्- ।

अपार्थ नाम से। इष्यते = कहा जाता है। तत् = वह (अपार्थ)। मत्तोन्मत्तबालानां = (मदिरापान से) मत्त, उन्मादरोग से पीडित और (छोटे) बालकों के। उक्तेः = कथन से। अन्यत्र = अतिरिक्त। दुष्यति = दोष होता है, दूषित करता है।

अनुवाद— जो पदसमूह के अर्थ (पदसमूह की सार्थकता) से रहित होता है, वह (वाक्य अथवा वाक्यसमूह) अपार्थ नाम से अभिहित किया जाता है (कहा जाता है, वह अपार्थ) (मदिरापान से) मत्त, उन्माद (रोग) से पीड़ित और बालकों के कथन से अतिरिक्त (कथन अर्थात् काव्य) में दोष होता है।

संस्कृतव्याख्या— पूर्वनिर्दिष्टेषु दोषेषु अपार्थदोषं लक्षयत्यत्र- **समुदायार्थेति**। **यः समुदायार्थशून्यः** समुदायस्य अभिष्टाभीधेयाय प्रयुक्तस्य पदस्य यः अर्थः सम्बद्धार्थः तेन शून्यं विहीनं **तत् अपार्थं इति** अपार्थनाम्ना **इष्यते** मन्यतेऽभिधीयते वा। तत् अपगतार्थत्वाद् अपार्थं **मत्तोन्मत्तबालानां** मत्तानां मद्यपानेन जनितबुद्धिविकृतानाम् उन्मत्तानाम् उन्मादरोगपीडिनां बालानां च अविकसितबुद्धीनां शिशूनाञ्च उक्तेः कथनाद् **अन्यत्र** अन्यस्मिन् स्थले काव्ये इत्यर्थः **दुष्यति** दोषं जनयति अत एव दोषः भवति।

विशेष—

(१) अपार्थ का अर्थ है अर्थशून्य। जिस प्रकार पदसमुदाय की परस्परसङ्गति से वाक्यार्थ निष्पन्न होता है, उसी प्रकार वाक्यों की परस्पर सङ्गति से महावाक्यार्थ (प्रकरणार्थ) निष्पन्न होता है। महावाक्यार्थ की सङ्गति से काव्यार्थ की निष्पत्ति होती है। इनमें से किसी भी परिस्थिति में समुदायार्थ यदि निष्पन्न नहीं होता तो वह पद, वाक्य अथवा काव्य विवक्षित अर्थ से रहित होने के कारण अपार्थ कहलाता है।

(२) दण्डी के अनुसार अपार्थ अनित्य दोष है। इस प्रकार के प्रयोग सर्वथा दोष नहीं होते। बुद्धि के हेतुज या अहेतुक विकास के अभाव में इस प्रकार का कथन स्वाभाविक है। मद्यादिपान के कारण बुद्धि की विक्षिप्तावस्था में, उन्मादादिरोग के कारण पागलपन की स्थिति में अथवा स्वभावतः अविकसित बुद्धि वाले शिशुओं में अपार्थ प्रयोग किये जाते हैं तो वे दोष नहीं माने जाते।

(३) इस प्रकार से अपार्थ दोष दो प्रकार का होता है- पदगत शून्यता और पादगत शून्यता। भामह ने अपार्थ दोष को इस प्रकार के दो भेदों में विभाजित किया है और पदसमुदायार्थशून्यता का ही 'अनार दश, छः पूए' यह उदाहरण दिया है—

अपार्थमित्यपेतार्थं स चार्थः पदवाक्ययोः।

(काव्यालङ्कार ३.४)

समुदायार्थशून्यं यत् तदपार्थमितीष्यते ।
'दडिमानि दशापूपाः षड्' इत्यादि यथोदितम् ॥
(काव्यालङ्कार ३.८)

(४) दण्डी ने पदों की समुदायार्थ-शून्यता का निरूपण न तो लक्षण में किया है और न तो उदाहरण में, इन्होंने पाद की समुदायार्थ-शून्यता का ही प्रतिपादन किया है और उसका उदाहरण दिया है।

(अपार्थदोषनिदर्शनम्)

समुद्रः पीयते देवै[1]रहमस्मि[2] जरातुरः ।
अमी गर्जन्ति जीमूता हरेरैरावणः[3] प्रियः ।।१२९।।

अन्वय— देवैः समुद्रः पीयते, अहं जरातुरः अस्मि, अमी जीमूताः गर्जन्ति, हरेः ऐरावणः प्रियः ।

शब्दार्थ— देवैः = देवताओं द्वारा अथवा मेघों द्वारा। समुद्रः = समुद्र। पीयते = पिया जा रहा है, पान किया जा रहा है। अहं = मैं। जरातुरः अस्मि = वृद्धता से व्याकुल हूँ, बूढ़ा हो गया हूँ। अमी = ये। जीमूताः = बादल। गर्जन्ति = गरज रहे हैं। हरेः = इन्द्र का। ऐरावणः = ऐरावत। प्रियः = रुचिकर (हाथी) है।

अनुवाद— देवताओं (अथवा मेघों) द्वारा समुद्र पिया जा रहा है, मैं वृद्धता से व्याकूल हूँ, ये बादल गरज रहे हैं और इन्द्र का ऐरावत रुचिकर (हाथी) है।

संस्कृतव्याख्या— अपार्थदोषं निदर्शयत्यत्र- **समुद्र इति**। **देवैः** सुरैः मेघैः वा **समुद्रः** सागरः **पीयते अहं जरातुरः** जरया जीर्णगात्रेण आतुरः पीड़ितः व्याकुलो वा अस्मि, **अमी** एते पुरोदृश्यमानाः **जीमूताः** मेघाः **गर्जन्ति** गर्जनं कुर्वन्ति, **हरेः** इन्द्रस्य **ऐरावणः** ऐरावतः नाम **प्रियः** रुचिकरः हस्ती वर्तते। अत्र चतुर्णां वाक्यानां पृथक्-पृथक् सार्थकत्वेऽपि तेषां परस्पराकाङ्क्षाभावात् समस्तवाक्यार्थैकत्वशून्यत्वात् पदसमुदायार्थशून्यमिति नामकः दोषः विद्यते।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में चार वाक्य प्रयुक्त हैं और चारों सार्थक हैं किन्तु इन चारों वाक्यों के अर्थ में परस्पर साकाङ्क्षा-सम्बन्ध का अभाव होने के कारण एकान्वित वाक्यार्थबोध नहीं होता, अतः यहाँ पदसमुदायार्थशून्य अपार्थ दोष है।

---

(१) मेघैर्-, देवैः सोऽयम् ।
(२) अद्य ।
(३) ऐरावतः ।

(अपार्थदोषनिदर्शनविश्लेषणम्)

इदमस्वस्थचित्तानामभिधानमनिन्दितम् ।
इतरत्र कविः को वा प्रयुञ्जीतैवमादिकम् ।।१३०।।

अन्वय— अस्वस्थचित्तानाम् इदम् अभिधानम् अनिन्दितम्, इतरत्र कः वा कविः एकमादिकं प्रयुञ्जीत ।

शब्दार्थ— अस्वस्थचित्तानां = अस्वस्थ चित्त वाले (व्यक्ति) का । इदम् = यह । अभिधानं = कथन । अनिन्दितं = निन्दित (दोषपूर्ण) नहीं है । इतरत्र = इससे अन्य (स्वच्छ चित्त वाला होने पर) । कः वा कविः = कौन सा कवि । एवमादिकं = इस प्रकार वाला । प्रयुञ्जीत = प्रयोग करेगा ।

अनुवाद— (मद, उन्माद इत्यादि के कारण) अस्वस्थ चित्त वाले व्यक्ति का यह (इस प्रकार का) प्रयोग निन्दित (दोषप्रूर्ण) नहीं है । इससे अन्य (स्वस्थचित्त वाला होने पर) कौन सा कवि इस प्रकार वाला (दोषपूर्ण) प्रयोग करेगा (अर्थात् कोई भी कवि ऐसा प्रयोग नहीं करेगा) ।

संस्कृतव्याख्या— अपार्थदोषस्य प्रस्तुतं निदर्शनं विशिनष्टि- **इदमिति** । **अस्वस्थचित्तानां** मद्यपानेन उन्मादेन वा ग्रस्तानां विक्षिप्तचेतसां जनानां **अभिधानम्** उक्तरूपं कथनम् **अनिन्दितम्** दोषरहितं भवति परञ्च **इतरत्र** अन्यथा मदोन्मादाभावे सति **कः वा कविः एवमादिकं** अनेन प्रकारेण दोषेण युक्तं कथनं **प्रयुञ्जीत** स्वकाव्ये रचयति । कोऽपि कवि एतादृशं दोषयुक्तं काव्यं न करोतीति भावः ।

विशेष—

(१) काव्य में मद्यपानजनित, उन्माद के कारण अथवा अविकसित बुद्धि वाले शिशुओं द्वारा इस प्रकार के कथन का प्रयोग कराये जाने पर यह प्रयोग दूषित नहीं होता किन्तु स्वस्थचित द्वारा प्रयोग कराया गया इस प्रकार का कथन दोषपूर्ण होता है । अतः कवि लोग स्वस्थचित्त वाले व्यक्ति द्वारा ऐसी दोषपूर्ण वाणी का प्रयोग नहीं कराते हैं ।

(२) दण्डी ने इन सभी दोषों को परिस्थिति-सापेक्ष माना है । स्थिति-विशेष में ये दोष गुण भी हो जाते हैं । जो अपार्थ स्वस्थव्यक्ति द्वारा प्रयोग किये जाने पर दोष होता है वहीं अस्वस्थचित्त वाले व्यक्ति द्वारा प्रयोग में लाये जाने पर दोष नहीं होता ।

(व्यर्थदोषनिरूपणम्)

एकवाक्ये प्रबन्धे वा पूर्वापरपराहतम् ।
विरुद्धार्थतया व्यर्थमिति दोषेषु पठ्यते ।।१३१।।

अन्वय— एकवाक्ये प्रबन्धे वा पूर्वापरपराहतं विरुद्धार्थतया दोषेषु व्यर्थम् पठ्यते।

शब्दार्थ— एकवाक्ये = एक वाक्य में। प्रबन्धे वा = अथवा (वाक्यसमूह-रूप) काव्य में। पूर्वापरपराहतं = पूर्वापरसङ्गति से रहित (रचना)। विरुद्धार्थतया = परस्पर विरोधी होने के कारण। दोषेषु = दोषों में। व्यर्थम् इति = व्यर्थ इस (नाम) से। पठ्यते = पढ़ी जाती है, गिनी जाती है, मानी जाती है।

अनुवाद— एक वाक्य में अथवा (वाक्यसमूह-रूप) काव्य में पूर्वापर सङ्गति से रहित (रचना) परस्पर विरोधी होने के कारण दोषों में व्यर्थनाम से जानी जाती है।

संस्कृतव्याख्या— व्यर्थं दोषं विवेचयत्यत्र- **एकवाक्य इति**। **एकवाक्ये** एकस्मिन् वाक्ये **प्रबन्धे वा** वाक्यसमूहरूपे काव्ये वा **पूर्वापरपराहतं** पूर्वोत्तरकथन-सङ्गतिरहितं **विरुद्धार्थतया** परस्परविरुद्धार्थकत्वाद् **दोषेषु व्यर्थमिति** नाम्ना **पठ्यते** मन्यते। अपार्थे दोषे वाक्यानाम् एकार्थसिद्ध्यभावः, अत्र तु तेषां परस्परसङ्गत्याभावः इति अपार्थव्यर्थयोः दोषयोः भिन्नत्वम्। वाक्यप्रबन्धपर्यालोचनेन विरोधप्रतिभासे व्यर्थत्वदोषः, प्रकरणपर्यालोचनेन विरोधप्रतिभासे देशकालादिविरोधः नाम दोषः इति अनयोः भेदः।

विशेष—

(१) जहाँ पूर्व और पर कथनों में परस्पर असङ्गति (व्याघातकता) होती है तो वह व्यर्थ दोष कहलाता है।

(२) परस्पर असङ्गति अर्थगत होती है, अतः पदों के समुदाय के विना यह असङ्गति नहीं हो सकती। फलतः पदसमुदायरूप वाक्य में यदि परस्पर विरोधी पदों का प्रयोग होता है तो वह व्यर्थता वाक्यगत व्यर्थता होती है। इसी प्रकार जब वाक्यसमुदाय-रूप काव्य के अवयवों में परस्परविरोधी कथन होता है तो वहाँ प्रबन्धगत व्यर्थता होती है।

(३) व्यर्थत्व दोष में अर्थविरोध शाब्दबोध के बाद प्रतिभाषित होता है और अपार्थ दोष में आकाङ्क्षाशून्यता के कारण शाब्दबोध हो ही नहीं पाता। यही व्यर्थत्व और अपार्थ दोष में भेद है।

(४) व्यर्थत्वदोष वाक्य अथवा काव्य की पर्यालोचना से प्रतिभासित होता है किन्तु देशकालादि विरोधदोष में प्रकरण की पर्यालोचना के बाद ही आभासित होता है- यहीं इन दोनों में अन्तर है।

(प्रबन्धगतव्यर्थत्वदोषनिदर्शनम्)

जहि शत्रुबलं कृत्स्नं जयविश्वम्भरामिमाम् ।
न हि ते कोऽपि विद्वेष्टा सर्वभूतानुकम्पिनः ।।१३२।।

अन्वय— कृत्स्नं शत्रुबलं जहि, इमां विश्वम्भरां जय, न हि सर्वभूतानुकम्पिनः ते कोऽपि विद्वेष्टा (विद्यते)।

शब्दार्थ— कृत्स्नं = सम्पूर्ण। शत्रुबलं = शत्रुसेना को। जहि = मार डालो, विनष्ट कर डालो। इमां = इस। विश्वम्भरां = पृथ्वी को। जय = जीत लो। सर्वभूतानुकम्पिनः = सभी प्राणियों पर अनुकम्पा (दया) करने वाले। ते = तुम्हारा। कोऽपि = कोई भी। विद्वेष्टा = शत्रु। न हि = निश्चित रूप से नहीं है।

अनुवाद— (हे राजन्), तुम सम्पूर्ण शत्रुसेना को मार डालो (विनष्ट कर डालो) और इस पृथ्वी को जीत लो। सभी प्राणियों पर अनुकम्पा (दया) करने वाले तुम्हारा कोई भी शत्रु निश्चितरूप से नहीं है।

संस्कृतव्याख्या— प्रबन्धगतव्यर्थत्वदोषं निदर्शयत्यत्र- **जहीति**। हे राजन्, त्वं **कृत्स्नं** सम्पूर्णं **शत्रुबलं** शत्रुसैन्यं **जहि** मारय विनाशय वा। **इमां** च एतां **विश्वम्भरां** पृथ्वीं **जय** स्ववशीकुरु। **सर्वभूतानुकम्पिनः** सर्वेषु सकलेषु भूतेषु प्राणिषु अनुकम्पिनः दयावतः **ते** राज्ञः **विद्वेष्टा** शत्रुः न विद्यते। अत्र शत्रुरहितस्य शत्रुसैन्यहननं सर्वप्राणिदयावतश्च पृथ्वीजयः विरुद्धतया असङ्गतम्, अत एव व्यर्थं नाम दोषः। दोषोऽयं काव्यगतत्वात् प्रबन्धगतं दोषः विद्यते।

विशेष—

(१) इस उदाहरण में 'शत्रुसेना का विनाश करो' का 'आप का काई शत्रु नही है' से तथा 'सभी प्राणियों पर दया करने वाले हैं' का 'इस पृथ्वी को जीतो' से पूर्वापर विरोध होने के कारण असङ्गति है, अतः यहाँ व्यर्थनामक दोष है। यह दोष इस पद्य के वाक्यसमुदाय में है, अतः यह प्रबन्धगत दोष है।

(२) जिस प्रकार बुद्धि की विशेष अवस्था— हेतुज या अहेतुक अस्वस्थता में अपार्थदोष नहीं होता उसी प्रकार बुद्धि की रागादि से परिभूतता की दशा में व्यर्थ दोष भी नहीं होता। इस प्रकार यह भी अनित्य दोष है। इसी तथ्य का प्रतिपादन आगे किया जा रहा है।

(व्यर्थदोषस्यावस्थाविशेषे गुणत्वम्)

अस्ति काचिदवस्था सा साभिषङ्गस्य[1] चेतसः ।
यस्यां भवेदभिमता विरुद्धार्थापि भारती ।।१३३।।

अन्वय— साभिषङ्गस्य चेतसः काचित् सा अवस्था अस्ति यस्यां विरुद्धार्था अपि भारती अभिमता भवेत् ।

शब्दार्थ— साभिषङ्गस्य = दुःख की अतिशयता (अधिकता) से । चेतसः = चित्त की । सा = वह । काचित् = कोई विशेष । अवस्था = दशा । अस्ति = होती है । यस्यां = जिसमें । विरुद्धार्था = परस्परविरुद्ध अर्थ वाली । अपि = भी । भारती = वाणी, कथन । अभिमता = अभिमत, अभिलषित, अभीष्ट ।

अनुवाद— (वियोग, दुर्घटना इत्यादि के कारण) दुःख की अतिशयता (अधिकता) से अभिभूत चित्त की वह कोई विशेष अवस्था (दशा) होती है जिसमें परस्पर विरुद्ध अर्थ वाली (व्यर्थ दोष वाली) भी वाणी अभिमत (गुण के रूप में अभीष्ट) होती है।

संस्कृतव्याख्या— व्यर्थदोषस्य अवस्थाविशेषे गुणत्वं निरूपयत्यत्र- **अस्तीति साभिषङ्गस्य** वियोगदुर्घटनादिना दुःखतिशयाभिभूतस्य चेतसः मनसः **सा काचिद्** अनिर्वचनीया **अवस्था** स्थितिः **अस्ति** वर्तते **यस्याम्** अवस्थायां **विरुद्धार्थाः** परस्परविरुद्धः विपरीत अर्थः यस्याः तादृशी **अपि भारती** वाणी **अभिमता** गुणरूपेण अभीष्टा **भवेत्** । दुःखातिशयाभिभूतस्य जनस्य विरुद्धार्थापि वाणी सगुणा भवतीति भावः ।

विशेष—

(१) वियोग, दुर्घटना इत्यादि के कारण दुःखयुक्त चित्त की कुछ ऐसी विशेषावस्था होती है जिस अवस्था में कही गयी विरुद्धार्थ वाणी भी सदोष नहीं मानी जाती प्रत्युत गुण मानी जाती है क्योंकि ऐसी वाणी से दुःखी व्यक्ति की आन्तरिक अस्तव्यस्तता प्रतीत होती है ।

(व्यर्थत्वदोषस्य गुणत्वनिदर्शनम्)

परदाराभिलाषो मे कथमार्यस्य युज्यते ।
पिबामि तरलं तस्याः कदा नु दशनच्छदम् ।।१३४।।

अन्वय— आर्यस्य मे परदाराभिलाषः कथं युज्यते, तस्याः तरलं दशनच्छदं कदा नु पिबामि ।

---

(१) साभिलाषस्य ।

शब्दार्थ— आर्यस्य = आर्य (सत्कुलोत्पन्न)। मे = मेरी। परदाराभिलाषः = परस्त्री के प्रति अभिलाषा (इच्छा)। कथं = कैसे। युज्यते = उचित है। तस्याः = उस (परस्त्री) के। तरलं = चञ्चल, फड़कते हुए। दशनच्छदं = अधर को। कदा = कब। नु = निश्चितरूप से। पिबामि = पीऊँगा, पान करूँगा।

अनुवाद— सत्कुलोत्पन्न मेरी परस्त्री (गमन) के प्रति अभिलाषा कैसे उचित है; उस (परस्त्री) के चञ्चल (फड़कते हुए) अधर को कब मैं निश्चित रूप से पीऊँगा।

संस्कृव्याख्या— अवस्थाविशेषे व्यर्थत्वदोषस्य गुणत्वं निदर्शयत्यत्र- **परदा-रेति**। **आर्यस्य** श्रेष्ठस्य सत्कुलोत्पन्नस्य **मे** मम **परदाराभिलाषः** परकीयां दारायां स्त्रियाम् अभिलाषः सङ्गमनेच्छा **कथं** केन प्रकारेण **युज्यते** उचितं वर्तते, केनापि प्रकारेण उचितं न विद्यते इति भावः। परञ्च **तस्याः** परस्त्रियः **तरलं** भयलज्जया चञ्चलं **दशनच्छदम्** अधरम् अहं **कदा** कस्मिन् समये **नु** निश्चयेन **पिबामि** पानं करोमि। अत्र परस्त्रीसमागमस्य अनौचित्यं ततः तदधरपानरूपं तदभिलाषप्रकटनं परस्परविरुद्धम् परञ्च विरहोत्कण्ठतिशयेन अभिभूतस्य पुरुषस्य विरुद्धकथनमिदं तस्यान्तरिकव्याकुलत्वं प्रकटयति, अत एव नेदं व्यर्थत्वदोषाय प्रत्युत गुणः एव विद्यते।

विशेष—

(१) यहाँ रागावेश वाले चित्त की अवस्था में वाक्यगत व्यर्थत्व दोष की निर्दोषता का उदाहरण दिया गया है।

(२) इस उदाहरण में परस्त्रीगमन के अनौचित्य तथा उसके अधरपानरूपी सङ्गमन की अभिलाषा- ये दोनों परस्पर विरुद्धार्थक है अतः यहाँ व्यर्थता दोष है किन्तु विरहोत्कण्ठा से अभिभूत पुरुष का यह विरुद्ध कथन उसकी आन्तरिक अस्तव्यस्तता को प्रस्तुत करता है अतः यह दोष नहीं प्रत्युत गुण है।

(एकार्थदोषनिरूपणम्)

अविशेषेण पूर्वोक्तं यदि भूयोऽपि कीर्त्यते।
अर्थतः शब्दतो वापि तदेकार्थं मतं यथा ॥१३५॥

अन्वय— यदि पूर्वोक्तं अर्थतः शब्दतः वापि अविशेषेण भूयः अपि कीर्त्यते तत् एकार्थं मतम्।

शब्दार्थ— यदि = यदि। पूर्वोक्तं = पहले कहा गया (कथन)। अर्थतः = अर्थ से। शब्दतः वापि = अथवा शब्द से। अविशेषेण = विना विशेषता के साथ। भूयः अपि = फिर, पुनः। कीर्त्यते = कहा जाता है। तत् = वह। एकार्थं = एकार्थ (नामक दोष)। मतं = माना जाता है।

अनुवाद— यदि पहले कहा गया (कथन) अर्थ से अथवा शब्द से बिना विशेषता के साथ पुनः कहा जाता है, तो वह एकार्थ (नामक दोष) माना जाता है।

संस्कृतव्याख्या— एकार्थं दोषं निरूपयत्यत्र- **अविशेषेण**। **यदि पूर्वोक्तं** पूर्वकथितं किञ्चित्कथनं **अर्थतः शब्दतः वापि अविशेषेण** विशेषतां विना अभिन्नतया **भूयः** पुनः **अपि कीर्त्यते** कथ्यते तत्र **एकार्थं** नाम दोषः **मतं** मन्यते। यथेत्ययमुदाहरणमुपक्रमार्थं प्रयुक्तम्। अर्थस्य शब्दस्य वा अविशेषेण पुनरुक्तिः एकार्थदोषस्यविषयः वर्तते। एकार्थं द्विविधं अर्थपुनरुक्तिः शब्दपुनरुक्तिश्च। शब्दपुनरुक्तिरत्र अर्थपुनरुक्तिम् अपेक्ष्यैव प्रवर्तते अन्यथा यमके पुनरुक्तिप्रसङ्गः जायते। यत्र विशेषाभिधानमभिलषमाणस्य उक्तार्थस्य पुनः कीर्तनं भवति तत्र एकार्थं न भवति।

विशेष—

(१) पूर्व कथन को उसके शब्द या अर्थ के द्वारा बिना किसी विशेष के पुनरावृत्ति करना एकार्थ दोष कहलाता है। इस प्रकार विना विशेष के किसी वस्तु को शब्द अथवा अर्थ में समानता रखने वाले शब्द से दुहराया जाय तो एकार्थ नामक दोष है।

(२) शब्द और अर्थ की अविशेष पुनरुक्ति एकार्थ दोष का विषय है। इस प्रकार एकार्थ दोष दो प्रकार का होता है- अर्थपुनरुक्ति और शब्दपुनरुक्ति।

(३) शब्द की पुनरुक्ति अर्थ की पुनरावृत्ति की अपेक्षा से ही प्रवृत्त होती है अन्यथा यमक में भी पुनरुक्ति का प्रसङ्ग उपस्थित हो जाएगा।

(४) यदि विशेष अभिधान के लिए अर्थ अथवा शब्द की पुनरुक्ति की जाती है तो वह दोष नहीं माना जाता।

(अर्थगतैकार्थदोषनिदर्शनम्)

उत्कामुन्मनयन्त्येते बालां तदलकत्विषः।
अम्भोधरास्तडित्वन्तो गम्भीराः स्तनयित्नवः ।।१३६।।

अन्वय— तदलकत्विषः तडित्वन्तः गम्भीराः एते स्तनयित्नवः अम्भोधराः उत्कां बालाम् उन्मनयन्ति।

शब्दार्थ— तदलकत्विषः = उस (बाला) के बालों के (समान) कान्ति वाले। तडित्वन्तः = विद्युत् से युक्त। गम्भीरा = गम्भीरः (ध्वनि करने वाले)। एते = ये। स्तनयित्नवः = गर्जनशील। अम्भोधराः = बादल। उत्कां = उत्कण्ठित। बालां = बाला को। उन्मनयन्ति = उत्कण्ठित कर रहे (बना रहे) हैं।

अनुवाद— उस (बाला) के बालों के (समान) कान्ति (वर्ण वाले अर्थात् काले), (चमकती हुई) विद्युत से युक्त और गम्भीर ध्वनि करने वाले ये गर्जनशील बादल उत्कण्ठित बाला को (और अधिक) उत्कण्ठित कर रहे हैं।

संस्कृतव्याख्या— **तदलकत्विषः** तस्याः बालायाः अलकानां केशानां त्विष् कान्तिः इव कान्तिः येषां तादृशाः श्यामवर्णाः मेघाः, **तडित्वन्तः** विद्युत्सम्पन्नाः **गम्भीराः** मन्दध्वनियुक्ताः **एते स्तनयित्नवः** गर्जनशीलाः **अम्भोधराः** जलधराः मेघाः **उत्काम्** उत्कण्ठितां **बालां** नवयौवनाम् **उन्मनयन्ति** उत्कण्ठयन्ति। अत्र उत्कां गम्भीराः इति च शब्दद्वयं उन्मनयन्ति स्तनयित्नवः इति च पुनः अपि अर्थतोऽविशेषेण उक्तः इति एकार्थं नाम दोषः।

विशेष—

(१) यहाँ 'उत्कां' (उत्कण्ठित) और 'उन्मनयन्ति' (उत्कण्ठित करते हैं)- ये तथा 'गम्भीराः' (गम्भीर ध्वनि करने वाले) और 'स्तनयित्नवः' (गर्जन करने वाले)- ये दो अर्थगत पुनरुक्तियाँ हैं अतः यहाँ अर्थगत एकार्थ दोष है।

(२) रत्नश्रीज्ञान के अनुसार अम्भोधराः और तडित्वन्तः में भी पुनरुक्ति है क्योंकि दोनों मेघ में पर्याय है।

(३) भोज ने दण्डी के इस उदाहरण को ही थोड़ा अपेक्षित परिवर्तन करके शब्दगत और अर्थगत- दोनों एकार्थ दोषों के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है—

उत्कामुन्मनयन्त्येते गम्भीराः स्तनयित्नवः।
अम्भोधरास्तडित्वन्तो गम्भीरा स्तनयित्नवः॥

(सरस्वती कण्ठामरण १.२२ उदाहरण २८)

(एकार्थदोषस्य गुणत्वनिरूपणम्)

अनुकम्पाद्यतिशयो यदि कश्चिद् विवक्ष्यते।
न दोषः पुनरुक्तोऽपि प्रस्तुतेयमलङ्क्रिया[१] ॥१३७॥

अन्वय— यदि कश्चित् अनुकम्पाद्यतिशयः विवक्ष्यते (तत्) पुनरुक्तः अपि दोषः न, प्रत्युत इयम् अलङ्क्रिया (विद्यते)।

शब्दार्थ— यदि = यदि। कश्चित् = कोई। अनुकम्पाद्यतिशयः = अनुकम्पा (दया, करुणा, हर्ष, विस्मय) इत्यादि का अतिशय। विवक्ष्यते = विवक्षित हो, वर्णन करना अभीष्ट हो, कहना चाहता हो। पुनरुक्तः अपि = पुनरुक्त (अर्थ) भी। दोषः

(१) -कृतिः।

न = दोष के लिए नहीं होता। प्रत्युत = बल्कि। इयम् = यह। अलङ्क्रिया = अलङ्कार रूप (गुण रूप) होता है।

अनुवाद— यदि कोई दया (करुणा हर्ष, विस्मय) इत्यादि का वर्णन करना अभीष्ट हो तो पुनरुक्त (अर्थ) भी (अर्थात् एकार्थ दोष भी) दोष लिए नहीं होता प्रत्युत यह अलङ्काररूप (गुणरूप) होता है।

संस्कृतव्याख्या— एकार्थदोषस्य गुणत्वं निरूपयत्यत्र- **अनुकम्पेति**। यदि चेत् **कश्चित् अनुकम्पाद्यतिशयः** करुणाहर्षविस्मयादीनाम् अतिशयः आधिक्यं विव**क्ष्यते** वक्तुम् अभिलषते तत् **पुनरुक्तः अपि** एकार्थम् अपि **दोषः न** भवति प्रत्युत **इयम्** एषा **अलङ्क्रिया** अलकाररूपः गुणरूपः वा भवति। अतः तत्र सः दोषः ग्रहणीयः भवतीति भावः।

विशेष—

(१) काव्य में यदि दया इत्यादि भावों को व्यक्त करने के लिए अर्थ तथा शब्द की पुनरुक्ति की जाती है तो वह एकार्थ दोष नहीं माना जाता, प्रत्युत वह अलङ्कार ही माना जाता है।

(२) इस प्रकार की आवृत्ति २.११६ के अनुसार अर्थ की आवृत्ति होने पर अर्थावृत्ति और पद की आवृत्ति होने पर पदावृति अलङ्कार होता है। इस प्रकार एकार्थ दोष भी अनित्य दोष है।

(एकार्थगुणत्वनिदर्शनम्)

हन्यते सा वरारोहा स्मरेणाकाण्डवैरिणा।
हन्यते चारुसर्वाङ्गी हन्यते मञ्जुभाषिणी ॥१३८॥

अन्वय— सा वरारोहा अकाण्डवैरिणा स्मरेण हन्यते, (सा) चारुसर्वाङ्गी हन्यते (सा) मञ्जुभाषिणी (च) हन्यते।

शब्दार्थ— सा = वह। वरारोहा = रुचिर जघनों वाली (सुन्दरी)। अकाण्डवैरिणा = अकारण शत्रु बने। स्मरेण = कामदेव के द्वारा। हन्यते = मारी जा रही है। अत्यधिक पीड़ित (सन्तप्त) की जा रही है। चारुसर्वाङ्गी = सर्वाङ्गसुन्दरी। हन्यते = अत्यधिक पीड़ित की जा रही है। मञ्जुभाषिणी = मधुरभाषिणी। हन्यते = अत्यन्त पीड़ित की जा रही है।

अनुवाद— वह रुचिर जघनों वाली (सुन्दरी) अकारण शत्रु बने कामदेव के द्वारा अत्यधिक पीड़ित (सन्तप्त) की जा रही है; (वह) सर्वाङ्गसुन्दरी अत्यधिक पीड़ित की जा रही है, वह मधुरभाषिणी अत्यन्त सन्तप्त की जा रही है।

संस्कृतव्याख्या— एकार्थस्य गुणत्वं निदर्शयत्यत्र- **सेति**। **सा वरारोहा** रुचिर-जघना सुन्दरी **अकाण्डवैरिणा** निष्कारणशत्रुणा **स्मरेण** कामदेवेन **हन्यते** अति-पीड्यते, **चारुसर्वाङ्गी** सर्वाङ्गसुन्दरी **हन्यते**, **मञ्जुभाषिणी** मधुरालापयुक्ता **हन्यते**। इत्यत्र हन्यते इत्यस्य द्विबारम् आवृत्या नायिकां प्रति वक्तुः अनुकम्पातिशयः प्रतीयते। अत एवात्र एतया द्विरुक्त्या एकार्थं नाम दोषः न, प्रत्युत अलङ्काररूपः एव। पदावृत्यात्र २.११६ इत्यनुसारं पदावृत्तिरलङ्कारः एव भवतीति भावः।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में 'हन्यते' पद की दो बार आवृति नायिका के प्रति नायक के अनुकम्पाभाव को द्योतित करती है अतः यहाँ आवृत्ति एकार्थरूप दोष नहीं प्रत्युत अलङ्कार रूप है।

(२) यहाँ हन्यते पद की आवृत्ति हुई है अतः २.११६ के अनुसार यहाँ पदावृत्ति नामक अलङ्कार होता है।

(ससंशयदोषनिरूपणम्)

निर्णयार्थं प्रयुक्तानि संशयं जनयन्ति चेत्[१]।
वचांसि दोष एवासौ ससंशयः इति स्मृतः ॥१३९॥

अन्वय— निर्णयार्थं प्रयुक्तानि वचांसि संशयं चेत् जनयन्ति असौ एव ससंशयः इति दोषः स्मृतः।

शब्दार्थ— निर्णयार्थं = निर्णय के लिए, निश्चित ज्ञान के लिए। प्रयुक्तानि = प्रयुक्त। वचांसि = कथन। संशयं चेत् = यदि संशय (सन्देह, अनिश्चयात्मक ज्ञान) को। जनयन्ति = उत्पन्न करते हैं। असौ एव = वही (कथन)। ससंशयम् इति = ससंशय (नामक)। दोषः = दोष। स्मृतः = कहलाता है।

अनुवाद— निर्णय (निश्चयात्मक ज्ञान) के लिए प्रयुक्त कथन यदि संशय (सन्देह, अनिश्चयात्मक ज्ञान) को उत्पन्न करते हैं (तो) वह (कथन) ससंशय दोष कहलाता है।

संस्कृतव्याख्या— ससंशयदोषं निरूपयत्यत्र- **निर्णयार्थमिति**। **निर्णयार्थं** निश्चयात्मकज्ञानार्थं **प्रयुक्तानि** प्रयोगं कृतानि **वचांसि** कथनानि **चेत्** यदि **संशयं** सन्देहम् अनिश्चयात्मकं ज्ञानं वा **जनयन्ति** उत्पादयन्ति तद् **असौ** तानि कथनानि

---

(१) यत्।

ससंशयः तन्नाम **दोषः स्मृतः** कथितः। संशयार्थं प्रयुक्तस्य संशयजनकत्वे न दोषः, तदर्थमेव प्रयोगात्।

विशेष—

(१) सन्देह निवारण के लिए प्रयुक्त कथन यदि सन्देह को पैदा करता है तो वह ससंशय दोष कहलाता है।

(२) जहाँ संशय हो जाने से निश्चितान्वयबोध न होने के कारण निश्चितार्थ का ज्ञान नहीं होता, वह शब्दगत संशय होता है तथा जहाँ प्रकरणज्ञान न होने कारण वक्ता आदि का ज्ञान नहीं हो पाता, वह अर्थगत संशय होता है।

(ससंशयदोषनिदर्शनम्)

मनोरथप्रियालोकरसलोलेक्षणे सखि।
आराद्वृत्तिरसौ माता न क्षमां द्रष्टुमीदृशम् ॥१४०॥

अन्वय— मनोरथप्रियालोकरसलोलेक्षणे सखि, असौ आराद्वृत्तिः माता ईदृशं द्रष्टुं न क्षमा।

शब्दार्थ— मनोरथप्रियालोकरसलोलेक्षणे = हे अभीष्ट (मनोरथ) प्रिय के देखने में उत्पन्न आनन्द (रस) से चञ्चल नेत्रों वाली। सखि = हे सखि। असौ = यह। आराद्वृत्तिः = समीपवर्तिनी अथवा दूरवर्तिनी। माता = माँ। ईदृशं = इस प्रकार। द्रष्टुं = देखने के लिए। न क्षमा = समर्थ नहीं है, नहीं देख सकती।

अनुवाद— (अपने) अभीष्ट प्रिय को देखने से उत्पन्न आनन्द से चञ्चल नेत्रों वाली हे सखि! यह समीपवर्तिनी (समीप में विद्यमान) (तुम्हारी) माँ (तुम्हारे) इस प्रकार (के प्रणय व्यापार) को नहीं देख सकती (देखकर सहन नहीं कर सकती) (अथवा दूर में विद्यमान तुम्हारी माँ तुम्हारे इस प्रणयव्यापार को नहीं देख पायेगी)।

संस्कृतव्याख्या— ससंशयदोषं निदर्शयत्यत्र- **मनोरथप्रियालोकरसलोलेक्षणे** मनोरथस्य अभीष्टस्य प्रियस्य दयितः आलोके आलोकने यः रसः आनन्दः तेन लोले चञ्चले ईक्षणे यस्याः तादृशी तत्सम्बुद्धौ हे प्रियदर्शनानन्दाहतलोचने, **सखि**! असौ एषा **आराद्वृतिः** समीपवर्तिनी तव **माता ईदृशं** एतादृशं तव प्रणयव्यापारं **द्रष्टुं** विलोकितुं दृष्ट्वा सोढुम् **न क्षमा** असमर्था भविष्यति अत एव प्रियेण सह स्वेच्छया विहारं मा कुरु। अथवा **असौ** सा **आराद्वृतिः** दूरवर्तिनी तव माता **ईदृशं** एतादृशं तव प्रणयव्यापारं **द्रष्टुं** दृष्टिगोचरं कर्तुं **न क्षमा** असमर्था अत एव स्वेच्छया प्रियेण सह विहारं कुरु। एवम् अर्थतत्त्वस्य निश्चयाय प्रयुक्तमपि नायिकाचित्ते संशयम् उत्पादयतीति संशयजनननेनात्र ससंशय नाम दोषः।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में सखी का कथन नायिका को निश्चित अर्थ सूचित करने के लिए प्रयुक्त किया गया है किन्तु वह नायिका के मन में सन्देह उत्पन्न करने वाला है क्योंकि आराद्वर्ती शब्द में आरात् समीप और दूर दोनों अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार आराद्वर्ती का अर्थ समीपवर्ती और दूरवर्ती- दोनों होगा। माँ के समीपवर्ती होने पर नायिका के प्रणय-व्यापार को देखकर वह उसका सहन नहीं कर पाएगी अतः उसे इस स्वच्छन्द विहार से बचना चाहिए और दूरवर्ती होने पर वह उसे देख नहीं पाएगी अतः स्वेच्छापूर्वक विहार करना चाहिए- यह दोनों अर्थ निकलता है।

(२) इस प्रकार उदाहरण में निश्चित अर्थ को सूचित करने के लिए प्रयुक्त कथन से सन्देह होता है कि सखी द्वारा नायिका को स्वेच्छापूर्वक विहार करने से रोका गया है अथवा स्वेच्छापूर्वक विहार करने के लिए कहा गया है। इस सन्देह के कारण यहाँ ससंशय दोष है।

(ससंशयस्य गुणत्वनिरूपणम्)

ईदृशं संशयायैव यदि जातु प्रयुज्यते।
स्यादलङ्कार एवासौ न दोषस्तत्र तद्यथा ।।१४१।।

अन्वय— यदि जातु ईदृशं संशयाय एव प्रयुज्यते तत् तत्र असौ अलङ्कारः एव स्यात्, दोषः न।

शब्दार्थ— यदि = यदि। जातु = कहीं, कदाचित्। ईदृशं = ऐसा (कथन)। संशयाय = सन्देह के लिए। एव = ही। प्रयुज्यते = प्रयोग किया जाता है। तत्र = वहाँ। असौ = वह। अलङ्कारः एव = अलङ्कार ही। स्यात् = होता है। दोषः न = दोष नहीं होता।

अनुवाद— यदि कहीं ऐसा (कथन) सन्देह (उत्पन्न करने) के लिए प्रयोग किया जाता है तो वहाँ वह अलङ्कार (गुण) ही होता है, दोष नहीं होता।

संस्कृतव्याख्या— ससंशयदोषस्य गुणवत्वं निरूपयत्यत्र- **यदीति**। **यदि** चेत् **जातु** कदाचित् **ईदृशम्** सन्देहात्मकं कथनं **संशयाय** सन्देहोत्पादनाय एव **प्रयुज्यते** **तत्र** तस्मिन् प्रयोगे असौ सन्देहकथनं **अलङ्कारः एव** गुणरूपः एव **स्यात्** भवति। **दोषः न** दोषरूपः न भवति। तद्यथेति निदर्शनोपक्रमार्थं प्रयुक्तम्।

विशेष—

(१) जहाँ निश्चयात्मक ज्ञान के लिए प्रयुक्त कथन सन्देह उत्पन्न करता है वहाँ तो वह

दोष माना जाता है किन्तु जब प्रहेलिका इत्यादि में सन्देहात्मक बोध के लिए संशयपूर्ण कथन किया जाता है तो संशयात्मक कथन दोष नहीं होता, प्रत्युत अलङ्कार हो जाता है। इस प्रकार ससंशय दोष भी अनित्य है।

(ससंशयस्य गुणत्वनिदर्शनम्)

पश्याम्यनङ्गजातङ्कलङ्घितां तामनिन्दिताम् ।
कालेनैव कठोरेण ग्रस्तां किं नस्त्वदाशया ।।१४२।।

अन्वय— अनङ्गजातङ्कलङ्घितां ताम् अनिन्दिताम् कठोरेण कालेन ग्रस्ताम् एव पश्यामि, नः त्वदाशया किम् ?

शब्दार्थ— अनङ्गजातङ्कलङ्घितां = कामजनित (अनङ्गज) पीड़ा (आतङ्क) से आक्रान्त (लङ्घित)। ताम् = उस। अनिन्दिताम् = अनिन्द्य सुन्दरी को। कठोरेण = क्रूर। कालेन = काल के द्वारा। ग्रस्ताम् एव = ग्रसित की गयी ही, कवलित की गयी ही। पश्यामि = देख रही हूँ, समझ रही हूँ। नः = हमें। त्वदाशया = तुम्हारे (उसके जीवित रहने की या मिलन) की आशा से। किं = क्या लाभ है, क्या प्रयोजन है।

अथवा

अनङ्गजातङ्कलङ्घितां = कामदेव (अङ्गज) की पीड़ा (आतङ्क) से रहित (अनाक्रान्त)। तां = उस। अनिन्दितां = अनिन्द्य चरित वाली (बाला) को। कठोरेण = क्रूर। कालेन = समय (ग्रीष्मऋतु) के कारण। ग्रसितां = ग्रसित (मुरझायी हुई)। एव = ही। पश्यामि = देख रही हूँ। नः = हमें (हमारी सखी को)। त्वदाशया = तुम्हारे प्रति प्रणयाभिलाष से। किम् = क्या (प्रयोजन है)।

अनुवाद— मैं कामजनित पीड़ा से आक्रान्त उस (तुम्हारी) अनिन्द्यसुन्दरी प्रियतमा को क्रूर काल (यमराज) के द्वारा ग्रसित (कवलित) की गयी (मरणासन्न) ही देख रही (समझ रही) हूँ। हमें (= हमारी सखी को) तुम्हारे (उनके जीवित रहने या मिलन) की आशा से क्या लाभ है (अर्थात् कोई लाभ नहीं है)।

अथवा

कामदेव की पीड़ा से रहित (अनाक्रान्त) उस (तुम्हारी) अनिन्द्य चरित वाली (प्रेयसी) को मैं क्रूर समय (ग्रीष्म ऋतु) के कारण ग्रसित (मुरझायी हुई) देख रही हूँ। हमें (हमारी सखी को) तुम्हारे प्रति प्रणय-अभिलाष से क्या (प्रयोजन है)।

संस्कृतव्याख्या— ससंशयदोषस्य गुणवत्वं निदर्शयत्यत्र- **पश्यामीति**। **अनङ्गजातङ्कलङ्घिताम्** अनङ्गात् कामदेवात् जातेन उत्पन्नेन आतङ्केन व्याधिना त्वदभिलक्ष्य कामजैनितपीडया इत्यर्थः लङ्घिताम् आक्रान्तां त्वद्वियोगेन व्याकुलां **ताम् अनिन्दिताम्**

अनिन्द्यसुन्दरीं तव प्रेयसीं **कठोरेण कालेन** क्रूरेण यमेन **ग्रस्तां** कवलीकृताम् एव **पश्यामि** सम्भवामि। **नः** अस्माकं **त्वदाशया** तव तत्सम्बन्धिजीवनाभिलाषया **किं** प्रयोजनम्, कोऽपि लाभो नास्तीति भावः।

अथवा

पद्यस्यास्य अपरोऽप्यर्थः सम्भवति– अहम् **अनङ्गजातङ्कलङ्घिताम्** अङ्गजस्य कामदेवस्य आतङ्केन व्याधिना लङ्घिताम् आक्रान्तामिति अङ्गजातङ्कलङ्घिताम् अङ्गजातङ्केन न लङ्घितामिति अनङ्गजातङ्कलङ्घिताम् तादृशीं **ताम् अनिन्दितां** अनिन्द्यचरितां **कठोरेण कालेन** क्रूरेण समयेन ग्रीष्मकालेनेत्यर्थः एव **ग्रस्तां** पीड़ितां **पश्यामि** अवैमि **त्वदाशया** तव विषयकेण आशया अभिलाषेण **नः** अस्माकं **किम्** प्रयोजनम्। अस्माकं सखी त्वयि साभिलाषा नेति भावः। कश्चित् प्रोषितं नायकं प्रति नायिकायाः दूत्याः कथनमिदम्। अत्र नायकं व्याकुलयितुं दूतीभूतया सख्या बुद्धिपूर्वकं ससंशयं कथितम् अत एवात्र ससंशयदोषः न, प्रत्युत गुणः एव।

(ससंशयस्य गुणत्वनिदर्शनविश्लेषणम्)

कामार्ता घर्मतप्ता वेत्यनिश्चयकरं वचः।
युवानमाकुलीकर्तुमिति दूत्याह नर्मणा ।।१४३।।

अन्वय— युवानम् आकुलीकर्तुं दूती नर्मणा कामार्ता धर्मतप्ता वा इति अनिश्चयकरं वचः आह।

शब्दार्थ— युवानम् = युवक (नायक) को। आकुलीकर्तुं = व्यामोहित (अथवा उत्कण्ठित) करने के लिए। दूती = दूती ने। नर्मणा = परिहासपूर्वक। कामार्ता = काम पीड़ित है। घर्मतप्ता वा = अथवा धूप से सन्तप्त है। इति = इस प्रकार का। अनिश्चयकरं = सन्देहोत्पादक। वचः = वचन, कथन। आह = कहा है, प्रयोग किया है।

अनुवाद— युवक (नायक) को व्यामोहित (अथवा उत्कण्ठित) करने के लिए दूती ने परिहासपूर्वक (वह नायिका) काम-पीड़ित है अथवा धूप से सन्तप्त है– इस प्रकार का सन्देहोत्पादक अर्थ वाला वचन कहा है।

संस्कृतव्याख्या— ससंशयस्य गुणत्वनिदर्शनं विश्लेषयत्यत्र– **कामार्तेति**। **युवानं** युवकं नायकं **आकुलीकर्त्तुं** व्यामोयितुम् समागमनाय वा उत्कण्ठयितुं **दूती** नायिकायाः दुतीभूता सखी **नर्मणा** परिहासेन भावभङ्गिविशेषेण वा सा नायिका **कामार्ता** कामपीडिता **धर्मतप्ता वा** ग्रीष्मकालिकतापेन सन्तप्ता वा **इति** एवम् **अनिश्चयकरं**

सन्देहोत्पादकं **वचः** वचनं **आह**। संशयजननस्य कथनस्य अभीष्टत्वात् प्रयुक्तं संशयकथनं दोषः न, प्रत्युत गुणरूपः विद्यते।

विशेष—

(१) नायक को व्यामोहित अथवा नायिका से समागम के लिए नायक को उत्कण्ठित करने के लिए प्रयोग किया गया 'नायिका कामपीड़ित है अथवा धूप से सन्तप्त' इस प्रकार सन्देहयुक्त कथन दोष नहीं, प्रत्युत गुण है।

(अपक्रमदोषनिरूपणम्)

उद्देशानुगुणोऽर्थानामनूद्देशो[1] न चेत्कृतः।
अपक्रमाभिधानं तं[2] दोषमाचक्षते बुधाः[3] ॥१४४॥

अन्वय— अर्थानाम् उद्देशानुगुणः अनूद्देशः न कृतः चेत् तं बुधाः अपक्रमाभिधानं दोषं आचक्षते।

शब्दार्थ— अर्थानाम् = पदार्थों का। उद्देशानुगुणः = उल्लेख (क्रम) के अनुसार। अनूद्देशः = पुनर्कथन, अनुकथन। न कृतः चेत् = यदि नहीं किया गया है। तं = उसको। बुधाः = बुद्धिमान् लोग, विद्वान् लोग, आचार्य लोग। अपक्रमाभिधानं = अपक्रम नामक। दोषं = दोष। आचक्षते = कहते हैं।

अनुवाद— पदार्थों का उल्लेख (क्रम) के अनुसार (अर्थात् जिस क्रम से पहले उल्लेख किया गया है उसी क्रम से) पुनर्कथन यदि नहीं किया गया है (तो) उसको आचार्य लोग अपक्रम नामक दोष कहते हैं।

संस्कृतव्याख्या— अपक्रमं दोषं निरूपयत्यत्र– **उद्देशेति**। **अर्थानां** पदार्थानां **उद्देशानुगुणः** पूर्वोल्लेखानुसारं **अनूद्देशः** अनुकथनं सत्यां तदपेक्षायां पश्चाद् उपन्यासः **न चेत् कृतः** यदि न कृतः तर्हि **तं** अपक्रमकथनं **बुधाः** विद्वान्सः अपक्रमाभिधानं **अपक्रमाभिधानं** अपक्रमनामकं **दोषम् आचक्षते** उच्यते। पदार्थानां पूर्वं उपन्यस्तं क्रमम् अतिक्रम्य पुनः अन्येन क्रमेण उपन्यासः अपक्रमं नाम दोषः इति।

विशेष—

(१) काव्यों में कई पदार्थों का उपस्थापन जिस क्रम से किया गया है, यदि बाद में

---

(१) अनुदेशो।

(२) तद्।

(३) यथा।

उनका पुनरुपस्थापन उस क्रम का अतिक्रमण (उलङ्घन) करके किया जाय तो वह अपक्रम नामक दोष कहलाता है।

(२) पाणिनि ने भी समान सङ्ख्या वाले अनुदेश का कथन उसी क्रम से करने का विधान किया है– 'यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्' (अष्टाध्यायी १.३.१०)। काव्य में भी इस नियम का पालन होना चाहिए। यदि इस नियम का अतिक्रमण करके अनुकथन किया जाता है तो वह अपक्रम नामक दोष कहलाता है।

(अपक्रमदोषनिदर्शनम्)

स्थितिनिर्माणसंहारहेतवो जगताममी[१] ।
शम्भुनारायणाम्भोजयोनयः पालयन्तु वः ।।१४५।।

अन्वय— जगतां स्थितिनिर्माणसंहारहेतवः अमी शम्भुनारायणाम्भोजयोनयः वः पालयन्तु।

शब्दार्थ— जगतां = संसार की। स्थितिनिर्माणसंहारहेतवः = स्थिति (पालन), निर्माण (रचना, सृष्टि) और संहार (विनाश) के कारणभूत। अमी = ये। शम्भुनारायणाम्भोजयोनयः = शिव (शम्भु), विष्णु (नारायण) और ब्रह्मा (कमलयोनि, अम्भोजयोनि)। वः = तुम लोगों की। पालयन्तु = रक्षा करें।

अनुवाद— संसार की स्थिति (पालन), सृष्टि और विनाश के कारणभूत शिव, विष्णु और ब्रह्मा तुम लोगों की रक्षा करें।

संस्कृतव्याख्या— अपक्रमं दोषं निदर्शयत्यत्र– **स्थितीति**। **जगतां** चराचराणां प्राणिनां **स्थितिनिर्माणसंहारहेतवः** स्थितिः पालनं निर्माणं सर्जनं संहारं विनाशं चेति तेषां हेतवः कारणभूताः **अमी** एते **शम्भुनारायणाम्भोजयोनयः** शम्भुः शिवः नारायणः विष्णुः अम्भोजयोनिः कमलयोनिः ब्रह्मा च **वः** युष्मान् **पालयन्तु** रक्षन्तु। अत्र स्थितिनिर्माणसंहारक्रमेणैव तेषां कारणभूतां विष्णुब्रह्माशङ्कराणां अनुदेश अपेक्षितः, परञ्च तत्क्रममनुलङ्घ्य व्यतिक्रमेण तदनुदेशः कृतः, अत एव अपक्रमं नाम दोषः।

विशेष—

(१) इस उदाहरण में उपन्यस्त जगत् की स्थिति, निर्माण और विनाश के कारण विष्णु, ब्रह्मा और शङ्कर का अनुदेश अपेक्षित है किन्तु यहाँ अपेक्षित क्रम उलङ्घन करके व्यतिक्रम से शङ्कर, विष्णु और ब्रह्मा का अनुदेश किया गया है, अतः अपक्रम दोष है।

---

(१) अजाः, –तां मताः।

(२) यहाँ मूलपाठ भी दोषोत्पादक है। पहले सृष्टि, पुनः स्थिति और अन्त में विनाश का क्रम होना चाहिए किन्तु यहाँ व्यतिक्रम से पहले स्थिति और पुनः निर्माण का उल्लेख किया गया है, अतः इसमें भी अपक्रम दोष सम्भव है।

(अपक्रमस्य गुणत्वनिरूपणम्)

यत्नः[1] सम्बन्धविज्ञानहेतुः[2] कोऽपि कृतो यदि ।
क्रमलङ्घनमप्याहुः सूरयो नैव दूषणम् ।।१४६।।

अन्वय— यदि सम्बन्धविज्ञानहेतुः कोऽपि यत्नः कृतः (तत्) सूरयः क्रमलङ्घनम् अपि दूषणं न एव आहुः।

शब्दार्थ— यदि = यदि। सम्बन्धविज्ञानहेतुः = (वाक्य में) सम्बन्ध-ज्ञान कराने (अन्वय का बोध कराने) के कारण वाला। कोऽपि = कोई भी। यत्नः = यत्न। कृतः = किया जाता है। सूरयः = आचार्य लोग। क्रमलङ्घनं = (उस) क्रम के उलङ्घन को। अपि = भी। दूषणं = दोष। न एव = नहीं। आहुः = कहते हैं।

अनुवाद— यदि (काव्य में) सम्बन्धज्ञान (अन्वय का बोध) कराने के कारण वाला कोई यत्न किया जाता है (तो) अचार्य लोग (उस) क्रम के उलङ्घन को भी दोष नहीं कहते हैं।

संस्कृतव्याख्या— अपक्रमस्य परिस्थितिविशेषे गुणत्वं निरूपयत्यत्र- **यत्नः इति**। **यदि** चेत् सम्बन्धविज्ञानहेतुः **सम्बन्धविज्ञानं** अन्वयबोधं हेतुः कारणं यस्य तादृशः **कोऽपि यत्नः** प्रयत्नः कृतः स्यात् तर्हि **सूरयः** आचार्याः **क्रमलङ्घनम्** अपि क्रमातिक्रमणम् अपि **दूषणं** दोषः **न एव** इति **आहुः**। क्रमातिक्रमणमपि यदि अन्वय-विशेषस्य अवबोधनाय भवति तहि तत्र दोषः।

विशेष—

(१) यदि अपेक्षित अन्वय बोध के लिए कवि ने कोई प्रयत्न कर दिया है तो वह अपक्रम दोष नहीं माना जाता। अन्वय में बाधा पड़ने पर ही अपक्रम दोष होता है। यदि कवि द्वारा किये गये प्रयत्न से अन्वयज्ञान सुकर हो जाय तो वह अपक्रम दोष नहीं होता।

(२) उद्दिष्ट और अनुदिष्ट में क्रम की दृष्टि से एकता होने पर अन्वय प्रतीति में बाँधा नहीं होती। इससे अर्थ की प्रतीति सुगतमापूर्वक हो जाती है। व्यतिक्रम के

---

(१) यत्र।

(२) -निर्ज्ञनि-, विज्ञाने, -हेतुकोऽपि।

कारण सम्बन्ध भङ्ग हो जाने से अन्वितार्थ की प्रतीति नहीं हो पाती तो वह अपक्रम दोष माना जाता है। यदि सम्बन्ध का ज्ञान किसी अन्य प्रयत्न (कथन) से करा दिया जाय तो अन्वय-प्रतीति में व्यतिक्रम करने पर भी बाधा नहीं उत्पन्न होती और अर्थ का ज्ञान निर्बाधरूप से हो जाता है। इसलिए विद्वान् इसे दोष नहीं मानते।

(अपक्रमस्य गुणत्वनिदर्शनम्)

बन्धुत्यागस्तनुत्यागो देशत्याग इति त्रिषु।
आद्यन्तावायतक्लेशौ मध्यमः क्षणिकज्वरः॥१४७॥

अन्वय— बन्धुत्यागः तनुत्यागः देशत्यागः इति त्रिषु आद्यन्तौ आयतक्लेशौ मध्यमः क्षणिकज्वरः (भवति)।

शब्दार्थ— बन्धुत्यागः = स्वजनों का परित्याग। तनुत्यागः = शरीर का परित्याग (मृत्यु)। देशत्यागः = स्वदेश का परित्याग। इति त्रिषु = इन तीनों में। आद्यन्तौ = आदि वाला (स्वजनपरित्याग) और अन्त वाला (स्वदेशपरित्याग)। आयतक्लेशौ = दीर्घकाल तक दुःख देने वाले (होते हैं)। मध्यमः = मध्य वाला (शरीरत्याग)। क्षणिकज्वरः = क्षणमात्र ज्वर (दुःख) देने वाला (होता है)।

अनुवाद— स्वजनों का परित्याग, शरीर का परित्याग और स्वदेश का परित्याग– इन तीनों में आदि वाला (स्वजनों का परित्याग) और अन्त वाला (स्वदेश का परित्याग) दीर्घकाल तक दुःख देने वाले (होते हैं) तथा मध्यम (शरीरत्याग, मृत्यु) क्षणमात्र ज्वर (दुःख, सन्ताप) देने वाला होता है।

संस्कृतव्याख्या— अपक्रमस्य दोषविहीनत्वं निदर्शयत्यत्र– **बन्धुत्याग इति**। **बन्धुत्याग :** स्वजनपरित्यागः **तनुत्यागः** शरीरपरित्यागः मृत्युः **देशत्यागः** स्वदेश-परित्यागः इति त्रिषु **आद्यन्तौ** आदौ बन्धुत्यागः अन्तः देशत्यागश्च **आयतक्लेशौ** चिर-कालिककष्टप्रदौ भवतः **मध्यमः** तनुत्यागश्च **क्षणिकज्वरः** क्षणमात्रकष्टप्रदः भवति। अत्र तनुत्यागात् स्वजनत्यागः स्वदेशत्यागश्च अतिशयक्लेशविशेषरूपसम्बन्धविशेषं बोध-यितुं यत्नः कृतः, अत एव क्रमोलङ्घनमत्र दोषाय न विद्यते।

विशेष—

(१) प्रस्तुत अदाहरण में स्वजनत्याग, शरीरत्याग और देशत्याग के कष्ट को क्रम से बतलाया गया है किन्तु इनमें प्रथम और तृतीय पदार्थ को अलग करके इन्हें अधिक कष्टकर बतलाकर इसे पृथक करने का प्रयत्न किया गया है। ऐसा करने से क्रमभङ्ग अवश्य हुआ है किन्तु इससे क्रमभङ्ग पदार्थों की तनुत्याग से विशिष्टत क्रमभङ्ग के कारण ही प्रकट होती है, अतः यहाँ अपक्रम दोष नहीं है।

(शब्दहीनदोषनिरूपणम्)

शब्दहीनमनालक्ष्यलक्ष्यलक्षणपद्धतिः ।
पदप्रयोगोऽशिष्टेष्टः[१] शिष्टेष्टस्तु[२] न दुष्यति ॥१४८॥

अन्वय— अनालक्ष्यलक्ष्यलक्षणपद्धतिः अशिष्टेष्टः पदप्रयोगः शब्दहीनं (भवति) शिष्टेष्टः तु न दुष्यति ।

शब्दार्थ— अनालक्ष्यलक्ष्यलक्षणपद्धतिः = जिसमें लक्ष्य (= प्रयोग, निदर्शन) और लक्षण (शास्त्र, शब्दशास्त्र, व्याकरण) की पद्धति (विधि, नियम, क्रम) दृष्टिगोचर न (अनालक्षित) हो ऐसा, न दिखलायी पड़ने वाले लक्ष्य और लक्षण से युक्त। अशिष्टेष्टः = शिष्ट लोगों को अनभीष्ट (अनभिमत) । पदप्रयोगः = पदों का प्रयोग, शब्दव्यवहार । शब्दहीनम् = शब्दहीन (नामक दोष होता है) । शिष्टेष्टः तु = शिष्ट लोगों का अभीष्ट (अभिमत) तो । न दुष्यति = दोष नहीं होता ।

अनुवाद— न दिखलायी पड़ने वाले लक्ष्य और लक्षण से युक्त तथा शिष्ट लोगों को अनभिमत (अनभीष्ट) पदप्रयोग (शब्दों का प्रयोग) शब्दहीन (नामक दोष) होता है) । शिष्ट लोगों का अभिमत (पदप्रयोग) तो दोष नहीं होता है ।

संस्कृतव्याख्या— शब्दहीनं दोषं निरूपयत्यत्र- **शब्दहीनमिति** । **अनालक्ष्यलक्ष्यलक्षणपद्धति** अनालक्ष्या अदृश्या लक्ष्यस्य प्रयोगस्य लक्षणस्य शास्त्रस्य शब्दशास्त्रस्य व्याकरणस्य च पद्धतिः विधिः विधानं वा यस्मिन् तादृशः **अशिष्टेष्टः** शिष्टैः अनभीष्टः अनभिमतः **पदप्रयोगः** शब्दप्रयोगः **शब्दहीनं** तदभिधानः दोषः भवति **शिष्टेष्टः** शिष्टैः अभिमतः च पदप्रयोगः **तु न दुष्यति** न दोषमावहति । एवं शिष्टजनगर्हितः पदप्रयोगः एव शब्दहीनं नाम दोषः शिष्टाभिमतः पदप्रयोगस्तु दोषविहीनः भवतीति भावः ।

विशेष—

(१) जो शब्द व्याकरणशास्त्रीय नियमों के द्वारा सिद्ध नहीं होते और शिष्टजनों द्वारा अभिमत नहीं होते, ऐसे पदों का प्रयोग करना शब्दहीन दोष माना जाता है।

(२) जो शब्दानुशासन द्वारा सिद्ध नहीं होता वह शब्दप्रयोग अनालक्ष्य-लक्ष्य और लक्षण की पद्धति वाला है । शास्त्र द्वारा अननुमोदित पदों का प्रयोग शास्त्रों का अध्ययन न करने वाले अशिष्ट लोग ही करते हैं । शिष्ट लोग तो व्याकरण

---

(१) -प्रयोगःशि- ।

(२) -ष्टं हि ।

द्वारा सिद्ध पदों के प्रयोग का ही अनुमोदन करते हैं।

(३) व्याकरण द्वारा असिद्ध शब्द भी यदि शिष्ट लोगों को अभिमत हो तो उसका प्रयोग करना दूषित नहीं होता। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि शब्दहीनत्व दोष में शिष्ट लोगों का अनुमोदन ही प्रमुख है। यदि प्रयोग अभिमत है तो वह दोष से रहित माना जाएगा और यदि अनभिमत है तो सदोष माना जाएगा।

(शब्दहीनदोषनिदर्शनम्)

अवते भवते बाहुर्महीमर्णवशक्वरीम् ।
महाराजन्न जिज्ञासा नास्तीत्यासां गिरां रसः ।।१४९।।

अन्वय— महाराजन्, भवते बाहुः अर्णवशक्वरीं महीं अवते जिज्ञासा न (विद्यते) इति आसां गिरां रसः न अस्ति।

शब्दार्थ— महाराजन् = हे महाराज, भवते = आपकी। बाहुः = भुजा। अर्णवशक्वरीं = समुद्ररूपी मेखला वाली। महीं = पृथ्वी की। अवते = रक्षा करती है। जिज्ञासा न = जानने की इच्छा नहीं है। इति = इस प्रकार। आसां = इस। गिरां = वाणी में, कथन में। रसः = रस। न अस्ति = नहीं है।

अनुवाद— हे महाराज, आपकी भुजा समुद्ररूपी मेखला वाली पृथ्वी की रक्षा करती है (इस विषय) जानने की इच्छी नहीं है, इस प्रकार (शिष्टों द्वारा अनभिमत) वाणी में रस नहीं है।

संस्कृतव्याख्या— शब्दहीनं दोषं निदर्शयत्यत्र- **अवत इति**। **महाराजन्** हे महाराज, **भवते** भवतः महाराज्ञः **बाहुः** भुजः **अर्णवशक्वरीं** समुद्रमेखलां **महीं** पृथ्वीं **अवते** रक्षति। विषयेऽस्मिन् **जिज्ञासा** सन्देहाभावात् ज्ञातुच्छिा **न** विद्यते। **इति आसां** एतस्यां **गिरां** शिष्टाननुमोदितां वाचां **रसः** माधुर्यादिगुणः **न** वर्तते। श्लोकेऽस्मिन् अवते इत्यात्मनेपदं भवतः इति षष्ठीस्थाने 'भवते' इत्यस्य चतुर्थीविभक्तेः प्रयोगः अर्णवशक्वरीमित्यत्र बहुव्रीहिसमासे समासान्तस्य 'कप्' प्रत्ययस्याभावः महाराजन् इत्यत्र समासान्तस्य टच्प्रत्ययस्याभावः शिष्टैः नाभिमतः अत एव शब्दहीनं नाम दोषः।

विशेष—

(१) (क) इस श्लोक में परस्मैपदीय अव् धातु का प्रयोग आत्मनेपद में किया गया है, अतः यह व्याकरण-विरुद्ध है। (ख) भवते का सम्बन्ध बाहु संज्ञा पद से है, अतः यहाँ सम्बन्ध में षष्ठी का प्रयोग होना चाहिए जो चतुर्थी विभक्ति में प्रयुक्त है, अतः यह भी प्रयोग अपेक्षित नहीं है। (ग) पुरुष की दो भुजाएँ होती हैं अतः

बाहुः का द्विवचन में प्रयोग होना चाहिए जो एक वचन में प्रयुक्त है, यह भी अभीष्ट नहीं है। (घ) अर्णवशक्वरीम् में बहुव्रीहि समास है अर्थात् शक्वरीमेखला यस्याःतादृशीम्। इस समास में कप् प्रत्यय का प्रयोग होकर 'अर्णवशाक्वरीकाम्' यह रूप उपलब्ध होना चाहिए। यहाँ कप् प्रत्यय के अभाव के कारण यह अभीष्ट नहीं है। (ङ) 'महाराज' पद 'महाश्चासौ राजा च'- इस व्युत्पत्ति के अनुसार कर्मधारय समास है। महाराज के सम्बोधन में महाराज रूप बनता है, न कि महाराजन्। अतः यह भी दोषयुक्त है। इस प्रकार यहाँ क्रिया, कारक, वचन और समासान्त की दृष्टि से आदि से अन्त तक व्याकरणशास्त्रीय नियमों से रहित होने के कारण यह प्रयोग शिष्टाभिमत नहीं है अतः यहाँ शब्दहीन नामक दोष है।

(शब्दहीनस्यादोषत्वनिदर्शनम्)

दक्षिणाद्रेरुपसरन् मारुतश्चूतपादपान्।
कुरुते ललिताधूतप्रवालाङ्कुरशोभिनः ।।१५०।।

अन्वय— दक्षिणाद्रेः उपसरन् मारुतः चूतपादपान् ललिताधूतप्रवालाङ्कुरशोभिनः कुरुते।

शब्दार्थ— दक्षिणाद्रेः = दक्षिण पर्वत से, मलयपर्वत से। उपसरन् =समीप में आता हुआ। मारुतः = पवन। चूतपादपान् = आम्र के वृक्षों को। ललिताधूत-प्रवालाङ्कुरशोभिनः = लीलापूर्वक हिलाये (कँपाये) गये नूतन कोंपलों के अङ्कुर से शोभायमान। कुरुते = कर देता है।

अनुवाद— मलय पर्वत से समीप में आता हुआ पवन (मलयपवन) आम्र के वृक्षों को लीलापूर्वक हिलाये (कँपाये) गये नूतन कोपलों के अङ्कुर से शोभयमान कर देता है।

संस्कृतव्याख्या— शब्दहीनत्वस्यादोषत्वं निदर्शयत्यत्र- **दक्षिणेति**। **दक्षिणाद्रेः** दक्षिणपर्वतात् मलयपर्वतात् **उपसरन्** समीपमागच्छन् **मरुतः** पवनः **चूतपादपान्** आम्रवृक्षान् **ललिताधूतप्रवालाङ्कुरशोभिनः** ललितं सलीलम् आधूताः आन्दोलिताः प्रवालाङ्कुराः किसलयोद्गमाः तैः शोभन्ते इति तादृशान् सलीलप्रकम्पित-किसलयाङ्कुरशोभिनः **कुरुते** करोति।

विशेष—

(१) प्रस्तुत श्लोक में शतृ में सृ का प्रयोगव्याकरण विरुद्ध है; अपधावन् प्राप्त होता है। शिष्ट लोगों के अनुसार धाव् तीव्र गति (दौड़ना) अर्थ में प्रसिद्ध है। अतः

वायु की मन्दगति की विवक्षा के लिए धाव् का प्रयोग न करके सृ (सरकना, धीरे-धीरे चलना) का प्रयोग किया गया है जो व्याकरण के निमय का उलङ्घन होने पर भी दोष नहीं होता क्योंकि शिष्टजन विवक्षितार्थ को आदर देकर इस प्रयोग का अनुमोदन करते हैं।

(२) इसी प्रकार मारुतः के लिए आत्मनेपदीय 'कुरुते' क्रिया पदप्रयुक्त हुआ है। यदि पवन अपने लिए बहता तब तो आत्मनेपदीय क्रिया का प्रयोग उचित था किन्तु पवन तो दूसरे के सुख के लिए बह रहा है अतः व्याकरणशास्त्र के अनुसार यहाँ परस्मैपदीय क्रिया करोति का प्रयोग होना चाहिए।

(३) उपसरन् के योग में दक्षिणाद्रि का अपादान में प्रयोग उचित नहीं है क्योंकि उपसरन् का कोई कर्म यहाँ उक्त नहीं है किन्तु दक्षिणाद्रि से आने के कथन में वायु की सुगन्धता विवक्षित है, अतः यह भी प्रयोग शिष्टाभिमत है।

(४) इस प्रकार व्याकरणशास्त्रीय नियमों से विरोध होने पर भी शिष्टाभिमत होने के कारण यह प्रयोग शब्दहीन दोष से रहित है।

(शब्दहीनस्यादोषत्वनिदर्शनविश्लेषणम्)

इत्यादि शास्त्रमाहात्म्यदर्शनालसचेतसाम् ।
अपभाषणवद् भाति न च सौभाग्यमुज्झति ।।१५१।।

अन्वय— इत्यादि शास्त्रमाहात्म्यदर्शनालसचेतसां अपभाषाणवत् भाति, सौभाग्यं च न उज्झति।

शब्दार्थ— इत्यादि = (पूर्वोदाहृत) इत्यादि (प्रयोग)। शास्त्रमाहात्म्यदर्शनालस-चेतसां = शास्त्र (व्याकरणशास्त्र) के माहात्म्य (गौरव, गाम्भीर्य अथवा प्रभाव) के दर्शन (ज्ञान) में आलस्ययुक्त (अनवहित, असावधान) मन वाले (कवियों) के। अपभाषणवत् = अपभाषण (अपशब्द, व्याकरणविरुद्ध) के समान। भाति = प्रतीत होता है। सौभाग्यं च = और सौन्दर्य (सौष्ठव) को। न उज्झति = नहीं छोड़ता।

अनुवाद— (पूर्वोदाहृत) इत्यादि (प्रयोग) शास्त्र (व्याकरणशास्त्र) के माहात्म्य (गाम्भीर्य) के ज्ञान में आलस्य-युक्त (असावधान) मन वाले (कवियों) के अपभाषण (व्याकरणविरुद्ध, अपशब्द) के समान प्रतीत होता है परन्तु सौन्दर्य को नहीं छोड़ता (अर्थात् सुन्दर बना रहता है)।

संस्कृतव्याख्या— शब्दहीनस्यादोषत्वनिदर्शनं विश्लेषयत्यत्र— **इत्यादीति**। इत्यादि पूर्वोद्धाहृतः इत्यादि प्रयोगः **शास्त्रमाहात्म्यदर्शनालसचेतसां** शास्त्रस्य व्या-

करणशास्त्रस्य यत् माहात्म्यं गौरवं गाम्भीर्यं वा तस्य दर्शने ज्ञाने अलसचेतसाम् अनवहितचित्तानां कवीनाम् **अपभाषणवत्** अशुद्धम् इव **भाति** प्रतीयते परञ्च **सौभाग्यं** सौन्दर्यं **न उज्झति** न जहाति ।

विशेष—

(१) विशेष अर्थ की विवक्षा से किये गये व्याकरणशास्त्र से अननुमोदित प्रयोग शास्त्रीय गम्भीरता को न छोडने वाले लोगों को भले ही दोष प्रतीत होता हो किन्तु काव्य का प्रयोजन अर्थ को सुचारु रूप से प्रस्तुत करना होता है। यदि शास्त्र की किसी बात के उलङ्घन में बाधा नहीं पहुँचाता तो अर्थ की सौन्दर्य से प्रस्तुति में सुकरता होती है। वहाँ वह अपप्रयोग दोष नहीं होता।

(यतिभ्रष्टदोषनिरूपणम्)

श्लोकेषु नियतस्थानं पदच्छेदं यतिं विदुः ।
तदपेतं यतिभ्रष्टं श्रवणोद्वेजनं यथा ।।१५२।।

अन्वय— श्लोकेषु नियतस्थानं पदच्छेदं यतिं विदुः। तदपेतं श्रवणोद्वेजनं यतिभ्रष्टं (भवति)।

शब्दार्थ— श्लोकेषु = श्लोकों में। नियतस्थानं = निश्चित स्थान वाले। पदच्छेदं = पद की छिन्नता को, पद के विराम को। यतिं = यति, विराम। विदुः = जानना चाहिए। तदपेतं = उस (यति) से रहित। श्रवणोद्वेजनं = कानों को (सुनने में) उद्विग्न करने वाला। यतिभ्रष्टं = यतिभ्रष्ट (नामक दोष कहलाता है)।

अनुवाद— श्लोकों में निश्चित स्थान वाले पदविराम को यति जानना चाहिए। उस 'यति' से रहित (अत एव) कानों को उद्विग्न करने वाला यतिभ्रष्ट (नामक दोष कहलाता है)।

संस्कृतव्याख्या— यतिभ्रष्टं दोषं निरूपयत्यत्र– **श्लोकेष्विति**। **श्लोकेषु** पद्येषु **नियतस्थानं** छन्दशास्त्रे विहितं नियतं निश्चितं स्थानं यस्य तादृशं **पदच्छेदं** पदविरामं यतिं **विदुः** जानन्ति, तद्विदः इति शेषः **तदपेतं** तस्याः यतेः **अपेतं** अपगतं रहितं वा **श्रवणोद्वेजनं** कर्णोद्वेगकरं **यतिभ्रष्टं** तन्नाम दोषः भवति। यथेत्यस्य प्रयोगः निदर्शनोपक्रमार्थम्।

विशेष—

(१) श्लोकों में छन्दशास्त्र के नियमानुसार निर्धारित स्थान पर उच्चारण करते समय थोड़ा विश्राम होता है, उसी विराम वाले निश्चित स्थान को यति कहा जाता है।

(२) निश्चित स्थान पर यति का विचार न करके यदि रचना की जाती है अथवा उच्चारण किया जाता है तो इस प्रकार का उच्चारण सुनने से उद्विग्नता हो जाती है, ऐसे दोष को यतिभ्रष्ट नामक दोष कहा जाता है।

(३) यतिभ्रष्ट दोषयुक्त रचना का मुख्य आधार कानों को उद्विग्न कर देना है। इस दोष के कारण रचना सुनने में प्रिय नहीं होती। इस तथ्य की ओर दण्डी ने समुचित ध्यान दिया है।

(यतिभ्रष्टदोषाऽदोषयोः निदर्शनम्)

स्त्रीणां सङ्गी-तविधिमयमा-दित्यवंश्यो नरेन्द्रः
पश्यत्यक्लि-ष्टरसमिह शि-ष्टैरमेत्यादि दुष्टम्।
कार्याकार्या-ण्ययमविकला-न्यागमेनैव पश्यन्
वश्या[1]मुर्वी वहति[2] नृप इ-त्यस्ति चैवं[3] प्रयोगः॥१५३॥

अन्वय— अयम् आदित्यवंश्यः नरेन्द्रः इह शिष्टैः अमा अक्लिष्टरसं स्त्रीणां सङ्गीतविधिं पश्यति, इत्यादि दुष्टम्। अयं नृपः अविकलानि कार्याकार्याणि आगमेन एव पश्यन् वश्याम् उर्वीं वहति, इति एवं प्रयोगः अस्ति।

शब्दार्थ— अयम् = यह। आदित्यवंश्यः = सूर्यवंशीय। नरेन्द्रः = राजा। इह = यहाँ। शिष्टैः = शिष्ट लोगों के साथ। अक्लिष्टरसं = मनोहारी रस वाले। स्त्रीणां = स्त्रियों के। सङ्गीतविधिं = सङ्गीत के विधान के ज्ञाता को, सङ्गीतज्ञ को। पश्यति = देख रहा है। इत्यादि = आदि (प्रयोग)। दुष्टम् = दोषपूर्ण है। अयम् = यह। नृपः = राजा। अविकलानि = सभी। कार्याकार्याणि = उचित (कार्य) और अनुचित (अकार्य) कार्य को। आगमेन एव = शास्त्र के अनुसार ही। पश्यन् = देखता हुआ। वश्यां = स्ववशवर्ती, (अपने) वश में की गयी। उर्वीं = पृथ्वी को। वहति = धारण करता है, पालन करता है। इति = इस प्रकार। एवं = ऐसा। प्रयोगः = प्रयोग (दोषरहित होता है)।

अनुवाद— यह सूर्यवंशीय राजा यहाँ (इस सभामण्डल में) शिष्ट लोगों के साथ मनोहारी रस वाले स्त्रियों के (द्वारा अभिनीत) सङ्गीतज्ञ को देख रहा है— इत्यादि (प्रयोग) दोषपूर्ण है। यह राजा सभी उचित और अनुचित कर्त्तव्यों को शास्त्र के

(१) वश्याम्।
(२) उर्वीभवति।
(३) चैव।

अनुसार देखता हुआ (पालन करता हुआ) स्ववशवर्ती पृथ्वी को धारण (पालन) करता है— इस प्रकार ऐसा प्रयोग (दोष-रहित है)।

संस्कृतव्याख्या— यतिभ्रष्टस्य दोषमदोषञ्च निदर्शयत्यत्र– **स्त्रीणामिति**। **अयम्** एषः **आदित्यवंश्यः** सूर्यवंशीयः नरेन्द्रः राजा **इह** अस्मिन् सभामण्डपे **शिष्टैः अमा** सभ्यजनैः सह **स्त्रीणां** बालानां **सङ्गीतविधिः** नृत्यगीतादिविधानयुक्तं सङ्गीतकं **पश्यति** विलोकयति, **इत्यादि** ईदृशः प्रयोगः **दुष्टं** सदोषं यतिदोषोपेतं भवति। यतोहि अत्र मन्दाक्रान्ताच्छन्दः। 'मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्' इत्यनुसारं क्रमेण चतुर्थे ततः षष्ठे तत्पश्चात् सप्तमे अक्षरे विरामः कर्त्तव्यः। परञ्चास्मिन् श्लोके चतुर्थादिवर्णानां पदमध्यवर्तित्वाद् भ्रष्टयतिभङ्गत्वं श्रवणोद्वेगजनकं विद्यते, अत एव यतिभ्रष्ट दोषः। श्लोकस्योत्तरार्धे भ्रष्टयतेः अदोषत्वं निदर्शितम्। अयं पूर्वार्धे वर्णितः **नृपः** राजा **अविकलानि** सर्वाणि **कार्याकार्याणि** कार्याणि समुचितानि कर्त्तव्यानि अकार्याणि अनुचितानि कर्त्तव्यानि च **आगमेन** शास्त्रानुसारेण **एव पश्यन्** विलोकयन् विचारयन् वा **वश्यां** स्वाधीनां **उर्वीं** पृथ्वीं **वहति** धारयति पालयति वा **इति** अयम् एवम् ईदृशः **प्रयोगः** अदोषः विद्यते। उत्तरार्धे पादद्वये चतुर्थादिवर्णानां पदान्ते स्वरसन्धिवशेन यतिभ्रंशः। अत एवाऽनुद्वेगाकरत्वाद् यतिभ्रष्टं दोषाय न भवति इति भावः।

विशेष—

(१) इस पद्य के पूर्वार्ध के दो पादों में यतिभ्रष्टता की सदोषता और उत्तरार्ध के दो पादों में यतिभ्रष्टता की अदोषता को निदर्शित किया गया है।

(२) प्रस्तुत पद्य मन्दाक्रान्ता छन्द में निबद्ध है। 'मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्' के अनुसार इस छन्द के प्रत्येक पाद में चतुर्थ फिर षष्ठ पुनः सप्तम वर्ण से बाद में विराम का विधान है।

(३) पद्य के पूर्वार्ध के दो पादों में चतुर्थ और तत्पश्चात् सप्तम वर्ण पद के मध्य में आते हैं जिससे वहां पद के मध्य में ही यति करनी पड़ती है। इस प्रकार सङ्गी-त, आ-दित्य, अक्लिष्-ट और शिष्-टैर् इस रूप में पदच्छेद होता है जो सुनने में प्रीतिकर नहीं प्रतीत होता, अतः यहाँ यतिभ्रष्ट नामक दोष है।

(४) पद्य के उत्तरार्ध के दोनों पादों में चतुर्थवर्ण की यति करने के पश्चात् पुनः सप्तम वर्ण पर यति करते समय कार्याकार्याणि और अविकलानि के अन्त्यभाग में स्वरसन्धि के परिणामस्वरूप यतिभ्रंश होता है किन्तु वह सुनने में उद्वेग नहीं उत्पन्न करता क्योंकि यहाँ यति में कार्याकार्या और अविकल पद का उच्छेद नहीं

होता। उद्वेगकर न होने के कारण उत्तरार्ध में यतिभ्रष्ट होने पर भी वह दोष नहीं होता।

लुप्ते पदान्ते शिष्टस्य परत्वं निश्चितं यथा।
तथा सन्धिविकारान्तं[१] पदमेवेति वर्ण्यते ।।१५४।।

अन्वय— यथा पदान्ते लुप्ते शिष्टस्य पदत्वं निश्चितम् तथा सन्धिविकारान्तं पदम् एव इति वर्ण्यते

शब्दार्थ— यथा = जिस प्रकार। पदान्ते = पदान्त के। लुप्ते = लोप होने पर। शिष्टस्य = अवशिष्ट का, प्रकृतिभाग का, मूलभाग का। पदत्वं = पदत्व होना। निश्चितं = निश्चित रहता है। तथा = उसी प्रकार। सन्धिविकारान्तं = सन्धि के (विकार के) कारण विकृत अन्त भाग है जिसका ऐसा, सन्धि के कारण विकृत अन्त (भाग) वाला। पदम् एव = पद ही (होता है)। इति वर्ण्यते = ऐसा कहा जाता (माना जाता) है।

अनुवाद— जिस प्रकार पदान्त के लोप होने पर अवशिष्ट (मूलभाग) का पदत्व होना निश्चित रहता है उसी प्रकार सन्धि (के विकार) के कारण विकृत (विकार को प्राप्त) अन्त भाग वाला (पद) भी पद (होता है)- ऐसा माना जाता है।

संस्कृतव्याख्या— यतिभ्रष्टस्य प्रस्तुतं निदर्शनं विश्लेषयत्यत्र- **लुप्त इति**। **यथा** येन प्रकारेण **पदान्ते** पदस्यान्तभागे **लुप्ते** लोपं प्राप्ते सति **शिष्टस्य** लोपेनावशिष्टस्य प्रकृतिभागस्य **पदत्वं** पदता **निश्चितं** निश्चितरूपेण भवति **तथा** तेनैव प्रकारेण **सन्धिविकारान्तं** सन्धिविकारेण विकृतम् अन्तं अन्तभागं यस्य तादृशम् अपि **पदम्** एव भवति **इति वर्ण्यते** मन्यते। सन्धिविकृतान्तभागः कार्याकार्याणि अविकलानि चेति पदद्वयं पदान्ते यतिच्छिन्नेऽपि दोषरहितः इति भावः।

विशेष—

(१) पाणिनि के अनुसार सुबन्त और तिङन्त पद कहलाते हैं- 'सुप्तिङन्तं पदम्' (अष्टाध्यायी १.४.१४) किन्तु समास में तथा नामधातुओं में विभक्तियों का लोप होने पर भी विभक्ति को निमित्त मानकर वहाँ पदत्व माना जाता है।

(२) जिस प्रकार पद के अन्तिम भाग विभक्ति का लोप होने पर उसके पदत्त्व की कोई हानि नहीं होती उसी प्रकार पद के अन्त में विद्यमान विभक्ति की परवर्ती पद के साथ सन्धि के परिणाम स्वरूप विकार होने पर भी वह पद माना जाता है।

---

(१) -रान्तपदम्।

(३) इस प्रकार कार्याकार्याणि और अविकलानि के पदान्त वाली विभक्ति का परवर्ती से सन्धि के परिणामस्वरूप विकार होने पर भी कार्याकार्या और अविकला के पदत्व में कोई हानि नहीं होती। अतः इन कार्याकार्या और अविकला से बाद में होने वाला यतिभ्रंश पद से बाद में होने के कारण दोषपूर्ण नहीं है।

तथापि कटु कर्णानां[1] कवयो न प्रयुञ्जते।
ध्वजिनी तस्य राज्ञः केतूदस्तजलदेत्यदः ।।१५५।।

अन्वय— तथापि कवयः कर्णानां कटु न प्रयुञ्जते; (यथा–) तस्य राज्ञः ध्वजिनी केतूदस्तजलदा इति अदः (न प्रयोज्यम्)।

शब्दार्थ— तथापि = तो भी। कवयः = कवि लोग। कर्णानां = कर्णों का (को)। कटु = प्रिय न लगने वाला, उद्विग्न करने वाला। न प्रयुञ्जते = प्रयोग नहीं करते हैं। तस्य = उस। राज्ञः = राजा की। ध्वजिनी = सेना। केतूदस्तजलदा = ध्वजा (केतू) के अगले भाग से ऊपर उछाल दिया गया है (उदस्त) बादल (मेघ) जिसके द्वारा ऐसी. ध्वजा के अगले भाग से बादलों को ऊपर उछाल देने (फेक देने) वाली। इति = इस प्रकार का। अदः = यह (कर्णकटु प्रयोग नहीं करना चाहिए)।

अनुवाद— तथापि (सन्धिविकारान्त पद को पद मान लेने पर भी) कवि लोग कानों को प्रिय न लगने वाला (कानों को उद्विग्न करने वाला) प्रयोग (रचना) नहीं करते हैं। (जैसे) उस राजा की सेना ध्वजा के अगले भाग से बादलों को ऊपर उछाल देने वाली (फेंक देने वाली) है— इस प्रकार (का कर्णकटु प्रयोग नहीं करना चाहिए)।

संस्कृतव्याख्या— स्वरसन्धिविकारेऽपि क्वचिद् यतिभ्रष्टस्य दोषत्वं निरूपयत्यत्र- **तथापीति**। **तथापि** सन्धिविकारान्तस्य पदस्य पदत्वाङ्गीकृतेऽपि **कवयः** काव्यकर्त्तारः **कर्णानां** श्रोत्राणां **कटु** अप्रीतिजनकं **न प्रयुञ्जते** प्रयोगं न कुर्वन्ति। तन्निदर्शयति **तस्य राज्ञः** नृपतेः **ध्वजिनी** सेना **केतूदस्तजलदा** केतुभिः पताकाभिः उच्छ्रितैः ध्वजैः करणैः उदस्ताः उत्क्षिप्ताः जलदाः मेघाः यया तादृशी ध्वजोक्षिप्तमेघा विद्यते। **इति अदः** एतत्सदृशः प्रयोगः श्रुत्युद्वेगकरत्वात् कविभिः न प्रयोज्यम्। इत्यत्र केतु उदस्त इत्यनयोः सन्धिविकारेण निष्पन्नस्य केतूदस्त पदस्य यतिभ्रंशस्य श्रुतिकटुत्वात् सदोषत्वम्।

---

(१) वर्णानां, –कर्ण तत्।

विशेष—

(१) सन्धिविकारान्त यतिभ्रंशयुक्त पद सुनने में प्रिय लगने पर ही प्रयोजनीय होता है। यदि उसमें श्रुतिकटुत्व होता है तो वह प्रयोजनीय नहीं होता। सन्धिविकारान्त पद श्रुतिकटुत्व के कारण यतिभ्रष्ट दोष माना जाता है।

(२) केतूदस्तजलदा पद में केतु और उदस्त की सन्धि होने के कारण 'केतूदस्त' निष्पन्न हुआ है। यहाँ यतिभङ्ग का नियम नहीं लगता फिर भी श्रुतिकटुत्व होने के कारण यह यतिभ्रष्ट दोष से दूषित हो जाता है। ऐसा प्रयोग कवियों द्वारा वर्जित किया जाता है।

(भिन्नवृत्तनिरूपणम्)

वर्णानां न्यूनताधिक्ये गुरुलघ्वयथास्थितिः ।
यत्र तद्भिन्नवृत्तं स्यादेष दोषः सुनिन्दितः ।।१५६।।

अन्वय— यत्र वर्णानां न्यूनताधिक्ये गुरुलघ्वयथास्थितिः तत् भिन्नवृत्तं स्यात्, एषः सुनिन्दितः दोषः (विद्यते)।

शब्दार्थ— यत्र = जहाँ, जिस (पद्य) में। वर्णानां = वर्णों की। न्यूनताधिक्ये = न्यूनता अथवा अधिकता। गुरुलघ्वयथास्थितिः = गुरु और लघु (वर्णों) की अपेक्षित स्थिति का अभाव। तत् = वह। भिन्नवृत्तं = भिन्नवृत्ति (दोष)। स्यात् = होता है। एषः = यह। सुनिन्दितः = सर्वथा निन्दित। दोषः = दोष होता है।

अनुवाद— जिस (पद्य) में वर्णों की न्यूनता अथवा कमी और (नियमानुसार) गुरु तथा लघु वर्णों की अपेक्षित स्थिति का अभाव होता है, वह भिन्नवृत्त (नामक दोष) होता है। यह (भिन्नवृत्त नामक दोष) सर्वथा निन्दित दोष (होता है)।

संस्कृतव्याख्या— भिन्नवृत्तं दोषं निरूपयत्यत्र- **वर्णानामिति**। **यत्र** यस्मिन् पद्ये **वर्णानां न्यूनताधिक्ये** न्यूनत्वम् आधिक्यं वा तथा च **गुरुलघ्वयथास्थितिः** गुरूणां लघूनां वा वर्णानां अयथास्थितिः छन्दशास्त्रनियमानुसारं व्यवस्थोलङ्घनं तत् **भिन्नवृत्तं** तन्नाम दोषः स्यात् भवति। **एषः** भिन्नवृत्तं नाम दोषः **सुनिन्दितं** सर्वथा गर्हितं **दोषः** भवति।

विशेष—

(१) छन्दों के विषय में तीन तथ्य ध्यातव्य होते हैं- (क) पाद में अक्षरों की नियतसङ्ख्या (ख) नियत गुरु और लघु अक्षरों का विन्यास तथा (ग) नियत सङ्ख्या पर विराम या यति। यतिभग्न दोष को यतिभग्न दोष विवेचन के प्रसङ्ग

में निरूपित किया जा चुका है। अन्य दो तथ्यों में आने वाला दोष वृत्तदोष कहलाता है।

(२) जिस छन्द वाली रचना में अक्षर कम या अधिक हो अथवा गुरु के स्थान पर लघु या लघु के स्थान पर गुरु अक्षर का प्रयोग हो, वह वृत्तदोष माना जाता है।

(वर्णन्यूनत्वाधिक्यनिदर्शनम्)

इन्दुपादाः शिशिराः स्पृशन्तीत्यूनवर्णता ।
सहकारस्य किसलयान्यार्द्राणीत्यधिकाक्षरम् ।।१५७।।

अन्वय— 'शिशिराः इन्दुपादाः स्पृशन्ति' इति ऊनवर्णता, 'सहकारस्य आर्द्राणि किसलयानि' इति अधिकाक्षरम् ।

शब्दार्थ— शिशिराः = शीतल । इन्दुपादाः = चन्द्रमा की किरणें । स्पृशन्ति = स्पर्श कर रहीं हैं । इति = यह । ऊनवर्णता = न्यूनवर्णता (है) । सहकारस्य = आम्र की । आर्द्राणि = गीले (भींगे हुए) । किसलयानि = नवपल्लवों को । इति = यह । अधिकारक्षरं = अधिक अक्षरों वाला (है) ।

अनुवाद— शीतल चन्द्रमा की किरणें सहकार के नव पल्लवों का स्पर्श कर रहीं है) यहाँ (प्रथम चरण) 'इन्दुपादाः शिशिरा' में एक वर्ण की न्यूनता है तथा (तृतीय चरण) 'सहकारस्य किसलया' में एक वर्ण की अधिकता है ।

संस्कृतव्याख्या— वर्णन्यूनत्वाधिक्ययोः निदर्शनं ददात्यत्र- **इन्दुपादा इति**। **शिशिराः** शीतलाः **इन्दुपादाः** इन्दोः चन्द्रस्य पादाः किरणाः **सहकारस्य** आम्रस्य **आद्राणि** सजलकणिकानि **किसलयानि** नवपल्लवानि **स्पृशन्ति** कुर्वन्ति इत्यस्मिन् अष्टाक्षरे अनुष्टुप्छन्दे पद्ये प्रथमें चरणे 'इन्दुपादाः शिशिराः' इत्यत्र **ऊनवर्णता** एकस्य वर्णस्य न्यूनता तृतीये चरणे च 'सहकारस्य किसलया' इत्यत्र अधिकाक्षरं एकस्य वर्णस्य अधिक्यं विद्यते ।

विशेष—

(१) उदाहरित पद्य में न्यूनवर्णता और अधिकवर्णता नामक भिन्नवृत्त दोष को उदाहरित किया गया है ।

(२) इस पद्य के आठ अक्षर वाले अनुष्टुप् छन्द में प्रथम चरण 'इन्दुपादाः शिशिराः' में सात ही वर्णों का प्रयोग हुआ है । इस प्रकार यहाँ एक वर्ण की न्यूनता होने के कारण न्यूनत्व भिन्नवृत्त दोष है ।

(३) इसी अष्टाक्षर अनुष्टुप छन्द वाले उदाहरण के तृतीयपाद 'सहकारस्य किसलया'

में नौ अक्षर प्रयुक्त हुए हैं अतः एक वर्ण की अधिकता होने के कारण आधिक्य भिन्नवृत्ति दोष है।

(गुरुलघ्वयथास्थितिभिन्नवृत्तनिदर्शनम्)

कामेन बाणा निशाता[1] विमुक्ता[2]
मृगेक्षणास्वित्ययथागुरुत्वम् ।
मदन[3]बाणा निशिताः पतन्ति
वामेक्षणा[4]स्वित्ययथालघुत्वम् ।।१५८।।

अन्वय— 'कामेन मृगेक्षणासु निशाताः बाणाः विमुक्ताः' इति अयथागुरुत्वम्। 'वामेक्षणासु निशिताः मदनबाणाः पतन्ति' इति अयथालघुत्वम्।

शब्दार्थ— कामेन = कामदेव द्वारा। मृगेक्षणासु = मृगनयनी (युवतियों) पर। निशाताः = तीक्ष्ण। बाणाः = बाण। विमुक्ताः = छोड दिये गये। इति = यहाँ। अयथागुरुत्वं = अनपेक्षित गुरुता है। वामेक्षणासु = मनोहर नेत्रों वाली (युवतियों पर)। निशिताः = तीक्ष्ण। मदनबाणाः = कामबाण। पतन्ति = गिर रहे हैं। इति = यह। अयथालघुत्वम् = अनपेक्षित लघु है।

अनुवाद— कामदेव द्वारा मृगनयनी (युवतियों) पर तीक्ष्ण बाण छोड़ दिये गये, यहाँ (निशाता में शा) अनपेक्षित गुरुता है। मनोहर नेत्रों वाली (युवतियों) पर तीक्ष्ण कामबाण गिर रहे हैं, यहाँ (मदनबाणाः में द) अनपेक्षित लघुत्व है।

संस्कृतव्याख्या— गुरुत्वलघुत्वयोः भग्नवृत्तयोः निदर्शनं ददात्यत्र- **कामेनेति**। **कामेन** मदनेन **मृगेक्षणासु** मृगनयनीषु युवतीषु **निशाताः** तीक्ष्णाः **बाणाः** सायकाः **विमुक्ताः** प्रक्षिप्ताः इत्यत्र उपजातिच्छन्दसि **अयथागुरुत्वम्** निशाताः इत्यत्र शा इति अनपेक्षितं अस्थाने गुरुत्वं वर्तते। वामेक्षणासु मुग्धनेत्रासु युवतीषु **मदनबाणाः** कामबाणाः पतन्ति इत्यत्र **अयथालघुत्वं** मदनबाणाः इति द अस्थाने लघुत्वं विद्यते।

विशेष—

(१) अनपेक्षित गुरुत्व और अनपेक्षित लघुत्व के कारण होने वाले भग्नवृत्त दोष का निदर्शन इस पद्य में दिया गया है।

---

(१) निशिता।

(२) वियुक्ता।

(३) स्मरस्य, स्मरेण।

(४) मृगेक्षणा-।

(२) यह पद्य उपजाति छन्द में उपनिबद्ध है। 'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः' के अनुसार इन्द्रवज्रा छन्द के प्रत्येक चरण में क्रम से दो तगण, एक जगण तथा दो गुरु अक्षर होते हैं तथा 'उपेन्द्रवज्रा प्रथमे लघौ सा' के अनुसार यदि इन्द्रवज्रा छन्द का प्रथम अक्षर लघु हो जाय– इस प्रकार छन्द में जगण, तगण, जगण और दो गुरु अक्षर हो जाय तो वह उपेन्द्रवज्रा छन्द होता है।

(३) उपजाति छन्द में प्रथम और चतुर्थ चरण इन्द्रवज्रा तथा शेष दो द्वितीय और तृतीय चरण उपेन्द्रवज्रा छन्द वाले होते हैं।

(४) उपजाति छन्द में लक्षण के अनुसार प्रथम चरण का सप्तम अक्षर 'शा' को लघु होना चाहिए जो गुरु है। लघु के स्थान पर गुरु का प्रयोग होने के कारण इस चरण में गुरुत्व भग्नवृत्त नामक दोष है।

(५) उपजाति छन्द में तृतीय पाद का द्वितीय अक्षर 'द' को गुरु होना चाहिए जो लघु है। गुरु के स्थान पर लघु का प्रयोग होने के कारण इन चरण में लघुत्व भग्नवृत्त नामक दोष है।

(विसन्धिदोषनिरूपणम्)

न संहितां विवक्षामीत्यसन्धानं पदेषु यत् ।
तद्विसन्धीति निर्दिष्टं न प्रगृह्यादिहेतुकम् ।।१५९।।

अन्वय— संहितां न विवक्षामि इति पदेषु यत् असन्धानं तत् विसन्धि इति निर्दिष्टं, प्रगृह्यादिहेतुकम् न (भवति)।

शब्दार्थ— संहितां = सन्धि को। न = नहीं। विवक्षामि = प्रयोग करना चाहता हूँ। इति = इस प्रकार। पदेषु = (दो या अधिक) पदों के मध्य में। यत् = जो। असन्धान = सन्धि का अभाव, सन्धि का न किया जाना। तत् = वह। विसन्धिः इति = विसन्धि नामक (दोष)। निर्दिष्टं = निर्दिष्ट किया गया है, कहा गया है। प्रगृह्यादिहेतुकम् = प्रगृह्य इत्यादि के कारण (सन्धि का) न किया जाना। न = (दोष) नहीं होता।

अनुवाद— 'मैं सन्धि का प्रयोग नहीं करना चाहता हूँ' इस प्रकार (की इच्छा से) (दो या दो से अधिक पदों के मध्य में भी) सन्धि नहीं की जाती; वह विसन्धि नामक (दोष) कहा गया है। प्रगृह्य इत्यादि के कारण (सन्धि का न किया जाना) (दोष) नहीं होता।

संस्कृतव्याख्या— विसन्धिदोषं निरूपयत्यत्र– **न संहितामिति**। **संहितां** सन्धिं **न विवक्षमि** न प्रयोजितुमभिलषामि इति निश्चित्य **पदेषु** पदयोः द्वयोः मध्ये द्वयाधि-

केषु वा पदेषु यद् **असन्धानं** सन्ध्यभावः दृश्यते **तत्** सन्ध्यभावः **विसन्धि इति** तन्त्रामकदोषः इति **निर्दिष्टं** कथितं, **प्रगृह्यादिहेतुकं** प्रगृह्यादयः प्रगृह्यसंज्ञकस्वरादयः हेतवः कारणानि यत्र तादृशम् असन्धानं दोषः **न** भवति असन्धानस्य शास्त्राभिमतत्वात्।

विशेष—

(१) व्याकरणशास्त्र में विहित सन्धि नियमों के अनुसार प्राप्त सन्धियों को सन्धि करके काव्य में प्रयोग करना चाहिए। सन्धि प्राप्त होने पर भी स्वेच्छानुसार सन्धि न करना विसन्धि नामक दोष माना जाता है।

(२) 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' (अष्टाध्यायी (६.११५-१२८) के अनुसार स्वर बाद में होने पर प्लुत स्वर और प्रगृह्य स्वर प्रकृतिभाव से रहते हैं" के द्वारा सन्धि न करना ही शास्त्रीय दृष्टि से सङ्गत है, अतः इन स्थलों पर सन्धि न करना दोषरहित है। इन प्रयोग-स्थलों पर सन्धि न करने से रचना विसन्धि दोष से दूषित नहीं होती।

(३) यद्यपि वाक्य में सन्धि करना अनिवार्य नहीं है तो भी 'विवक्षा' विशेषतः पद्यरचना में (पद्यार्ध भाग में) सन्धि न करना अभिमत नहीं है—

संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते॥

(४) वामन ने इस सम्बन्ध में कहा है— 'नित्या संहितैकपदवत् पादेष्वर्धान्तवर्जम्' (५.१.२) अर्थात् श्लोकार्ध के अन्त के अतिरिक्त अन्य श्लोक के चरणों में एकपद के समान सन्धि करनी चाहिए।

(विसन्धिदोषनिदर्शनम्)

मन्दानिलेन चरता[1] अङ्गनागण्डमण्डले।
लुप्तमुद्भेदि[2] घर्माम्भो नभस्यस्मद्वपुष्यपि[3]॥१६०॥

अन्वय— नभसि चरता मन्दानिलेन अङ्गनागण्डमण्डले अस्मद्वपुषि अपि उद्भेदि घर्माम्भः लुप्तम्।

शब्दार्थ— नभसि = आकाश में। चरता = विचरण करते हुए। मन्दानिलेन = मन्द पवन के द्वारा। अङ्गनागण्डमण्डलं = सुन्दरी (स्त्री) के कपोलों (गालों) पर।

---

(१) चलता, अमूना।

(२) उद्भेद-।

(३) अस्मन्मनस्यापि।

अस्मद्वपुषि = मेरे शरीर पर। उद्भेदि = उत्पन्न, निकला हुआ। घर्माम्भः = पसीना। लुप्तं = विलुप्त कर दिया गया, सुखा दिया गया, शोषित कर दिया गया।

अनुवाद— आकाश में विचरण करते हुए मन्द पवन के द्वारा सुन्दरी (स्त्री) के कपोलों पर और मेरे शरीर पर निकला हुआ पसीना शोषित कर लिया गया (सुखा दिया गया)।

संस्कृतव्याख्या—विसन्धिदोषं निदर्शयत्यत्र- **मन्दानिलेनेति**। **नभसि** आकाशे **चरता** विचरता **मन्दानिलेन** मन्दपवनेन **अङ्गनागण्डमण्डले** अङ्गनायाः सुन्दर्याः गण्ड-मण्डले कपोलप्रदेशे **अस्मद्वपुषि** मम शरीरे **अपि** च **उद्भेदि** निर्गतं **घर्माम्भः** स्वेद-जलं **लुप्तं** विलुप्तं शोषितं वा कृतम्। पद्यस्य पूर्वार्धे चरता अङ्गनागण्डमण्डले इत्यनयोः व्याकरणानुसारं सन्धिप्राप्तेऽपि छन्दोभङ्गभयात्सन्धिः न कृता विद्यते अत एवात्र सन्धिप्राप्तेऽपि असन्धानत्वाद् विसन्धिः दोषः।

विशेष—

(१) प्रस्तुत पद्य के पूर्वार्ध में चरता और अङ्गनागण्डमण्डले- इन दो पदों में व्याकरण के नियमानुसार दीर्घसन्धि प्राप्त होने पर भी छन्दभङ्ग के कारण सन्धि नहीं की गयी है। अतः सन्धान न होने के कारण यहाँ विसन्धि नामक दोष है।

(प्रगृह्यादिहेतुकसन्ध्यभावनिदर्शनम्)

मानेर्ष्ये इह शीर्येते स्त्रीणां हिमऋतौ[1] प्रिये।
आसु रात्रिष्विति[2] प्राज्ञैरज्ञातन्यङ्गमीदृशम्[3] ।।१६१।।

अन्वय— इह हिमऋतौ आसु रात्रीषु स्त्रीणां मानेर्ष्ये शीर्येते इति ईदृशं प्राज्ञैः अज्ञातन्यङ्गम् (मतम्)।

शब्दार्थ— इह = इस। हिमऋतौ = हेमन्त ऋतु की। आसु = इन। रात्रीषु = रात्रियों में। स्त्रीणां = युवतियों का। मानेर्ष्ये = प्रणयकोप और (सपत्नी-विषयक) ईर्ष्या। शीर्येते = क्षीण हो जाती हैं, विनष्ट हो जाती हैं। इति ईदृशं = इस प्रकार का, (प्रयोग)। प्राज्ञैः = विद्वानों द्वारा। अज्ञातन्यङ्गम् = अज्ञात दोष वाला, दोषरहित (माना जाता है)।

अनुवाद— इस हेमन्त ऋतु की इन रात्रियों में युवतियों का प्रणयकोप और

---

(१) ईदृशी स्त्रीणां नास्तां हिम-।

(२) अमू आदिष्विति।

(३) आत्रातं व्यस्तमीदृशम्, ज्ञातव्यं, अज्ञातं न्यङ्गम्, न्यस्तम्।

(सपत्नी-विषयक) ईर्ष्या विनष्ट हो जाती है, इस प्रकार का (प्रयोग) विद्वानों द्वारा दोषरहित (माना जाता है)।

संस्कृतव्याख्या— प्रगृह्यादिहेतुकस्य सन्ध्यभावस्य निर्दोषत्वं निदर्शयत्यत्र– **मानेर्ष्ये इति**। **इह** अस्मिन् **हिमऋतौ** हेमन्तर्तौ **आसु रात्रिषु** निशासु **स्त्रीणां** युवतीनां **मानेर्ष्ये** मानः प्रणयकोपः ईर्ष्या च सपत्नीविषयकमत्सरः च **शीर्येते** क्षीणत्वं विनाशत्वं वा प्राप्येते **इति ईदृशं** प्रयोगं **प्राज्ञैः** विद्वद्भिः **अज्ञातन्यङ्गम्** अज्ञातम् अविदितं न्यङ्गं यत्र तादृशं दोषरहितं मतम्। मानेर्ष्ये इत्यत्र पदान्तः एकारः प्रगृह्यः अत एव परेण इकारेण सन्धिं न प्राप्य प्रकृत्यावतिष्ठते। अत एवात्र प्रगृह्य-हेतुकम् असन्धानम्। अनेन कारणेन प्रयोगोऽयमदोषः।

विशेष—

(१) प्रस्तुत उदाहरण में मानेर्ष्ये प्रथमा विभक्ति का द्विवचनान्त पद है। इसका पदान्त एकार 'ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम्' (अष्टाध्यायी १.१.११) के अनुसार प्रगृह्य है। अतः इस एकार की परवर्ती इकार के साथ 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' (अष्टा-ध्यायी ६.१.१२५) के अनुसार सन्धि न होकर प्रकृतिभाव ही विद्यमान है।

(२) इस उदाहरण में मानेर्ष्ये और इह के एकार और इकार में सन्धि न होने का कारण एकार का प्रगृहत्व है। इस प्रकार यहाँ प्रगृह्यहेतुक असन्धान है। प्रगृह्य-हेतुक असन्धान के कारण यहाँ विसन्धि दोष नहीं है।

(देशादिविरोधिदोषनिरूपणम्)

देशोऽद्रि[1]वनराष्ट्रादि कालो: रात्रिं[2]दिवर्तवः।
नृत्य[3]गीतप्रभृतयः कलाः कामार्थसंश्रयाः॥१६२॥
चराचराणां भूतानां[4] प्रवृत्तिर्लोकसंज्ञिता।
हेतुविद्यात्मको न्यायः सस्मृतिः श्रुतिरागमः॥१६३॥
तेषु तेष्वयथारूढं[5] यदि किञ्चित् प्रवर्तते।
कवेः प्रमादाद् देशादिविरोधीत्येतदुच्यते॥१६४॥

---

(१) देशो हि।
(२) नक्तं-।
(३) नृत्त-।
(४) लोकानां।
(५) -भूतं।

अन्वय— अद्रिवनराष्ट्रादि देशः, रात्रिंदिवर्तवः कालः कामार्थसंश्रयाः नृत्यगीत-प्रभृतयः कलाः, चराचराणां भूतानां प्रवृत्तिः लोकसंज्ञिता, हेतुविद्यात्मकः न्यायः, सस्मृतिः श्रुतिः आगमः, तेषु तेषु कवेः प्रमादात् यदि किञ्चित् अयथारूढं प्रवर्तते, एतत् देशादिविरोधि इति उच्यते।

शब्दार्थ— अद्रिवनराष्ट्रादि = पर्वत, वन, राष्ट्र इत्यादि। देशः = देश (के अन्तर्गत समाहित है)। रात्रिंदिवर्तवः = रात, दिन और ऋतुएँ। कालः = काल (में समाहित है)। कामार्थसंश्रयाः = काम और अर्थ के आश्रित। नृत्यगीतप्रभृतयः = नृत्य, गीत इत्यादि। कलाः = कलाएँ (हैं)। चराचराणां = जङ्गम और स्थावर। भूतानां = प्राणियों की। प्रवृत्तिः = व्यवहार। लोकसंज्ञिता = लोक नाम से अभिहित होता है। हेतुविद्यात्मकः = तर्कविद्या वाला (तर्कशास्त्र)। न्यायः = न्याय (कहलाता है)। सस्मृतिः = स्मृति के सहित। श्रुतिः = वेद। आगमः = आगम (कहलाता है)। तेषु तेषु = उन उन (विषयों के सम्बन्ध) में। कवेः = कवि के। प्रमादात् = प्रमाद के कारण। यदि = यदि। किञ्चित् = कुछ। अयथारूढं = प्रसिद्धि से विपरीत। प्रवर्तते = प्रयोग में लाया जाता है। एतत् = यह। देशादिविरोधि = देशादिविरोधी। इति उच्यते = कहा जाता है।

अनुवाद— पर्वत-वन-राष्ट्र इत्यादि देश (के अन्तर्गत समाहित) हैं, रात-दिन और ऋतुएँ काल (में समाहित) हैं, काम और अर्थ के आश्रित नृत्य-गीत इत्यादि कलाएँ हैं, जङ्गम और स्थावर का व्यवहार लोक नाम से अभिहित होता है, तर्कशास्त्र न्याय (कहलाता है), स्मृति के सहित वेद आगम कहलाता है। उन-उन (विषयों के सम्बन्ध) में कवि के प्रमाद के कारण यदि कुछ प्रसिद्धि के विपरीत प्रयोग में लाया जाता है तो यह देशादिविरोधी (दोष) कहा जाता है।

संस्कृतव्याख्या— देशादिविरोधिदोषं निरूपयत्यत्र– **देश इति**। **अद्रिवन-राष्ट्रादि** अद्रिः पर्वतः वनम् अरण्यं राष्ट्रं जनपदः एवमादयः **देशः** देशत्वेन मन्यते। **रात्रिंदिवर्तवः** रात्रिः दिनं ऋतुश्च **कालः** मतः। **कामार्थसंश्रयाः** कामस्य अर्थस्य चाश्रयभूताः कामार्थसाधकाः **नृत्यगीतप्रभृतयः** नृत्यगीतादयः **कलाः** उच्यन्ते। **चरा-चराणां** जङ्गमस्थावराणां **भूतानां** प्राणिनां **प्रवृत्तिः** व्यवहारः **लोकसंज्ञिता** लोक-नाम्ना विश्रुता। **हेतुविद्यात्मकः** तर्कशास्त्रं **न्यायम्** इत्यभिधीयते। **सस्मृतिः** स्मृतिभिः सहितः **श्रुतिः** वेदः **आगमः** इत्युच्यते। **तेषु तेषु** देशादिविषयेषु **कवेः** काव्य-कर्तृणः **प्रमादात्** अवधानवशात् **यदि** चेत् **किञ्चित् अयथारूढं** प्रसिद्धिविपरीतं **प्रवर्तते** प्रयोगं क्रियते **एतत्** प्रसिद्धिविपरीतप्रयोगं तत्तद्विरोधाद् **देशादिविरोधि** तन्नाम दोषः **उच्यते** कथ्यते।

विशेष—

(१) देश इत्यादि छः पदार्थों के विषय में यदि कवि के प्रमाद (असावधानी) के कारण यदि कोई ऐसी बात कह दी जाती है जो उन उन आधारों में प्रसिद्धि के विपरीत हो तो वह विरोधिदोष माना जाता हैं।

(२) देशादि के आधार पर विरोधी दोष छः प्रकार के होते हैं– (क) देशविरोधी (ख) कालविरोधी (ग) कलाविरोधी (घ) लोकविरोधी (ङ) न्यायविरोधी और (च) आगमविरोधी।

(अद्रिवनरूपदेशविरोधिदोषनिदर्शनम्)

कर्पूरपादपामर्श[1] सुरभिर्मलयानिलः ।
कलिङ्गवनसम्भूता मृगप्राया मतङ्गजाः ।।१६५।।

अन्वय— मलयानिलः कर्पूरपादपामर्शसुरभिः (विद्यते) कलिङ्गवनसम्भूताः मतङ्गजाः मृगप्रायाः (भवन्ति)।

शब्दार्थ— मलयानिलः = मलय-पवन। कर्पूरपादपामर्शसुरभिः = कर्पूर वृक्षों के संसर्ग से सुगन्धित (है)। कलिङ्गवनसम्भूताः = कलिङ्ग के वन में उत्पन्न। मतङ्गजाः = हाथी। मृगप्रायाः = मृग के समान लघुकाय (अथवा मृगजाति वाले) (होते हैं)।

अनुवाद— मलयपवन कर्पूर (वृक्षों) के संसर्ग से सुगन्धित है। कलिङ्ग के वन में उत्पन्न हाथी मृग के समान लघुकाय (अथवा मृगजाति वाले) होते हैं।

संस्कृतव्याख्या— अद्रिवनरूपं देशविरोधिदोषं निदर्शयत्यत्र– **कर्पूरेति**। **मलयानिलः** मलयपवनः **कर्पूरपादपामर्शसुरभिः** कर्पूरपादपानां कर्पूरवृक्षाणाम् आमर्शेण संसर्गेण सुरभिः सुगन्धितः विद्यते **कलिङ्गवनसम्भूताः** कलिङ्गवने कलिङ्गारण्ये सम्भूताः प्रभवाः **मतङ्गजाः** हस्तिनः **मृगप्रायाः** हरिणवद् लघुकायाः मृगजातिप्रायाः वा भवन्ति। मलयपर्वते कर्पूरवृक्षाणाम् उत्पत्त्यभावाद् कलिङ्गवनप्रभवाणां च हस्तिनां विशालकायत्वादत्र अद्रिवनरूपः देशविरोधः अत एव देशविरोधिदोषः।

विशेष—

(१) मलयपर्वत पर चन्दन के वृक्ष उत्पन्न होते हैं, कर्पूर के नहीं तथा कलिङ्ग वन में उत्पन्न होने वाले हाथी विशालकाय होते हैं, लघुकाय नहीं। इस प्रकार यहाँ

---

(१) -पाश्पर्शी सु-।

मलयपर्वत और कलिङ्गवन के विषय में वास्तविकता से विरुद्ध वर्णन हुआ है अतः यहाँ अद्रिवनरूप देशविरोधी दोष है।

(राष्ट्ररूपदेशविरोधिदोषनिदर्शनम्)

चोलाः[1] कालागरुश्याम[2]कावेरीतीरभूमयः[3] ।
इति देशविरोधिन्या वाचः प्रस्थानमीदृशम् ।।१६६।।

अन्वय— कालागरुश्यामकावेरीतीरभूमयः चोलाः (सन्ति), इति ईदृशं देशविरोधिन्याः वाचः प्रस्थानं (अस्ति)।

शब्दार्थ— कालागरुश्यामकावेरीतीरभूमयः = कालागरु (के वृक्षों) से श्यामल कावेरी (नदी) का तटवर्ती भाग। चोलाः = चोल (नामक जनपद) है। इति ईदृशं = यह इस प्रकार। देशविरोधिन्याः = देशविरोधी। वाचः = कथन। प्रस्थानं = उदाहरण है।

अनुवाद— कालागरु (के वृक्षों) से श्यामल कावेरी (नदी) का तटवर्ती प्रदेश चोल (जनपद) है, यह इस प्रकार देशविरोधी कथन का उदाहरण है।

संस्कृतव्याख्या— राष्ट्रविरोधिदोषं निदर्शयत्यत्र- **चोला इति। कालागरुश्यामकावेरीतटभूमयः** कालागरुवृक्षैः श्यामाः श्यामलीकृताः कावेरीतीरभूमयः कावेरीतीरस्य कावेरीनदीतटस्य भूमयः प्रदेशाः यत्र तादृशाः **चोलाः** चोलजनपदाः सन्ति; **इति ईदृशं** एवं प्रकारकं **देशविरोधिन्याः वाचः** कथनस्य वाक्प्रयोगस्य वा **प्रस्थानं** स्वरूपं निदर्शनं वा विद्यते। चोलजनपदे कालागुर्वभावाद् अत्र देशविरोधकथनम् अत एव देशविरोधिदोषः।

विशेष—

(१) भारतवर्ष में कालागरु वृक्ष उत्तरापथ, भूटान, असम के पहाड़ी क्षेत्रों- गारो, नाग, कछार इत्यादि में उत्पन्न होता है दक्षिणापथ में नहीं। दक्षिणापथ चोल में कालागरु की उत्पत्ति का वर्णन राष्ट्रविरोधी है अतः यहाँ राष्ट्रविरोधी नामक दोष है।

(कालविरोधिदोषनिदर्शनम्)

पद्मिनी नक्तमुन्निद्रा स्फुटत्यह्नि कुमुद्वती ।
मधुरुत्फुल्लनिचुलो निदाघो मेघदुर्दिनः[4] ।।१६७।।

---

(१) कालाः।

(२) कालागुरु-, -श्यामाः।

(३) न मेरुवनसंच्छन्ना केरलाः कुङ्कुमारुणाः।

(४) हिमजाड्यकृत्।

अन्वय— पद्मिनी नक्तौ उन्निद्रा, कुमुद्वती अह्नि स्फुटति, मधुः उत्फुल्लनिचुलः निदाघः मेघदुर्दिनः (विद्यते)।

शब्दार्थ— पद्मिनी = कमलिनी। नक्तौ = रात में। उन्निद्रा = खिलती है। कुमुद्वती = कुमुदिनी। अह्नि = दिन में। स्फुटति = खिलती है। मधुः = वसन्त। उत्फुल्लनिचुलः = खिले हुए वानीर (निचुल) से युक्त है। निदाघः = ग्रीष्मकाल। मेघदुर्दिनः = मेघाच्छन्न होने से दुर्दिन वाला (होता है)।

अनुवाद— कमलिनी रात में खिलती है, कुमुदिनी दिन में खिलती है, वसन्त (काल) खिले हुए वानीर (पुष्पों) से युक्त है और ग्रीष्म (काल) मेघाच्छन्न होने से दुर्दिन वाला (होता है)।

संस्कृतव्याख्या— कालविरोधिदोषं निदर्शयत्यत्र- **पद्मिनीति**। **पद्मिनी** कमलिनी **नक्तौ** रात्रौ **उन्निद्रा** विकसिता भवति। **कुमुद्वती** कुमुदिनी **अह्नि** दिवसे **स्फुटति** विकसति। **मधुः** वसन्तकालः **उत्फुल्लनिचुलः** उत्फुल्लाः विकसिताः निचुलाः वानीराः यस्मिन् तादृशः विद्यते। **निदाघः** ग्रीष्मकालः **मेघदुर्दिनः** मेघेन बादलाच्छन्नेन दुर्दिनानि अन्धकारयुक्तानि दिनानि यस्मिन् तादृशः भवति। कमलिनी दिवसे कुमुदिनी च रात्रौ विकसति परञ्चात्र तद्विपरीतेन कथनादत्र रात्रिरूपं दिनरूपं च कालविरोधिदोषः। तथा च वानीरपुष्पाणि वर्षाकाले विकसन्ति तेषां वसन्तकाले पुष्पितेन, वर्षाकाले च जायमानानां मेघघटानां ग्रीष्मकाले वर्णनम् अपि ऋतुविरुद्धं वर्तते। अत एव ऋतुविरुद्धवर्णनाद् ऋतुविरोधिरूपं कालविरोधिदोषः विद्यते।

विशेष—

(१) कमलिनी दिन में सूर्य की किरणों के सामीप्य से खिलती है किन्तु प्रस्तुत पद्य में रात्रि में कमालिनी के खिलने का वर्णन किया गया है जो रात्रि के विपरीत कार्य का कथन है अतः यहाँ रात्रिविरोधीरूप कालविरोधिदोष है।

(२) कुमुदिनी रात में खिलती है, किन्तु इस पद्य में कुमुदिनी के दिन में खिलने का वर्णन किया गया है जो दिन के कार्य के विपरीत है अतः यहाँ दिनविरोधीरूप कालविरोधी दोष है।

(३) वानीर के पुष्प वर्षाकाल में खिलते हैं किन्तु वसन्तकाल में उनके खिलने का वर्णन वसन्तकाल के कार्य के विपरीत है। इसी प्रकार मेघमाला भी वर्षाकाल में उमड़ती है किन्तु उसके ग्रीष्मकाल में उमड़ने का वर्णन ग्रीष्मकाल के विपरीत है। इस प्रकार यहाँ ऋतुओं के विपरीत कार्य का वर्णन होने के करण यहाँ ऋतुविरोधीरूप कालविरोधिदोष हैं।

श्रव्य[१]हंसगिरो वर्षाः शरदामत्तबर्हिणी[२] ।
हेमन्तो निर्मलादित्यः शिशिरः श्लाघ्यचन्दनः[३] ।।१६८।।

अन्वय— वर्षाः श्रव्यहंसगिरः शरत् आमत्तबर्हिणी हेमन्तः निर्मलादित्यः शिशिरः श्लाघ्यचन्दनः (भवति)।

शब्दार्थ— वर्षाः = वर्षाकाल। श्रव्यहंसगिरः = सुनायी पड़ते हुए हंसों की कूजन से युक्त। शरत् = शरत्काल। आमत्तबर्हिणी = मदमत्त मयूरों वाला। हेमन्तः = हेमन्तकाल। निर्मलादित्यः = निर्मल सूर्य (की किरणों) वाला। शिशिरः = शिशिर काल। श्लाघ्यचन्दनः = मनभावन चन्दन (के लेप) वाला (होता है)।

अनुवाद— वर्षाकाल सुनायी पड़ते हुए हंसों की कूजन से युक्त (होता है) (अर्थात् वर्षाकाल में हंसों की कूजन सुनायी पड़ती है), शरत्काल मदमत्त मयूरों वाला (अर्थात् शरत्काल में मयूर मदमत्त हो जाते हैं), हेमन्तकाल निर्मल सूर्य (की किरणों) वाला (अर्थात् हेमन्तकाल में सूर्य की किरणें प्रखर हो जाती हैं) और शिशिरकाल मनभावन चन्दन के लेप वाला होता है (अर्थात् शिशिरकाल में चन्दन का लेप रुचिकर लगता है)।

संस्कृतव्याख्या— रात्रिंदिवरूपं ऋतुद्वयरूपं च कालविरोधिदोषं निदर्श्यावशिष्टर्तुचतुष्टयरूपं कालविरोधिदोषं निदर्शयत्यत्र– **श्रव्येति**। **वर्षाः** वर्षाकालः **श्रव्यहंसगिरः** श्रवणसुखदहंसरुतयः **शरद्** शरत्कालः **आमत्तबर्हिणीः** आमत्ताः बर्हिणः मयूराः यत्र तादृशः **हेमन्तः** हेमन्तकालः **निर्मलादित्यः** भास्वरसूर्यकिरणयुतः **शिशिरः च** शिशिरकालः **श्लाघ्यचन्दनः** श्लाघ्यं रुचिकरं चन्दनं चन्दनलेपनं यस्मिन् तादृशः भवति। सर्वमेतद्वर्णनम् ऋतुकार्यविरुद्धं विद्यते अत एवात्र ऋतुविरोधरूपं कालविरोधिदोषः।

इति कालविरोधस्य दर्शिता गतिरुदृशी ।
मार्गः कलाविरोधस्य मनागुद्दिश्यते यथा ।।१६९।।

अन्वय— इति कालविरोधस्य ईदृशी गतिः दर्शिता। कलाविरोधस्य मार्गः मनाक् उद्दिश्यते।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। कालविरोधस्य = कालविरोध की। ईदृशी =

(१) श्राव्य-।

(२) शरदो मत्तबर्हिणः।

(३) -नन्दनः।

ऐसी। गतिः = क्रम। दर्शिता = निर्दिष्ट (निदर्शित) कर दिया गया, उदाहरित कर दिया गया। कलाविरोधस्य = कलाविरोध का। मार्गः = क्रम। मनाक् = थोड़ा, सङ्क्षेप में। उद्दिश्यते = निदर्शित किया जा रहा है, उदाहरित किया जा रहा है।

अनुवाद— इस प्रकार कालविरोध (कालविरोधी दोष) का ऐसा क्रम उदाहरित कर दिया गया। (अब) कलाविरोध (कलाविरोधी दोष) का क्रम सङ्क्षेप में उदाहरित किया जा रहा है।

संस्कृतव्याख्या— कालविरोधिदोषस्य निदर्शनमुपसंहरन् कलाविरोधिदोषस्य निदर्शनार्थम् उपक्रमते- **इतीति**। **इति** अनेन प्रकारेण **कालविरोधस्य** कालविरोधिनः दोषस्य **ईदृशी गतिः** क्रमं **दर्शिता** उदाहृता। अधुना **कलाविरोधस्य** कलाविरोधिनः दोषस्य **मार्गः** क्रमः **मनाक्** सङ्क्षेपेण **उद्दिश्यते** निदर्श्यते। यथेति निदर्शनोपक्रमार्थम्।

विशेष—

(१) चौसठ कलाएँ मानी जाती हैं। सभी कलाओं की बात तो दूर है किसी एक कला में भी दोषों का निरूपण करना कठिन कार्य है। इसलिए दण्डी ने स्वकृत कला-विरोध प्रदर्शन को मनाक् कहा है।

(नाट्यगीतकलाविरोधिदोषनिदर्शनम्)

वीरशृङ्गारयोर्भावौ स्थायिनौ क्रोधविस्मयौ।
पूर्वं[1] सप्तस्वरः सोऽयं भिन्नग्रामः[2] प्रवर्तते ॥१७०॥

अन्वय— वीरशृङ्गारयोः स्थायिनौ भावौ क्रोधविस्मयौ (स्तः)। सः अयं पूर्वसप्तस्वरः भिन्नग्रामः प्रवर्तते।

शब्दार्थ— वीरशृङ्गारयोः = वीर और शृङ्गार (रस) के। स्थायिनौ = स्थायी। भावौ = भाव। क्रोधविस्मयौ = क्रोध और विस्मय हैं। सः = वह (प्रसिद्ध)। अयं = यह। पूर्वसप्तस्वरः = सात स्वरों से युक्त। भिन्नग्रामः = भिन्नाग्रम (नामक गीतिविधान)। प्रवर्तते = चल रहा है।

अनुवाद— वीर और शृङ्गार (रस) के स्थायिभाव क्रोध और विस्मय हैं। वह (प्रसिद्ध) सात स्वरों से युक्त यह भिन्नग्राम (नामक गीतिविधान) चल रहा है।

संस्कृतव्याख्या— नाट्यगीतकलाविरोधिदोषं निदर्शयत्यत्र- **वीरेति**। **वीर-शृङ्गारयोः** वीरस्य च शृङ्गारस्य च रसस्य **स्थायिनौ भावौ क्रोधविस्मयौ** क्रोधश्च

(१) पूर्णः।

(२) -मार्गः।

विस्मयश्च स्तः । वीरस्य स्थायिभावः उत्साहः, न तु क्रोधः, शृङ्गारस्य च स्थानिभाव रतिः, न तु विस्मयः । अत्र नाट्यरसविषयकविरोधाद् नाट्यविरोधिदोषः । **सः** प्रसिद्धः **पूर्णसप्तस्वरः** सप्तस्वरेण पूर्णः युक्तः **अयं भिन्नग्रामः** नाम गीतविधानविशेषः **प्रवर्तते** प्रचलति । भिन्नग्राम नाम गीतविशेषः पञ्चस्वरयुक्तः षट्स्वरयुक्तः वा भवति, न तु सप्तस्वरयुक्तः । अत्र गीतविषयकविरोधात् गीतविरोधिदोषः ।

विशेष—

(१) नाट्य चौंसठ कलाओं में से एक कला है । रस नाट्य के विषय हैं । वीर और शृङ्गार के स्थायिभाव क्रमशः उत्साह और रति हैं किन्तु यहाँ वीर का स्थायिभाव क्रोध और शृङ्गार का स्थायिभाव विस्मय बताया गया है जो विपरीत है । इस विपरीत कथन के कारण यहाँ विरोधिदोष है । यह विरोधिदोष नाट्यविषयक रस से सम्बन्धित है अतः यह नाट्यविरोधिदोष है ।

(२) भिन्नग्राम नामक गीतविधान पञ्चस्वर या षट्स्वर वाला होता है किन्तु यहाँ उसको सप्तस्वरयुक्त बतलाया गया है जो विरुद्ध कथन है । इसलिए यहाँ गीतविरोधि दोष है ।

(३) नाट्य और गीत दोनों कलाएँ हैं । इस प्रकार यहाँ कलाविरोधि दोष है ।

(कलाविरोधमुपसंहारः)

इत्थं कलाचतुष्षष्टौ विरोधः[१] साधु नीयताम् ।
तस्याः कला[२]परिच्छेदे रूपमाविर्भविष्यति ।।१७१।।

अन्वय— इत्थं कलाचतुष्षष्टौ विरोधः साधु नीयताम् । तस्याः रूपं कलापरिच्छेदे आविर्भविष्यति ।

शब्दार्थ— इत्थं = इस प्रकार । कलाचतुःषष्टौ = चौसठ कलाओं में । विरोधः = विरुद्धता, विपरीतता । साधु = सम्यक् प्रकार से, अच्छी प्रकार से । नीयताम् = जानना चहिए । तस्याः = उस (चौसठ कलाओं) का । रूपं = स्वरूप । **कलापरिच्छेदे** = कलापरिच्छेद में । आविर्भविष्यति = स्पष्ट किया जाएगा ।

अनुवाद— इस प्रकार चौसठ कलाओं में विरोध (विपरीता) को सम्यक् प्रकार से जानना चाहिए । उन (चौंसठ) कलाओं) का स्वरूप कलापरिच्छेद (जो सम्प्रति उपलब्ध नहीं है) में स्पष्ट किया जाएगा ।

---

(१) -षष्टिविरोधः ।

(२) काले ।

संस्कृतव्याख्या— कलाविरोधिदोषमुपसंहरति– **इत्थमिति**। **इत्थम्** अनेन प्रकारेण **कलाचतुःषष्टौ** चतुष्षष्ट्यासु कलासु **विरोधं** विपरीतकथनं **नीयतां** ज्ञायताम्। **तस्याः** कलचतुःषष्ठ्याः **रूपं** स्वरूपं **कलापरिच्छेदे** तदाख्ये सम्प्रत्यनुपलब्धमाने ग्रन्थस्यास्य कलापरिच्छेदे **आविर्भविष्यति** स्पष्टं भविष्यति।

विशेष—

(१) चौसठ कलाएँ होती हैं। प्रत्येक कला में विरोध होने के कारण चौसठ प्रकार के कलाविरोधिदोष भी होने चाहिए। इन सभी दोषों का निरूपण आचार्य ने नहीं किया है किन्तु उनका ज्ञान काव्याचार्यों तथा कवियों को होना चाहिए।

(२) कविजन इन दोषों को जानकर उनसे वचने का प्रयत्न करेंगे तथा काव्याचार्य इन दोषों से दूषित काव्य की पहचान करने में समर्थ होगे। इसीलिए दण्डी ने इन दोषों के ज्ञान पर बल दिया है।

(३) इस कथन से यह प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ में कलापरिच्छेद नामक एक और परिच्छेद होना चाहिए जो सम्प्रति उपलब्ध नहीं है।

(लोकविरोधिदोषनिदर्शनम्)

आधूतकेसरो[१] हस्ती तीक्ष्णशृङ्गस्तुरङ्गमः।
गुरु[२]सारोऽयमेरण्डो निःसारः खदिरद्रुमः ।।१७२।।

अन्वय— हस्ती आधूतकेसरः, तुरङ्गमः तीक्ष्णशृङ्गः, अयम् एरण्डः गुरुसारः, खदिरः निःसारः (विद्यते)।

शब्दार्थ— हस्ती = हाथी। आधूतकेसरः = हिलते हुए केसरों (सटाओं, अयालों) वाला (है)। तुरङ्गमः = घोड़ा। तीक्ष्णशृङ्गः = तीक्ष्ण शृङ्ग वाला है। अयं = यह। एरण्ड = एरण्ड (रेड़)। गुरुसारः = अत्यधिक सुदृढ़ (मजबूत पौधा है)। खदिरद्रुमः = खदिर (खैर) का पेड़। निःसार = कमजोर (सरलता से टूट जाने वाला) है।

अनुवाद— (यह) हाथी हिलते हुए केसरों (सटाओं) वाला है, (वह) घोड़ा तीक्ष्य शृङ्गों वाला है, (यह) एरण्ड (रेड़) अत्यधिक सृदृढ (मजबूत पौधा है) और खदिर (खैर) का पेड़ कमजोर (सरलता से टूट जाने वाला) है।

संस्कृतव्याख्या– लोकविरोधिदोषं निदर्शयत्यत्र– **आधूतेति**। **हस्ती** करिः **आधूत-**

---

(१) – केशरो।
(२) – उरु।

केसरः आधूताः आन्दोलिताः केसराः सटाःयस्य तादृशः विद्यते, **तुरङ्गमः** अश्वः **तीक्ष्णशृङ्गः** निशितविषाणः अस्ति, **अयम्** एषः **एरण्डः** तन्नाम वृक्षः **गुरुसारः** सुदृढः **खदिरद्रुमः** खदिरवृक्ष **निःसारः** साररहितः सुखभङ्गुरः विद्यते। केसराः सिंहस्य भवन्ति, न तु हस्तिनः एवमेव अश्वः शृङ्गविहीनः भवति, न तु शृङ्गयुतः, एरण्डः निःसार भवति, न तु गुरुसारः एवमेव खदिरवृक्षः गुरुसारः भवति, न तु निःसारः। अनेन प्रकारेण पद्येऽस्मिन् लोकप्रसिद्धस्य व्यवहारस्य विरोधः वर्णितः अत एवात्र लोकविरोधिदोषः।

विशेष—

(१) हाथी में केसर, घोड़े में शृङ्ग, एरण्ड वृक्ष का कमजोर होना तथा खरिरवृक्ष का मजबूत होना लोक में प्रसिद्ध है किन्तु इस पद्य में हाथी के केसर, घोड़े की शृङ्ग, एरण्ड वृक्ष के मजबूत होने और खदिर वृक्ष के कमजोर होने का कथन किया गया है जो लोकविरुद्ध है। इस प्रकार लोक विरोधी वर्णन होने के कारण यहाँ लोकविरोधिदोष है।

इति लौकिक एवायं विरोधः सर्वगर्हितः।
विरोधो हेतुविद्यासु न्यायाख्यासु निदर्श्यते ॥१७३॥

अन्वय— इति सर्वगर्हितः अयं विरोधः लौकिकः एव। न्यायाख्यासु हेतुविद्यासु विरोधः निदर्श्यते।

शब्दार्थ— इति = इस प्रकार। सर्वगर्हितः = सर्वाधिक निन्दित। अयं = यह। विरोधः = विरोध। लौकिकः = लौकिक, लोक-विषयक। न्यायाख्यासु = न्याय नामक। हेतुविद्यासु = हेतुविद्याओं में। विरोधः = (होने वाला) विरोध। निदर्श्यते = उदाहृत किया जा रहा है।

अनुवाद— इस प्रकार सर्वाधिक निन्दित (अत एव सर्वथा परित्याज्य) यह लौकिक (विरोध) (लोकविरोध नामक दोष) है। (अब) न्याय नामक हेतु विद्याओं में होने वाला विरोध (न्यायविरोध नामक दोष) उदाहृत किया जा रहा है।

संस्कृतव्याख्या— लोकविरोधमुपसंहरन् न्यायविरोधस्य निदर्शनार्थं उपक्रमते-**इतीति**। **इति** अनेन प्रकारेण **सर्वगर्हितः** सर्वाधिकनिन्दितः **अयम्** एषः पूर्वोदाहृतः **विरोधः** विपरीतकथनं **लौकिकं** लोकविषयकं लोकविरोधः इत्यर्थः विद्यते। सम्पति **न्यायाख्यासु** न्यायनामकेषु **हेतुविद्यासु** बौद्धकपिलादिषु विद्यासु यः **विरोधः** विपरीतकथनं तत् **निदर्श्यते** उदाहृतं क्रियते।

विशेष—

(१) लोकविरोधिदोष सभी दोषों से अत्यधिक निन्दित दोष है उसको उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा चुका है। अब न्यायविरोधिदोष नामक हेतुविद्या में होने वाले दोषों को उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाएगा।

(बौद्धदर्शनन्यायविरोधिदोषनिदर्शनम्)

सत्यमेवाह सुगतः संस्कारानविनश्वरान्[१] ।
तथाहि[२] सा चकोराक्षी स्थितैवाद्यापि मे हृदि ।।१७४।।

अन्वय— सुगतः संस्कारान् अविनश्वरान् सत्यम् एव आह। तथा हि सा चकोराक्षी मे हृदि अद्य अपि स्थिता एव।

शब्दार्थ— सुगतः = भगवान् बुद्ध ने। संस्कारान् = संस्कारों को। अविनश्वरान् = अविनश्वर, कभी नष्ट न होने वाला, विनाशरहित। सत्यम् एव = यथार्थ ही। आह = कहा है। तथा हि = इसी कारण ही, तभी तो। सा = वह (कोई, पहले उपभोग की गयी)। चकोराक्षी = चकोर के समान नेत्रों वाली, चकोरनयना। मे = मेरे। हृदि = हृदय में। अद्यापि = आज भी। स्थिता एव = विद्यमान है, बसी हुई है।

अनुवाद— भगवान् बुद्ध ने संस्कारों को अविनश्वर (कभी विनष्ट न होने वाला) यथार्थ ही कहा है। इसी कारण वह (कोई पहले उपभोग की गयी) चकोर के समान नेत्रों वाली (रमणी) मेरे हृदय में बसी हुई है।

संस्कृतव्याख्या— बौद्धदर्शनरूपं न्यायविरोधिदोषं निदर्शयत्यत्र- **सत्यमिति**। **सुगतः** भगवान् बुद्धः **संस्कारान्** पूर्ववासनायुक्तान् चित्तसंस्कारान् **अविनश्वरान्** विनाशरहितान् **सत्यम् एव** यथार्थम् एव **आह तथा हि सा** मया पूर्वोपभुक्ता काचित् **चकोराक्षी** चकोरनयना रमणी **अद्यापि** बहुकालाददृष्टापि **मे** मम **हृदि** हृदये मनसि वा **स्थिता एव** विराजिता एव वर्तते। यदि संस्काराः विनाशवन्तः तत्कथमिदं भवितुं शक्यते। बौद्धमते तु संस्काराः अनित्याः परश्चात्र संस्कारनित्यत्वं वर्णितम्। एवमत्र बौद्धमतविरुद्धत्वं कथनाद् न्यायविरोधिदोषम्।

विशेष—

(१) बौद्धमत में संस्कारों को अनित्य माना गया है किन्तु यहाँ उनके अनुसार संस्कारों की नित्यता का प्रतिपादन किया गया है, जो विरुद्ध है। इस विरुद्ध प्रतिपादन के कारण यहाँ न्यायविरोधिदोष है।

(१) सुगतैः संस्कृताभङ्गः सत्यमेवोदितोऽपि चेत्।
(२) तथैव, तथापि।

(साङ्ख्यदर्शनन्यायविरोधिदोषनिदर्शनम्)

कापिलैरसदुद्भूतिः स्थान एवोपवर्ण्यते ।
असतामेव दृश्यन्ते यस्मादस्माभिरुद्भवाः ।।१७५।।

अन्वय— कापिलैः असदुद्भूतिः स्थाने एव उपवर्ण्यते यस्मात् असताम् एव उद्भवा अस्माभिः दृश्यन्ते ।

शब्दार्थ— कापिलैः = कपिल के मतानुयायियों द्वारा, साङ्ख्यदर्शन के मतानुसार । असदुद्भूतिः = असत् (अविद्यमान मूल) की उत्पत्ति, (अन्य पक्ष में) असत् (दुष्टों) की उन्नति । स्थाने एव = समुचित (यथार्थ) ही । उपवर्ण्यते = वर्णित किया गया है, कहा गया है । अस्मात् = जिससे, इसीलिए । असताम् = असज्जनों की ही, दुष्टों की ही । उद्भवाः = अभ्युन्नति, समृद्धि । अस्माभिः = हम लोगों द्वारा । दृश्यन्ते = देखी जाती है ।

अनुवाद— साङ्ख्यदर्शन के अनुसार असत् (अर्थात् अविद्यमान, मूल) की उत्पत्ति होती है (अन्यपक्ष में- दुष्टों की उन्नति होती है)- यह यथार्थ ही कहा गया है इसलिए इस संसार में दुष्टों की ही अभ्युन्नति हम लोगों द्वारा देखी जाती है ।

संस्कृतव्याख्या— साङ्ख्यदर्शनविरोधरूपं न्यायविरोधिदोषं निदर्शयत्यत्र- **कापिलैरिति** । **कापिलैः** कपिलमतानुयायिभिः **असदुद्भूति** असतः अविद्यमानस्य उद्भूतिः उद्भवः श्लेषादन्यपक्षे च असतः दुष्टस्य उद्भूतिः अभ्युन्नतिः **स्थाने एव** यथार्थमेव **उपवर्ण्यते** विवेच्यते **यस्मात्** कारणात् संसारेऽस्मिन् **असतां** दुष्टजनानाम् **उद्भवाः** अभ्युन्नतयः समृद्धयः वा **अस्माभिः दृश्यन्ते** विलोक्यन्ते । साङ्ख्यमतानुसारं प्रतिपादितस्य सत्कार्यवादस्य विरुद्धम् असत्कार्यवादं वर्णितम्, अत एवात्र न्यायविरोधिदोषम् ।

विशेष—

(१) साङ्ख्यमत के अनुसार सत्कारण से सत्कार्य की उत्पत्ति होती है । मूलतः असत् की उत्पत्ति नहीं है । साङ्ख्यदर्शन में प्रतिपादित यह सिद्धान्त सत्कार्यवाद के नाम से जाना जाता है । साङ्ख्यकारिका के अनुसार—

असत्करणादुपादानग्रहणात्सर्वसम्भवाभावात् ।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम् ।।
(साङ्ख्यकारिका, ९)

(२) प्रस्तुत पद्य में साङ्ख्यदर्शन के इस सत्कार्यवाद के विपरीत असत्कार्य का कथन किया गया है, इस विपरीत कथन के कारण यहाँ न्यायविरोधिदोष है ।

गति[१]र्न्यायविरोधस्य सैषा सर्वत्र[२] दृश्यताम्[३] ।
अथागमविरोधस्य प्रस्थानं दर्शयिष्यते[४] ।।१७६।।

अन्वय— न्यायविरोधस्य सा एषा गतिः सर्वत्र दृश्यताम् । अथ आगमविरोधस्य प्रस्थानं दर्शयिष्यते ।

शब्दार्थ— न्यायविरोधस्य = न्यायविरोध की । सा = वह । एषा = यह । गतिः = क्रम । सर्वत्र = सभी (वैशेषिक इत्यादि दर्शनों) के सन्दर्भ में । दृश्यताम् = देख लेना चाहिए, समझ लेना चाहिए । अथ = इसके बाद । आगमविरोधस्य = आगम-विरोध का । प्रस्थानं = मार्ग, क्रम । दर्शयिष्यते = निदर्शित (उदाहरित) किया जा रहा है, दिखलाया जा रहा है ।

अनुवाद— न्यायविरोध (न्ययविरोधिदोष) का वह यह (पूर्वोक्त) क्रम (अन्य) सभी (वैशेषिक इत्यादि दर्शनों) के सन्दर्भ में भी समझ लेना चाहिए । इसके बाद आगमविरोध (आगमविरोधिदोष) का मार्ग (क्रम) दिखलाया जा रहा है ।

संस्कृतव्याख्या— न्यायविरोधिदोषमुपसंहरन् आगमविरोधिदोषनिदर्शनार्थमुपक्रमतेऽत्र— **गतिरिति** । **न्यायविरोधस्य** न्यायविरोधिदोषस्य **सा एषा** पूर्वोक्ता **गतिः** क्रमः मार्गः वा **सर्वत्र** अन्येषु सर्वेषु वैशेषिकादिषु दर्शनेषु **दृश्यताम्** ज्ञायताम् । **अथ** तदनन्तरम् **आगमविरोधस्य** आगमविरोधिदोषस्य **प्रस्थानं** मार्गं **दर्शयिष्यते** निदर्श्यते ।

(वेदविरोधरूपागमविरोधिदोषनिदर्शनम्)

अनाहिताग्नयोऽप्येतेऽजातपुत्रा[५] वितन्वते ।
विप्रा वैश्वानरीमिष्टिमक्लिष्टाचारभूषणाः ।।१७७।।

अन्वय— एते अक्लिष्टाचारभूषणाः अजातपुत्राः विप्राःअनाहिताग्नयः अपि च वैश्वानरीम् इष्टिं वितन्वते ।

शब्दार्थ— एते = ये । अक्लिष्टाचारभूषणाः = अदूषित आचार (सदाचार) से विभूषित (शोभायमान) । अजातपुत्राः च = और अनुत्पन्न पुत्र वाले (पुत्रविहीन) ।

(१) नीतिर्, रीतिर् ।
(२) सैषाप्यन्यत्र ।
(३) दृश्यते ।
(४) प्रस्थानमुपदिश्यते, प्रवेश उप- ।
(५) जातपुत्रा, राज- ।

विप्राः = ब्राह्मण। अनाहिताग्नयः अपि = नियमित अग्नि का आधान (अग्न्याधान, अग्निहोत्र) किये विना भी। वैश्वानरीं = वैश्वानर देव से सम्बन्धित (वैश्वानरी नामक) इष्टिं = याग को। वितन्वते = कर रहे हैं, विस्तृत कर रहे हैं।

अनुवाद— ये अदूषित आचार (सदाचार) से विभूषित (शोभायमान) तथा अनुत्पन्न पुत्र वाले (अर्थात् पुत्रविहीन) ब्राह्मण नियमित अग्नि का आधान (अग्न्याधान, अग्निहोत्र) किये विना भी वैश्वानरी नामक याग को कर रहे हैं।

संस्कृतव्याख्या— वेदविरोधरूपं आगमविरोधिदोषं निदर्शयत्र- **अनाहितेति।** पुरोदृश्यमानाः **अक्लिष्टाचारभूषणाः** अक्लिष्टाचाराः अदूषिताचार एव भूषणः अलङ्कारः येषां तेऽसदाचारपरायणाः **अजातपुत्राः** अनुत्पन्नपुत्राः पुत्रविहीनाः **विप्राः** ब्राह्मणाः **अनाहिताग्नयः अपि** अकृताग्न्याधानाः अपि **वैश्वानरीं** वैश्वानरीं नाम **इष्टिं** यागं **वितन्वते** सम्पादयन्ति। आहिताग्निभिः उत्पन्नपुत्रसम्पन्नैः एव वैश्वानरी इति यागस्य सम्पादनं वर्णितं यद्वेदविरुद्धं विद्यते। अत एवात्र श्रुतिविरोधरूपः आगमविरोधिदोषः।

विशेष—

(१) श्रुति के अनुसार वैश्वानरी याग का अधिकारी वही होता है जो आहिताग्नि हो और आहिताग्नि द्वारा उसे पुत्र हुआ हो (द्रष्टव्य तै० सं० २.२५.१-३)।

(२) इस पद्य में ऐसे ब्राह्मणों द्वारा वैश्वानरी याग करने का वर्णन किया गया है जो न तो आहिताग्नि हैं और न ही पुत्र वाले हैं। इस प्रकार यहाँ श्रुति के विरुद्ध कथन होने के कारण श्रुतिविरोधरूप आगमविरोधिदोष है।

(स्मृतिविरोधरूपागमविरोधिदोषनिदर्शनम्)

असावनुपनीतोऽपि वेदानधिजगे गुरोः।
स्वभावशुद्धो स्फटिको न संस्कारमपेक्षते ।।१७८।।

अन्वय— असौ अनुपनीतः अपि गुरोः वेदान् अधिजगे। स्वभावशुद्धः स्फटिकः संस्कारं न अपेक्षते।

शब्दार्थ— असौ = उसने। अनुपनीतः अपि = उपनयन (संस्कार) के विना ही। गुरोः = गुरु से। वेदान् = वेदों को। अधिजगे = प्राप्त कर लिया, पढ़ लिया, जान लिया। स्वभावशुद्धः = स्वभाव से निर्मल, प्रकृति से शुद्ध। स्फटिकः = स्फटिक (मणि)। संस्कारं = संस्कार को, शुद्धि को। न अपेक्षते = अपेक्षा नहीं करता।

अनुवाद— उस (द्विजकुमार) ने उपनयन (संस्कार) के विना ही गुरु से वेदों को प्राप्त कर लिया (पढ़ लिया)। स्वभाव से निर्मल स्फटिक (मणि) (किसी अन्य) शुद्धि

की अपेक्षा नहीं करता, (विना संस्कारित ही शुद्ध रहता) है।

संस्कृतव्याख्या— स्मृतिविरोधरूपम् आगमविरोधिदोषं निदर्शयत्यत्र– **असा-विति**। **असौ** पुरोविद्यमानः द्विजकुमारः **अनुपनीतः अपि** उपनयनसंस्कारं विना अपि **गुरोः** आचार्याद् **वेदान्** ऋग्यजुःसामाथर्वरूपान् श्रुतीन् **अधिजगे** अधीतवान्। यथा हि **स्वभावशुद्धः** स्वभावेन प्रकृत्या शुद्धः निर्मलः **स्फटिकः** तन्नाम मणिविशेषः **संस्कारम्** अन्यं शुद्धिसाधनविशेषं **न अपेक्षते** न अर्हति। स्मृत्यानुसारं उपनयन-संस्कारेण संस्कृतस्यैव वेदाध्यनेऽधिकारः परञ्चात्र अनुपनीतेन द्विजकुमारेणैव वेदाध्ययनं कृतमिति स्मृतिविरोधः। स्मृतिरपि आगमान्तर्गतं समाहिता अत एव स्मृतिविरोधरूप आगमविरोधिदोषः।

विशेष—

(१) स्मृति के अनुसार वेदाध्ययन करने के लिए उपनयन संस्कार आवश्यक है। उपनयन संस्कार के बाद ही द्विजकुमार वेदाध्ययन का अधिकारी होता है अन्यथा नहीं।

(२) यहाँ विना उपनयन संस्कार के ही द्विजकुमार द्वारा वेदाध्ययन कर लेने का वर्णन किया गया है जो स्मृति के विरुद्ध है। अतः स्मृति से विरोध होने के कारण यहाँ स्मृतिविरोधदोष है। स्मृति भी आगम के अन्तर्गत ही समाहित है अतः यहाँ स्मृतिविरोध रूप आगमविरोधिदोष है।

(विरोधस्य गुणत्वनिरूपणम्)

विरोधः सकलोऽप्येषः कदाचित् कविकौशलात्।
उत्क्रम्य दोषगणनां गुणवीथीं विगाहते ।।१७९।।

अन्वय— सकलः अपि एषः विरोधः कदाचित् कविकौशलात् दोषगणनाम् उत्क्रम्य गुणवीथीं विगाहते।

शब्दार्थ— सकलः = सम्पूर्ण। अपि = भी। एषः = यह (देशादि)। विरोधः = विरोध। कदाचित् = कभी-कभी। कविकौशलात् = कवि के (वर्णन) के कौशल (निपुणता) से। दोषगणनां = दोष की गणना (सीमा) को। उत्क्रम्य = उलङ्घन करके, पार करके। गुणवीथीं = गुण की सीमा (परिधि) में। विगाहते = प्राप्त कर लेता है, आ जाता है।

अनुवाद— सम्पूर्ण यह (देशादि) विरोध कभी-कभी कवि के (वर्णन के) कौशल (निपुणता) से दोष की गणना (सीमा) का उलङ्घन करके (पार करके) गुण की सीमा (परिधि) में आ जाता है।

संस्कृतव्याख्या— विरोधस्य गुणत्वं निरूपयत्यत्र– **विरोध इति। सकलः** सम्पूर्णः **अपि एषः** अयं **विरोधः** देशादिविरुद्धकथनं **कदाचित् कविकौशलात्** कविवर्णननैपुण्येन **दोषगणनां** दोषसीमाम् **उत्क्रम्य** विहाय **गुणवीथीं** गुणसीमां गुणत्वेन **विगाहते** समाप्नोति।

विशेष—

(१) अब तक जो देशकालादि का विरोध का स्वरूप दोष में बतलाया गया है वह विरोध यदि कविप्रतिभा के द्वारा चमत्कार के रूप में वर्णित किया जाता है तो वह दोष नहीं रह जाता, प्रत्युत गुण हो जाता है।

(देशविरोधिदोषस्य गुणत्वनिदर्शनम्)

तस्य राज्ञः प्रभावेण[1] तदुद्यानानि जज्ञिरे।
आर्द्रांशुक[2]प्रवालानामास्पदं सुरशाखिनाम् ॥१८०॥

अन्वय— तस्य राज्ञः प्रभावेण तदुद्यानानि आर्द्रांशुकप्रवालानां सुरशाखिनाम् आस्पदं जज्ञिरे।

शब्दार्थ— तस्य = उस। राज्ञः = राजा के। प्रभावेण = प्रभाव से। तदुद्यानानि = उस (राजा) के उपवन (उद्यान)। आर्द्रांशुकप्रवालानां = अभिनव गीले सूक्ष्मवस्त्र-रूपी कोंपलों वाले। सुरशाखिनां = देववृक्षों के। आस्पदं = आश्रयस्थान। जज्ञिरे = बन गये।

अनुवाद— उस राजा के प्रभाव से उसके उपवन (उद्यान) अभिनव गीले सूक्ष्म-वस्त्ररूपी कोपलों वाले देववृक्षों के आश्रयस्थान बन गये।

संस्कृतव्याख्या— देशविरोधस्य गुणत्वं निदर्शयत्यत्र– **तस्येति। तस्य राज्ञः** नृपतेः **प्रभावेण** प्रतापेन गौरवेण वा **तदुद्यानानि** तस्य राज्ञः उद्यानानि उपवनानि **आर्द्रांशुकप्रवालानां** आर्द्राणि नवानि जलक्लिन्नानि यानि अंशुकानि सूक्ष्मवस्त्राणि तानि एव प्रवालानि नूतनकिसलयानि येषां तादृशानां **सुरशाखिनां** सुरवृक्षाणाम् **आस्पदम्** आश्रयस्थानं **जज्ञिरे** अभवन्। इन्द्रोद्याने सम्भवानां देववृक्षानां नृपोद्याने वर्णनं देशविरुद्धम्। परञ्च राज्ञः प्रभावातिशयात् तस्योपवने तेषाम् आश्रयरूपस्य वर्णनं चमत्कारविशेषं जनयति। अत एव देशविरोधरूपस्य दोषस्य गुणत्वं विद्यते।

विशेष—

(१) अमरकोष के अनुसार मन्दार, पारिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन– ये

(१) तस्य प्रभावेण तदा।
(२) आर्द्राङ्कुर–।

पाँच देववृक्ष हैं जो इन्द्र के नन्दनकानन में विद्यमान रहते हैं।

पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः।
सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनः॥

(अमरकोष)

(२) नन्दनकानन के वृक्षों की मृत्युलोक में राजा के उपवन में आश्रयभूतता का वर्णन देशविरुद्ध है तथापि राजा के प्रभावातिशय की व्यञ्जना होने के कारण वर्णन चमत्कारपूर्ण हो गया है अतः यहाँ विरोध दोष नहीं प्रत्युत गुणत्व को प्राप्त हो गया है।

(कालविरोधस्य गुणत्वनिदर्शनम्)

राज्ञां विनाशपिशुनश्चचार खरमारुतः।
धुन्वन्[1] कदम्बरजसा सह सप्तच्छदोद्गमान्[2] ॥१८१॥

अन्वय— राज्ञां विनाशपिशुनः खरमारुतः कदम्बरजसा सप्तच्छदोद्गमान् धुन्वन् चचार।

शब्दार्थ— राज्ञां = राजाओं के। विनाशपिशुनः = विनाश की सूचना देने वाली। खरमारुतः = तेज हवा, आँधी। कदम्बरजसा = कदम्बपुष्पों के पराग कणों के साथ। सप्तच्छदोद्गमान् = सप्तवर्ण (सतवन) के पुष्पों को। धुन्वन् = धूनती हुई, झकझोरती हुई। चचार = चलने लगी।

अनुवाद— राजाओं के विनाश की सूचना देने वाली तेज हवा (आँधी) कदम्बपुष्पों के परागकणों के साथ सप्तवर्ण (सतवन) के पुष्पों को झकझोरती हुई चलने लगी।

संस्कृतव्याख्या— कालविरोधस्य गुणत्वं निदर्शयत्यत्र- **राज्ञामिति**। **राज्ञां** नृपतीनां **विनाशपिशुनः** विनाशसूचकः **खरमारुतः** प्रचण्डवायुः **कदम्बरजसा** कदम्बपुष्पाणां रजसा परागकणैः सह **सप्तच्छदोद्गमान्** सप्तपर्णपुष्पाणि **धुन्वन्** कम्पयन् **चचार** ववौ। वर्षाकाले कदम्बपुष्पोद्गमः शरत्काले च सप्तपर्णपुष्पोद्गमः भवति। परञ्चात्र तयोः कदम्बसप्तपर्णयोः सहैव पुष्पोद्गमस्य वर्णनं कालविरुद्धम्। तथापि अकालपुष्पोद्गमस्य राजविनाशसूचनात् कालविरोधस्य गुणत्वं विद्यते।

विशेष—

(१) कदम्ब पुष्प वर्षाकाल में और सप्तपर्ण पुष्प शरत्काल में खिलते है। यहाँ दोनों

(१) धून्वन्।
(२) -गमम्, -च्छदद्रुमम्।

के साथ पुष्पित होने का वर्णन कालविरोध है किन्तु असमय में दोनों का पुष्पित होना राजाओं के विनाश का सूचक है। इस प्रकार यहाँ पर कालविरोध विनाशसूचन का कारण होने से कालविरोधिदोष नहीं प्रत्युत गुणत्व को प्राप्त हो गया है।

(कलाविरोधस्य गुणत्वनिदर्शनम्)

दोलातिप्रेरण[1]त्रस्तवधूजनमुखोद्गतम्[2] ।
कामिनां लयवैषम्याद्[3] गेयं रागमवर्धयत् ।।१८२।।

अन्वय— दोलातिप्रेरणत्रस्तवधूजनमुखोद्गतं गेयं लयवैषम्यात् कामिनां रागम् अवर्धयत् ।

शब्दार्थ— दोलातिप्रेरणत्रस्तवधूजनमुखोद्गतं = झूले के लम्बी पेंग से भयभीत वधू लोगों (वधुओं) के मुख से निकला हुआ। गेयं = गीत। लयवैषम्यात् = लय की विषमता के कारण। कामिनां = कामी लोगों (रसिकों) के। रागम् = अनुराग (आनन्द) को। अवर्धयत् = बढ़ा दिया।

अनुवाद— झूले की लम्बी पेंग से भयभीत वधू लोगों (वधुओं) के मुख से निकला हुआ गीत लय की विषमता के कारण कामी लोगों (रसिकों) के अनुराग (आनन्द) को बढ़ा दिया।

संस्कृतव्याख्या— कलाविरोधस्य गुणत्वं निदर्शयत्यत्र- **दोलेति**। **दोलातिप्रेरणत्रस्तवधूजनमुखोद्गतं** दोलायाः प्रङ्खायाः अतिप्रेरणात् वेगेनान्दोलितात् त्रस्तः भयभीतः यः वधूजनः तस्य मुखाद् उद्गतं निःसृतं **गेयं** गीतं **लयवैषम्याद्** द्रुतमध्यमविलम्बितरूपस्य लयस्य वैषम्याद् असाम्यात् **कामिनां** कामिजनानां रसिकानां वा **रागं** अनुरागं प्रेमातिशयम् आनन्दं वा **अवर्धयत्**। यथोचितलयेन प्रयुक्तमेव गीतं मनोहरं भवति परञ्चात्र विषमलयेन गीतं गानं कामिनामानन्दं वर्धयति इति कथनं गीतशास्त्रविरोधि वर्तते। अत्र विषमलययुक्तेन गेयेन कामिनां रागवर्धनस्य वर्णनं तेषाम् उत्कटरागं सूचयति अत एव चमत्कारजनत्वाद् विरोधकथनमिदं कलाविरोधिदोषं न, प्रत्युत गुणत्वमेव।

विशेष—

(१) यथोचित राग में गाया गया गीत ही हृदयावर्जक है। यहाँ रागवैषम्य से गाया

---

(१) डोला-, दोलाभि- ।

(२) -भवम् ।

(३) -वैषम्यं ।

गया गीत कामियों के राग को बढ़ा रहा है– ऐसा वर्णन यथोचित न होने के कारण कलाविरोधी है किन्तु इस रागवैषम्य गीत से आनन्द में वृद्धि होना कामियों के अनुरागातिशय को सूचित करता है अतः यह कलाविरोध-कथन दोष नहीं, प्रत्युत गुण है।

(लोकविरोधस्य गुणत्वनिदर्शनम्)

ऐन्दवादर्चिषः कामी शिशिरं हव्यवाहनम् ।
अबलाविरहक्लेशविह्वलो[१] गणयत्ययम्[२] ।।१८३।।

अन्वय— अबलाविरहक्लेशविह्वलः अयं कामी हव्यवाहनम् ऐन्दवाद् अर्चिषः शिशिरं गणयति।

शब्दार्थ— अबलाविरहक्लेशविक्लवः = प्रेयसी (अबला) की विरहव्यथा (विरहक्लेश) से व्यकुल (विह्वल)। अयं = यह। कामी = कामी, प्रेमी। हव्यवाहनम् = अग्नि को। ऐन्दवात् = चन्द्रमा की। अर्चिषः = किरणों से। शिशिरं = शीतल। गणयति = गिन रहा है, समझता है, मानता है।

अनुवाद— प्रेयसी की विरहव्यथा से व्याकुल यह प्रेमी (कामी) अग्नि को चन्द्रमा की किरणों से (किरणों की अपेक्षा) (अधिक) शीतल समझता है।

संस्कृतव्याख्या— लोकविरोधस्य गुणत्वं निदर्शयत्यत्र– **ऐन्दवादिति। अबला-विरहक्लेशविक्लवः** अबलायाः प्रेयस्याः विरहक्लेशेन वियोगव्यथया विह्वलः व्याकुलः **अयम्** एषः पुरोविद्यमानः **कामी** प्रेमी **हव्यवाहनम्** अग्निम् **ऐन्दवात्** चन्दमसः **अर्चिषः** मयूखाद् अपि **शिशिरं** शीतलं **गणयति** मन्यते। विरहपीडितानां कामिनां कृते चन्द्रकिरणानां सन्तापकत्वं लोकप्रसिद्धं, न तु अग्नेः शीतलत्वम्। अत्र कामिनां अग्नेः शीतलत्ववर्णनं लोकविरुद्धं तथापि विरहव्यथातिशयव्यञ्जकतया लोकविरोधस्य कथनस्यास्य गुणत्वमेव, न तु दोषत्वम्।

विशेष—

(१) लोक में कामिजनों के लिए चन्द्रकिरणों का दाहकत्व (सन्तापकत्व) प्रसिद्ध है, अग्नि का शीतलत्व नहीं। यहाँ कामी के लिए अग्नि का चन्द्र किरणों की अपेक्षा भी अधिक शीतल होने का वर्णन हुआ है, जो लोकविरुद्ध है किन्तु यह लोकविरोध यहाँ कामी की अतिशय विरहव्यथा को व्यञ्जित कर रहा है अतः यह दोष नहीं है, प्रत्युत गुण है।

(१) -विक्लवो।
(२) -त्यलम्।

(न्यायविरोधस्य गुणत्वनिदर्शनम्)

प्रमेयोऽप्यप्रमेयोऽसि सकलोऽप्यसि निष्कलः ।
एकस्त्वमनेकोऽसि नमस्ते विश्वमूर्त्तये ।।१८४।।

अन्वय— त्वं प्रमेयः अपि अप्रमेयः असि, सकलः अपि निष्कलः असि, एकः अपि अनेकः असि, विश्वमूर्तये ते नमः ।

शब्दार्थ— त्वं = तुम । प्रमेयः अपि = प्रमाण द्वारा ज्ञेय होते हुए भी । अप्रमेयः = अज्ञेय । असि = हो । सकलः अपि = (व्यष्टिरूप में) अवयवों से युक्त (व्यक्त) होते हुए भी । निष्कलः = (समष्टिरूप में) अवयव-विहीन, अव्यक्त । असि = हो । एकः अपि = (समष्टिरूप में) एक (अद्वितीय) होते हुए भी । अनेकः = (व्यष्टि-रूप में) अनेक (विश्वरूप) । असि = हो । विश्वमूर्तये = सर्वप्राणिमय । ते = तुमको । नमः = नमस्कार है ।

अनुवाद— (हे परमात्मन्), तुम प्रमाण द्वारा ज्ञेय होते हुए भी अज्ञेय हो, (व्यष्टिरूप में) अवयवों से युक्त (व्यक्त) होते हुए भी (समष्टिरूप में) अवयव-विहीन (अव्यक्त) हो और (समष्टिरूप में) एक (अद्वितीय) होते हुए भी (व्यष्टिरूप में) अनेक (विश्वरूप) हो, (ऐसे) सर्वप्राणिमय तुमको नमस्कार है ।

संस्कृतव्याख्या— न्यायविरोधस्य गुणत्वं निदर्शयत्यत्र– **प्रमेय अपि** । हे परमात्मन्, **त्वं प्रमेयः अपि** प्रमाणद्वारा ज्ञेयः सन् अपि **अप्रमेयः** अज्ञेयः असि, **सकलः अपि** व्यष्टिरूपेण सावयवः व्यक्तः अपि **निष्कलः** समष्टिरूपेण अवयवविहीनः अव्यक्तः **असि**; ईदृशेन गुणेन युक्ताय **विश्वमूर्तये** विश्वरूपिणे **ते** तुभ्यं **नमः** नमस्करोमि । प्रमेयत्वाप्रमेयत्वं सकलत्वनिष्कलत्वं एकत्वानेकत्वञ्च परस्परं विरुद्धः गुणः एकस्मिन्नेव आश्रये न सम्भवतीति तस्य न्यायविरोधस्य परमात्मविषये कथनात् परमात्मनः अचिन्त्यरूपं व्यञ्जयति । अत एवात्र न्यायविरोधः गुणत्वमेव, न तु दोषः ।

विशेष—

(१) सभी दर्शनों के अनुसार कोई भी पदार्थ एक साथ दो विरोधी धर्मों का आश्रय नहीं बन सकता, यह न्याय है । किन्तु प्रकृत पद्य में त्वं पद से वाच्य परमात्मा-रूप पदार्थ को प्रमेयत्व अप्रमेयत्व, सकलत्व-निष्कलत्व और एकत्व-अनेकत्व इन परस्पर विरोधी गुणों का एक साथ आश्रय बतलाया गया, जो न्याय का विरोध है । फिर भी परमात्मा की अचिन्त्यता को प्रदर्शित करने के लिए किया गया यह कथन दोष नहीं प्रत्युत गुण है ।

(आगमविरोधस्य गुणत्वनिदर्शनम्)

पञ्चानां[१] पाण्डुपुत्राणां पत्नी पाञ्चालकन्यका ।
सतीनामग्रणीश्चासीत् दैवो हि विधिरीदृशः ।।१८५।।

अन्वय— पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां पत्नी पाञ्चालकन्यका सतीनाम् अग्रणीः च आसीत् हि दैवः विधिः एव ईदृशः ।

शब्दार्थ— पञ्चानां = पाँचों । पाण्डुपुत्राणां = पाण्डु के पुत्रों (पाण्डवों) की । पत्नी = पत्नी । पाञ्चालकन्यका = पाञ्चाली, द्रौपदी । सतीनाम् = सती (स्त्रियों) में । अग्रणीः च = अग्रणी, सर्वश्रेष्ठ । आसीत् = थी । हि = क्योंकि । दैवः = देवताविषयक, भाग्यविषयक । विधिः = विधान । एव = ही । ईदृशः = इस प्रकार, ऐसा (होता है) ।

अनुवाद— पाँचों पाण्डुपुत्रों (पाण्डवों) की पत्नी पाञ्चाली (द्रौपदी) सती (स्त्रियों) में सर्वश्रेष्ठ थीं, क्योंकि भाग्यविषयक (भाग्य का) विधान ही ऐसा (होता है) ।

संस्कृतव्याख्या— आगमविरोधस्य गुणत्वं निदर्शयत्यत्र– **पञ्चानामिति** । **पञ्चानां** पञ्चसङ्ख्याकानां **पाण्डुपुत्राणां** पाण्डवानां **पत्नी पाञ्चालकन्यका** पाञ्चाली द्रौपदी **सतीनां** साध्वीनां कुलस्त्रीणां **अग्रणीः** श्रेष्ठा प्राधान्या वा **आसीत् हि** यतो हि **दैवः** भाग्यः **विधिः** नियतिः विधानं वा **ईदृशः** अचिन्त्यः भवति । एकपतिका एव सती भवितुमर्हति, न तु बहुपतिका, परश्चात्र बहुभर्तृकात्वं सतीत्वं चागमविरुद्धम् तथापि दैवविधानमचिन्त्यमिति कथनादस्य विरोधस्य दोषत्वं न, प्रत्युत गुणत्वमेव ।

विशेष—

(१) यहाँ द्रौपदी के बहुपतिका तथा साध्वी स्त्रियों में प्रमुख होना दोनों का कथन हुआ है जो आगम के विरुद्ध है क्योंकि आगम के अनुसार एक पति की पत्नी ही साध्वी होती है (द्रष्टव्य तै० सं० ६.६.४.३) । किन्तु यहाँ इस विरोध का परिहार भाग्य को हेतु बनाकर कर दिया गया है अतः यह आगमविरोधिदोष नहीं, प्रत्युत गुण है ।

(ग्रन्थोपसंहारः)

शब्दार्थालङ्क्रियाश्चित्रमार्गाः सुकरदुष्कराः[२] ।
गुणाः दोषाश्च काव्यानामिह[३] सङ्क्षिप्य दर्शिताः ।।१८६।।

अन्वय— इह काव्यानां शब्दार्थालङ्क्रियाः सुकरदुष्कराः चित्रमार्गाः गुणाः दोषाः सङ्क्षिप्य दर्शिताः ।

---

(१) पाञ्चाल–, –पुत्रिका । (२) शब्दार्थानां क्रियामार्गाः सुकराः चैव दुष्कराः ।
(३) इति ।

शब्दार्थ— इह = यहाँ, इस (ग्रन्थ) में। काव्यानां = काव्यों के। शब्दार्था-लङ्क्रियाः = (शरीरभूत) शब्द और अर्थ तथा (उन शब्दार्थ के) अलङ्कार। सुकर-दुष्कराः = सुकर और दुष्कर। चित्रमार्गाः = चित्रबन्ध के (विविध) भेद। गुणाः = गुण। दोषाः = दोष। सङ्क्षिप्य = सङ्क्षिप्त करके, सङ्क्षेप में। दर्शिताः = दिखला दिये गये हैं, प्रदर्शित (निरूपित) कर दिये गये हैं।

अनुवाद—इस (ग्रन्थ) में काव्यों के (शरीरभूत) शब्द और अर्थ तथा (उन शब्दार्थों के) अलङ्कार, सुकर और दुष्कर चित्र (बन्ध) के (विविध) भेद (रचनाविधा), गुण तथा दोष सङ्क्षेप में प्रदर्शित (निरूपित) कर दिये गये हैं।

संस्कृतव्याख्या— ग्रन्थमुपसंहरति- **शब्दार्थेति। इह** अस्मिन्ग्रन्थे **काव्यानां** काव्यप्रबन्धानां **शब्दार्थालङ्क्रियाः** शरीरभूतौ शब्दार्थौ तयोः अलङ्क्रियाः अलङ्काराश्च **सुकरदुष्कराः** सुकराः दुष्कराः च **चित्रमार्गाः** चित्रस्य चित्रबन्धस्य मार्गाः विविधाः भेदाः रचनाविधा वा तेषां काव्यानां **गुणाः दोषाः** चेति विषयाः **दर्शिताः** निरूपिताः।

विशेष—

(१) काव्यादर्श के प्रारम्भ में दण्डी ने काव्य का स्वरूप बतलाना काव्यादर्श की रचना का उद्देश्य बतलाया है। इसके अन्तर्गत उन्होंने इष्टार्थपदावली के रूप में काव्यशरीर के स्वरूप का वर्णन छन्दोविधान, भाषाविधान और विनियोग की दृष्टि से किया है तथा मार्ग-विशेष से सम्बन्धित गुणों का विवेचन प्रथम परिच्छेद में किया है। ग्रन्थ के द्वितीय परिच्छेद में काव्य के शरीरभूत अर्थ और शब्द विषयक अलङ्कारों का निरूपण किया है। इसके अतिरिक्त तृतीय परिच्छेद में सुकर और दुष्कर चित्रबन्धों (चित्रालङ्कारों) तथा इसी परिच्छेद में काव्य के दोषों का विवेचन किया है।

(ग्रन्थफलनिरूपणम्)

व्युत्पन्नबुद्धिरमुना विधिदर्शितेन
मार्गेण गुणदोषयोर्वशवर्तिनीभिः।
वाग्भिः कृताभिसरणो[1] मदिरेक्षणाभि-
र्धन्यो युवेव रमते लभते च कीर्तिम् ॥१८७॥

॥ इत्याचार्य दण्डिनः कृतौ काव्यादर्शे शब्दालङ्कारदोषविभागो नाम तृतीयः परिच्छेदः ॥

---

(१) कृतानु-।

अन्वय— अमुना विधिदर्शितेन गुणदोषयोः मार्गेण व्युत्पन्नबुद्धिः वशवर्तिनीभिः मदिरेक्षणाभि कृताभिसरणः धन्यः युवा इव वाग्भिः रमते कीर्तिं च लभते।

शब्दार्थ— अमुना = इस। विधिदर्शितेन = पद्धति से प्रदर्शित। गुणदोषयोः = गुण और दोष के। मार्गेण = मार्ग द्वारा। व्युत्पन्नबुद्धिः = ज्ञानसम्पन्न बुद्धि वाला (व्यक्ति)। वशवर्तिनीभिः = वशवर्तिनी (अभ्यास द्वारा वश में की गयी)। मदिरेक्षणाभिः = मदिरनयना (रमणियों) के साथ। कृताभिसरणः = अभिसरित हुआ। धन्यः = भाग्यशाली। युवा इव = युवक के समान। वाग्भिः = वाणीं के साथ। रमते = रमण करता है। कीर्तिं च = और कीर्ति (यश) को। लभते = प्राप्त करता है।

अनुवाद— इस पद्धति से प्रदर्शित (निरूपित) गुण और दोष के मार्ग द्वारा ज्ञानसम्पन्न बुद्धि वाला (व्यक्ति) वशवर्तिनी (काव्यरूपी) वाणी द्वारा अभिसृत होकर उसी प्रकार आनन्द और कवियश को प्राप्त करता है जिस प्रकार वशवर्तिनी मदिरनयना (रमणियों) द्वारा अभिसरित हुआ भाग्यशाली युवक आनन्द और यश को प्राप्त करता है।

संस्कृतव्याख्या— ग्रन्थफलं निरूपयत्यत्र– **व्युत्पन्नेति**। **अमुना** अनेन पूर्वोक्तरूपेण **विधिदर्शितेन** भरताद्याचार्यनिर्देशानुसारं निरूपितेन **दोषगुणयोः** दोषस्य गुणस्य च तयोः हेयतोपादेयत्वप्रयोजकधर्मयोः **मार्गेण** निरूपणविधिना कारणेन वा **व्युत्पन्नबुद्धिः** संस्कृतमतिः जनः **वशवर्तिनीभिः** अभ्यासद्वारा स्वायत्तीकृताभिः **वाग्भिः** संस्कृतवाणीभिः **कृताभिसरणः** कृतं अभिसरणम् अभिगमनं यस्मिन् तादृशः सन् तथैव **रमते** आनन्दम् अनुभवति **कीर्तिं** कवियशश्च **लभते** प्राप्यते यथा **वशवर्तिनीभि** वश्याभिः **मदिरेक्षणाभिः** मदयुक्तनेत्राभिः रमणीभिः सह **कृताभिसरणः** स्वयमेवाभिगमनकृतः **धन्यः** भाग्यशाली **युवा** युवकः **रमते** आनन्दमनुभवति **कीर्तिं** रमणविषयकयशश्च ताभिः प्राप्यते।

विशेष—

(१) दण्डी ने रमणीय उपमा द्वारा काव्यादर्श का प्रयोजन बतलाया है। काव्यादर्श में निरूपित काव्यविषयक विविध तथ्यों को जानकर व्यक्ति काव्य का भरपूर आनन्द पाता है और लोक में यश का भागी भी होता है।

(२) किसी भी शास्त्र का प्रयोजन बुद्धि में विवेक का उत्पन्न होना है। शास्त्र के प्रमेयों के विषय में ज्ञान होने पर ही व्यक्ति उसका समुचित उपयोग कर सकता है। अभ्यास से प्रमेंयों पर पूर्णतः अधिकार हो जाता है।

(३) काव्य की कल्पना रमणी की समानता से व्यक्त की गयी है। काव्य के साथ

सङ्केतपूर्वक विहार करना उसी प्रकार आनन्ददायक होता है जिस प्रकार प्रेमिका के साथ सङ्केतस्थल पर विहार करना पत्नी के साथ विहार करने की अपेक्षा अधिक आनन्द वाला होता है। जिस प्रकार नायिका मादक होती है उसी प्रकार काव्य भी मादक होता है।

(४) पद्य में प्रयुक्त वाक् से काव्य के शरीर शब्द और अर्थ दोनों अभिप्रेत हैं। प्रयुक्त उपमा में उपमेय और उपमान के लिङ्ग की समानता के लिए स्त्रीलिङ्ग में वाक् शब्द का प्रयोग किया गया है।

॥ इस प्रकार आचार्य दण्डीकृत काव्यादर्श का शब्दालङ्कार-दोषविभाग नामक तृतीय परिच्छेद समाप्त ॥

॥ इस प्रकार डॉ० जमुनापाठककृत काव्यादर्श के तृतीय परिच्छेद की 'शशिप्रभा' नामक संस्कृत-हिन्दी-व्याख्या समाप्त हुई ॥

।। सम्पूर्णोऽयं ग्रन्थः ।।

श्लोकानुक्रमणिका